विषय-सूची

★

प्रकाशक की विज्ञप्ति

कार्ल मार्क्स द्वारा रचित भारतीय इतिहास पर टिप्पणियाँ (Chronologische Auszuge uber Ostindien) का यह संस्करण सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की केन्द्रीय समिति के मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान द्वारा तैयार किये गये रूसी संस्करण पर आधारित है। इसका रूसी संस्करण १९४७ में तैयार किया गया था। पाण्डुलिपि में उक्त संस्थान ने बाद में जो सुधार किये थे उनको भी इस संस्करण में सम्मिलित कर लिया गया है।

रूसी संस्करण में इसमें एक अन्तर है लेखक ने बीच बीच में जो टिप्पणियाँ दी थी उन्हें इस संस्करण में कोष्ठकों के अन्दर दे दिया गया है।

टिप्पणियों की पाण्डुलिपि का सम्पादन लेखक नहीं कर सके थे। यही कारण है कि प्रकाशन के लिए तैयार करते समय टेक्निकल किस्म के कुछ परिवर्तन उसमें करने पड़े थे। स्वाभाविक रूप से इन परिवर्तनों का उस सामग्री पर भी प्रभाव पड़ा है जिसे मार्क्स ने अंग्रेज लेखकों की रचनाओं से अंग्रेजी में ही उद्धृत किया था। विशेष रूप से पाण्डुलिपि में निम्न परिवर्तन किये गये हैं :

(१) भारतीय नामों के हिज्जे लेखक ने एल्फिन्स्टन तथा सीवेल के ग्रन्थों के आधार पर दिये थे, इस संस्करण में उन्हें आधुनिक आधिकारिक स्वरूपों के अनुसार बदल दिया गया है। आमतौर से, नामों के परम्परागत हिज्जे को ही तरजीह दी गयी है। देशी हिज्जे से उसके काफी भिन्न होने पर भी उसे ही दिया गया है जिससे कि परम्परागत हिज्जे की कड़ी न टूटने पाए।

(२) जहाँ-जहाँ आवश्यक हुआ है वहाँ सर्वनामों, सहायक क्रियाओं तथा संयोजकों, आदि को जोड़ दिया गया है। जल्दी लिखने की वजह से जहाँ कोई छोटी मोटी भूलें हो गयी थीं उन्हें भी सुधार दिया गया है।

रूसी संस्करण की भूमिका

पिछली शताब्दी के छठे दशक के बाद से ही एक औपनिवेशिक देश के रूप में भारत का ध्यानपूर्वक अध्ययन करना मार्क्स ने शुरू कर दिया था। औपनिवेशिक शासन तथा लूट-खसोट के भिन्न-भिन्न स्वरुपों तथा उपायों का चलन भारत में रहा है। भारत में दिलचस्पी उनकी इसलिए भी थी कि आदिम साम्यवादी समाज के विशिष्ट सम्बन्ध किसी हद तक उसके अन्दर अब भी मौजूद थे। "लेकिन", मार्क्स ने १८५३ में लिखा था, "भारत के अतीत का राजनीतिक स्वरुप चाहे कितना ही बदलता हुआ दिखलाई देता हो, पर, प्राचीन से प्राचीन काल से लेकर १९वीं शताब्दी के पहले दशक तक, उसकी सामाजिक स्थिति अपरिवर्तित ही बनी रही है।" [**"भारत में ब्रिटिश शासन", भारत का प्रथम स्वातंत्र्य संग्राम**, हिन्दी संस्करण, दिल्ली, पृष्ठ ११]

मार्क्स की **टिप्पणियों** में भारतीय इतिहास के लगभग एक हजार वर्षों को—सातवीं शताब्दी के मध्य से लेकर १९वीं शताब्दी के मध्य तक के समय को—लिया गया है। इनमें प्रथम मुस्लिम आक्रमणों से लेकर २ अगस्त, १८५८ के उस समय तक को लिया गया है जिसमें ब्रिटिश पार्लमिन्ट ने इण्डिया बिल पास करके भारत के अनुबन्धन को क़ानूनी जामा पहना दिया था।

शुरू का काल, जो १८वीं शताब्दी के मध्य में समाप्त हो जाता है, इन **टिप्पणियों** के एक-तिहाई से भी कम भाग में आ जाता है। पाण्डुलिपि के शेष भाग में अंग्रेजों की भारत-विजय का इतिहास दिया गया है।

मार्क्स ने उन मुस्लिम राजवंशों की सूची दी है जो उत्तरी भारत में, सिन्धु और गंगा की घाटियों में, शासन करते थे। बाद में यहीं से इन शासकों ने दक्षिण की ओर अपना राज्य-विस्तार किया था। मुग़ल साम्राज्य के इतिहास पर मार्क्स ने और अधिक विस्तार से विचार किया है। मुग़ल साम्राज्य की स्थापना १५२६ में, बाबर के आक्रमण के बाद हुई थी। बाबर—तैमूर लंग और चंगेज खां को अपने पूर्वज बताता था।

अंग्रेज़ों की भारत-विजय के इतिहास पर विचार करने से पहले, संक्षेप में,

एक बार फिर उन विभिन्न विदेशी आक्रमणों का मार्क्स उल्लेख करते हैं जिनका श्रीगणेश मैसिडोनियाई सिकन्दर के हमले से हुआ था। भारत की ब्रिटिश विजय पर विचार करने से पहले विभिन्न भारतीय राज्यों का भी वे सिंहावलोकन करते है।

अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे मार्क्स ने जो रचनाएं तैयार की थी उनमे भारतीय इतिहास पर टिप्पणियां का प्रमुख स्थान है। मार्क्स और एंगेल्स के पुरालेखों (खण्ड ५–८) के एक अंग के रूप मे आम इतिहास के सम्बन्ध मे प्रकाशित की जानेवाली कालक्रमानुसारी टिप्पणियो का ये टिप्पणियां एक महत्वपूर्ण परिशिष्ट है।

भारत की भूमि-व्यवस्था के बदलते हुए स्वरूपों का अध्ययन करते समय मार्क्स ने काल-क्रम के अनुसार घटनाओं का एक वृत्त तैयार किया था। इसका उद्देश्य उस देश की विशाल भूमि पर घटनेवाली ऐतिहासिक घटनाओं का एक सुगठित विवरण तैयार करना था। उन्होंने भूमि-व्यवस्था के स्वरूपों की प्रकृति तक ही नहीं अपने को सीमित रखा था, बल्कि सम्पूर्ण वास्तविक ऐतिहासिक क्रिया का अध्ययन करने का प्रयास किया था। अन्य वस्तुओं के साथ-साथ, उन्होंने उन परिस्थितियों का भी अध्ययन किया था जिनके अन्तर्गत मुस्लिम कानून ने भारतीय भूमि-व्यवस्था को प्रभावित किया था। सामन्ती व्यवस्था का उसके अन्तर्गत कैसे विकास हुआ था इसका, तथा अंग्रेजो ने भारत पर कैसे विजय प्राप्त की थी और कैसे उसे दबाया-कुचला था, इसका भी उन्होंने अध्ययन किया था।

बाद में, मार्क्स ने इस बात का विश्लेषण किया था कि, कदम-ब-कदम, भारत में ब्रिटिश शासन का कैसे विस्तार हुआ था। भारत की ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी के आदेश के अनुसार फतह किया गया था। धनपतियों, व्यापारियों तथा अभिजात वर्ग के श्रीमानो के लूट के एक हथियार के रूप मे इस कम्पनी की स्थापना सत्रहवीं शताब्दी के प्रारम्भिक भाग मे हुई थी। हुकूमत के उन साम्राज्ञी स्वरूपों तथा उपायो को स्पष्ट रूप से खोल कर मार्क्स ने सामने रख दिया है जिनका अंग्रेजो ने भारत मे इस्तेमाल किया था। भारत मे ब्रिटिश शासकों की एक लम्बी शृंखला का परिचय उन्होंने प्रस्तुत किया है।

उस भाग मे जिसे मार्क्स ने "अन्तिम काल, १८२३-१८५८ [ईस्ट इंडिया कम्पनी का अन्त]" कहा है, विजय के लिए की गयी उन लड़ाइयों की एक सूची उन्होंने दी है जो भारत तथा पड़ोसी देशों मे अंग्रेजो ने लड़ी थीं।

मार्क्स की टिप्पणियां बतलाती है कि ब्रिटिश औपनिवेशिक साम्राज्य का

विस्तार किस प्रकार भारतीय जनता का निर्मम शोषण करके किया गया था। भारत के लोगों के लिए ब्रिटिश शासन के जो आर्थिक और राजनीतिक परिणाम निकले हैं उन पर मार्क्स की टिप्पणियों में खास जोर दिया गया है।

अपनी टिप्पणियों को तैयार करने के लिए मार्क्स ने पुस्तकों की एक भारी संख्या पढ़ी थी। भारतीय इतिहास के प्रारम्भिक काल के सम्बन्ध में—सातवीं शताब्दी से १८वीं शताब्दी के मध्यकाल तक के समय के सम्बन्ध में—उन्होंने मुख्यतया एल्फिस्टन द्वारा रचित, **मारत का इतिहास** से सहायता ली थी। अंग्रेजों द्वारा भारत की विजय के राजनीतिक इतिहास का काल-क्रम के अनुसार वृत्त तैयार करने के लिए उन्होंने रौबर्ट सीवेल की रचना, **भारत का विश्लेषणात्मक इतिहास** (लंदन, १८७०) का उपयोग किया था।

भारतीय इतिहास पर टिप्पणियों को प्रेस के लिए तैयार करते समय उन जगहों पर कुछ एकदम आवश्यक सुधार कर दिये गये हैं जहां कि उनकी पांडुलिपि आमतौर से स्वीकृत तथा अकाट्य तथ्यों से भिन्न थी। कुछ अन्य बातों के सम्बन्ध में, जिनके बारे में बाद के प्रामाणिक शोधकार्य ने ऐसे तथ्य प्रस्तुत किये हैं जो मार्क्स द्वारा दी गयी तिथियों से मेल नहीं खाते—पृष्ठ के नीचे टिप्पणियों के रूप में अन्य तिथियाँ दे दी गयी हैं। इन तिथियों के साथ उन स्रोतों का भी उल्लेख कर दिया गया है जहां से वे ली गयी हैं।

पृष्ठों के नीचे की सारी टिप्पणियाँ सम्पादकों ने जोड़ी हैं। जहाँ लेखक की कृति के अन्दर बीच में कहीं सम्पादकीय टिप्पणियाँ जोड़ी गयी हैं, वहाँ उन्हें बड़े कोष्ठकों के अन्दर दिया गया है।

—सोवियत संघ की कम्युनिस्ट पार्टी की
केन्द्रीय समिति का
मार्क्सवाद-लेनिनवाद संस्थान

भारतीय इतिहास पर टिप्पणियाँ
(६६४-१८५८)

[मुसलमानों द्वारा भारत की विजय]

भारत में अरबों का प्रथम प्रवेश ६६४ ईसवी (हिजरी सन् का ४४वाँ वर्ष)। मुहल्लब मुल्तान में घुस गया।

६३२ मुहम्मद की मृत्यु।

६३३. अरबों ने अबूबकर के नेतृत्व में सीरिया पर हमला कर दिया; उन्होंने फ़ारस पर आक्रमण किया, ६३८ में उसे कुचल दिया और फ़ारस के शाह को आमू नदी के उस पार भगा दिया; लगभग इसी समय खलीफा के एक सिपहसालार, उमर ने मिस्र को फतह कर लिया।

६५० फारस के शाह ने अपने राज्य को वापिस लेने की कोशिश की, हार गया, और मारा गया; आमू के किनारे तक पूरे देश पर अरबों ने कब्जा कर लिया। अब फारस और भारत को उत्तर में काबुल और दक्षिण में बिलोचिस्तान अलग करते थे; उनके बीच में अफ़ग़ानिस्तान था।

६६४. अरब काबुल [पहुँच गये]; इसी वर्ष, एक अरब जनरल मुहल्लब ने भारत पर हमला कर दिया, वह मुल्तान तक बढ़ गया।

६९०. अब्दुर्रहमान ने काबुल की फ़तह पूरी कर ली; बसरा के गवर्नर, हज्जाज़ ने जनरल बनाकर उसे फ़ारस की खाड़ी में [शत्तुल अरब के मुहाने पर] भेज दिया।

७११. मुहम्मद क़ासिम (हज्जाज के भतीजे) ने सिन्ध को जीत लिया (वह बसरा से नावों पर वहाँ गया था)।

७१४ मुहम्मद कासिम की, जलन के कारण, खलीफ़ा वलीद ने हत्या कर दी, इसने सिन्ध में मुसलमानियत के पतन का रास्ता खोल दिया। ३० वर्ष

बाद, एक भी अरब बाक़ी नहीं रह गया था।—हिन्दुओं की अपेक्षा फ़ारस के लोगों के दर्म्यान मुसलमानी धर्म अधिक तेज़ी से फैला, क्योंकि वहाँ के मुल्लाओं का वर्ग अत्यन्त निकृष्ट तथा पतित था; इसके विपरीत, भारत का पुरोहित वर्ग राष्ट्र में अत्यन्त शक्तिशाली राजनीतिक स्थान रखता था। (एल्फिंस्टन)

(१) खुरासान के मुसलमान राजवंश

७१३. अरब लोग आमू के उस पार[1] जम गये। (६७० में उन्होंने आमू नदी को पार कर लिया और कुछ समय बाद तुर्कमानियों से बुखारा और समरकन्द को छीन लिया); इस नये क्षेत्र का खलीफ़ा कौन बने, इसको लेकर उस समय फ़ातिमा (मुहम्मद की बहन) तथा अब्बास (उनके चचा) के परिवारों के बीच ज़बर्दस्त संघर्ष हुआ था; जीत अब्बास के परिवार की हुई थी, और हारूनल रशीद उस क़ौम का पांचवाँ खलीफ़ा बन गया था। उसकी—

८०९—में, आमू के उस पार के प्रदेश में एक विद्रोह को दबाने के लिए जाते समय मृत्यु हो गयी; उसके बेटे मामून ने खुरासान में फिर से अरब आधिपत्य की स्थापना की, बाद में अपने पिता के स्थान पर वह बग़दाद का खलीफ़ा बन गया; उसके मन्त्री, ताहिर ने विद्रोह कर दिया और—

८२१—में अपने को उसने खुरासान का स्वतंत्र राजा घोषित कर दिया, उसका परिवार वहाँ पर—

८२१-८७०—तक ताहिरी राजवंश के नाम से राज्य करता रहा; फिर सफ़ारी राजवंश ने उसे गद्दी से हटा दिया।

८७२-९०३. सफ़ारी राजवंश, उसके अन्तिम सदस्य याक़ूब को सामानी के परिवार वालों ने हरा दिया।

९०३-९९९. सामानी राजवंश। इस परिवार के भिन्न-भिन्न सदस्य, जिनके पास आमू पार के प्रदेश में स्वतन्त्र राज्य थे, आमू को पार करके फ़ारस की तरफ़ चले गये और वहाँ एक बड़े क्षेत्र पर उन्होंने अधिकार कर लिया; किन्तु बुइया घराने के लोगों ने (जिन्हें डिलेमाइट भी कहा जाता है), जो उस वक्त बग़दाद के खलीफ़ा थे, उन्हें भगाकर खुरासान वापिस भेज दिया; फिर वे वहीं बने रहे।

---

[1] आधुनिक इतिहासकार उस क्षेत्र के अरबी नाम, 'मावराए नहर' का इस्तेमाल करते हैं।

९६१. सामानी वंश के पाँचवें राजा[1] अब्दुल मलिक के शासनकाल में, अलप्तगीन नाम के एक तुर्की गुलाम को, जिसे एक दरबारी विदूषक के रूप में नौकर रखा गया था, अन्त में खुरासान का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया था। इसके बाद ही अब्दुल मलिक की मृत्यु हो गयी और अलप्तगीन, जिसे नया बादशाह नापसन्द करता था, अपने चुने हुए अनुयायियों के गिरोह को लेकर ग़ज़नी भाग गया, उसने अपने को वहाँ का गवर्नर बना लिया। अलप्तगीन का एक गुलाम सुबुक्तगीन, बाद में, खुरासान के दरबार में उसका वारिस बना। गजनी भारतीय सीमान्त से केवल दो सौ मील की दूरी पर था, लाहौर का राजा, जयपाल एक मुसलमान सरकार के इतने नज़दीक होने की बात से चिन्तित रहता था, इसलिए एक सेना लेकर उसने गजनी पर हमला कर दिया, दोनों के बीच समझौता हो गया, राजा ने इस समझौते को तोड़ दिया, इस पर सुबुक्तगीन ने भारत पर हमला कर दिया और सुलेमान पर्वत-माला के अन्दर में वह आगे बढ़ आया। जयपाल ने दिल्ली, कन्नौज और कालिंजर के राजाओं के साथ समझौता करके, कई लाख की सेना लेकर, सुबुक्तगीन का सामना करने के लिए आगे बढ़ना शुरू किया; सुबुक्तगीन ने उसे हरा दिया। इसके बाद ही पंजाब में एक मुसलमान अफसर को पेशावर का गवर्नर नियुक्त करके वह वापिस लौट गया। इसी दरम्यान उसके परिवार के सातवें सदस्य, सामानी बादशाह नूह के विरुद्ध तातारों ने बगावत कर दी और उसे आमू नदी के पार फ़ारस की तरफ़ भगा दिया। सुबुक्तगीन उसकी मदद के लिए दौड़ा, बागियों को उसने निकाल बाहर किया, कृतज्ञ बादशाह नूह ने (सुबुक्तगीन के सबसे बड़े लड़के) महमूद को खुरासान का गवर्नर बना दिया। चूँकि सुबुक्तगीन की मृत्यु के समय महमूद मौजूद नहीं था, इसलिए उसके छोटे भाई इस्माईल ने ग़ज़नी के सिंहासन पर कब्ज़ा कर लिया, परन्तु महमूद ने उसे हराकर कैद कर लिया। महमूद ने मंसूर के पास, जो उस समय का सामानी बादशाह था, अपना एक राजदूत भेजा और यह माँग की कि उसे ग़ज़नी का गवर्नर मान लिया जाय, यह माँग नहीं मानी गयी, महमूद ने अपने को गजनी का स्वतंत्र बादशाह घोषित कर दिया, थोड़े ही समय बाद मंसूर को गद्दी से हटा दिया गया और—

९९९—में, ग़ज़नी के महमूद ने सुलतान की पदवी धारण कर ली।

---

[1] शासक।

९९९. से अप्रैल २९, १०३० तक (जब उसकी मृत्यु हो गई) महमूद ग़जनी का सुलतान रहा।

९९९. सामानी राजवंश के पतन का फ़ायदा उठाकर, मंसूर के एक सिपहसालार, **इलेक खाँ** ने बुखारा तथा आमू-पार के तमाम मुसलमानी इलाक़ों पर क़ब्जा कर लिया। उसके और महमूद के बीच युद्ध हुआ।

१०००. महमूद ने इलेक खाँ के साथ सन्धि कर ली और उसकी बेटी से शादी कर ली। इस क़दम के पीछे उसकी योजना यह थी कि भारत पर हमला करने के लिए इस तरफ़ से वह पूर्णतया आजाद हो जाय।

(२) महमूद ग़ज़नवी और उसके और वारिसों के भारत पर क्रमशः ९९९-११५२ और ११८६ में आक्रमण

१००१. भारत पर महमूद का पहला आक्रमण। लाहौर। एक विशाल सेना के साथ महमूद ने सुलेमान पर्वत-माला को पार किया; **पेशावर के समीप लाहौर के राजा, जयपाल पर हमला कर दिया; फिर सतलज नदी पार** करके **भटिण्डा** पर उसने क़ब्ज़ा कर लिया; जयपाल के पुत्र, **आनन्दपाल** को राजा बनाकर वह गजनी वापिस लौट गया।

१००३.[1] महमूद का दूसरा आक्रमण। **भाटिया।** आनन्दपाल ने तो सन्धि की उन शर्तों का पालन किया था जो उस पर लाद दी गयी थीं, किन्तु **भाटिया** के राजा ने, जिसने खुद भी सन्धि पर दस्तख़त किये थे, कर देने से इन्कार कर दिया। महमूद ने उस पर हमला कर दिया और उसे हरा दिया।

१००५. महमूद का तीसरा आक्रमण। मुल्तान। मुल्तान के अफ़ग़ानी शासक, अबुल फ़तह लोदी ने विद्रोह कर दिया। महमूद ने उसे हरा दिया और उससे **हरजाना भरने** के लिए कहा। उसकी अनुपस्थिति में, इलेक खाँ ने आमू नदी पार करके एक बड़ी तातारी सेना के साथ ख़ुरासान पर हमला बोल दिया। महमूद (**भारतीय** हाथियों को लेकर) गजनी से तेजी से ख़ुरासान आया और इलेक खाँ को खदेड़कर उसने बुखारा भगा दिया।

१००८. महमूद का चौथा आक्रमण। पंजाब। नगरकोट का मन्दिर। भटिण्डा के आनन्दपाल ने महमूद के विरुद्ध भारतीय राजाओं को इकट्ठा करके एक शक्तिशाली सेना तैयार कर ली थी। हिन्दू बहुत डटकर लड़े, महमूद ने उन्हें हरा दिया; नगरकोट के मन्दिर को उसने लूट लिया।

---

[1] एल्फ़िंस्टन के 'भारत के इतिहास' (लंदन, १८६६) के अनुसार: १००४।

१०१० महमूद ने गोर राज्य को विजय कर लिया, इसमे अफगान बसते थे।

१०१० का शीतकाल। महमूद का पाँचवाँ आक्रमण। मुल्तान पर नया आक्रमण, अबुल फतह लोदी को ग़ज़नी के सामने एक कैदी के रूप मे लाया गया।

१०११ महमूद का छठा आक्रमण। थानेश्वर (यमुना के तट पर), राजा लोग अपनी फौजो को इकट्ठा कर सकें इसके पहले ही महमूद ने यहाँ के सोने-चाँदी से भरे मन्दिर पर कब्ज़ा कर लिया।

१०१३ और १०१४ सातवाँ और आठवाँ आक्रमण। कश्मीर मे लूट-खसोट करने और वहाँ की परिस्थिति का पता लगाने के लिए दो अचानक आक्रमण।

१०१३ इलेक खाँ की मृत्यु हो गयी। १०१६ मे, महमूद ने बुखारा और समरकन्द पर अधिकार कर लिया, और १०१७ मे आमू-पार के पूरे प्रदेश को उसने फतह कर लिया।

१०१७ का शीतकाल। नवाँ आक्रमण। महमूद का विशाल आक्रमण, पेशावर के अन्दर से कूच करता हुआ वह कश्मीर मे घुस गया, वहाँ मे यमुना की तरफ बढ़ा, उसे पार किया, कन्नौज (प्राचीन नगर) ने उसके सामने आत्म-समर्पण कर दिया, फिर वह मथुरा की तरफ़ बढ़ता गया, उसे उसने एकदम मिसमार कर दिया, महाबन और मुञ्ज को नष्ट-भ्रष्ट करने और लूटने के बाद वह लौट आया।

१०२२. दसवाँ और ग्यारहवाँ आक्रमण। कन्नौज के राजा को नगर से निकाल दिया गया था, उसकी सहायता के लिए, महमूद ने दो अभियान किये। इनमे से एक अभियान के दौरान लाहौर को एकदम बर्बाद कर दिया गया।

१०२४ बारहवाँ आक्रमण। गुजरात और सोमनाथ। महमूद का अन्तिम बड़ा आक्रमण, ग़ज़नी से कूच करके वह मुल्तान आया, फिर सिन्ध के रेगिस्तान से होता हुआ गुजरात पहुँचा, उसकी राजधानी अह्निलवाड पर उसने कब्ज़ा कर लिया, रास्ते मे अजमेर के राजा के राज्य को उजाड़कर बर्बाद कर दिया, फिर सोमनाथ के मन्दिर को लूट डाला। राजपूत सेनाओं ने बहुत बहादुरी से उसकी रक्षा करने की कोशिश की थी। इसके बाद, महमूद अह्निलवाड लौट गया और वहाँ एक वर्ष तक टिका रहा। रेगिस्तान के अन्दर से जब वह वापिस लौटा तो उसे भयकर नुकसान पहुँचा।

१०२७ सेलजुकों के तुर्की कबीले ने विद्रोह कर दिया, महमूद ने उसे कुचल दिया।

१०२८. फ़ारस के ईराक़ को डेलमाइटों के हाथों से फिर छीन लिया गया; इस प्रकार पूरा फ़ारस महमूद के शासन के नीचे आ गया।

२९ अप्रैल, १०३०. महमूद गज़नवी की मृत्यु। महाकवि फ़िरदौसी उसके दरबार में रहते थे। उसकी सेना के मुख्य सैनिक तुर्क थे। तुर्कों को फ़ारस के लोगों का ग़ुलाम समझा जाता था और उन्हें लेकर ममलूक (ग़ुलाम) सैनिकों के रेजीमेन्ट तैयार किये गये थे। गड़रिये अधिकांशतया तातार थे। अमीर-उमरा और उच्च वर्ग की आबादी का अधिकांश भाग अरबों से बना था; न्याय तथा धर्म के सारे अधिकार उन्हीं को थे; नागरिक प्रशासन के कार्य को अधिकांशतया फ़ारसी लोग चलाते थे।

महमूद अपने पीछे तीन बेटे छोड़ गया था: मुहम्मद, मसऊद और अब्दुल रशीद; मरते समय उसने अपने सबसे बड़े लड़के, मुहम्मद को सुलतान नियुक्त किया था, किन्तु उसी साल (१०३०) मसऊद ने, जो सिपाहियों का प्रियपात्र था, अपने बड़े भाई को गिरफ़्तार कर लिया, उसकी आँखें फोड़ दीं, उसे बन्दी बनाकर डाल दिया, और राजसिंहासन पर स्वयं अधिकार कर लिया।

१०३०-१०४१. सुलतान मसऊद प्रथम। उसके राज्यकाल में आमू के उस पार के सेलजुक तुर्कों ने बग़ावत कर दी; मसऊद ने उन्हें खदेड़कर उनके देश भगा दिया।

१०३४. मसऊद प्रथम। लाहौर में उठते हुए विद्रोह को कुचलने के लिए वह भारत [गया], फिर उसने सेलजुकों के ऊपर चढ़ाई कर दी।

१०३४-१०३९. सेलजुकों से उसकी लड़ाई; मर्व के समीप, जिन्दगान [दन्दनक़ान] में वह बहुत बुरी तरह पराजित हुआ और भारत की तरफ़ भाग गया; उसके अफ़सरों ने बग़ावत कर दी; उन्होंने मुहम्मद के बेटे अहमद को गद्दी पर बैठा दिया; अहमद ने अपने चचा मसऊद का पीछा करवाया, उसे पकड़वा लिया, और—

१०४१—में, मरवा डाला। मार डाले गये सुलतान के बेटे मौदूद ने सुलतान अहमद पर [हमला किया]। [उसने] बलख से कूच किया, लग़मान में अहमद से उसकी मुठभेड़ हुई, उसे उसने पराजित कर दिया, उसे और उसके पूरे परिवार को उसने मरवा डाला, और अपने को सुलतान घोषित कर दिया।

१०४१-१०५०. सुलतान मौदूद। आमू पार के प्रदेश के सेलजुकों ने तुग़रिल बेग को अपना नेता चुना, उन्होंने चारों दिशाओं के इलाक़ों को फ़तह

करने की कोशिश की, और अपनी सेना को चारों तरफ फैला दिया; इससे मौदूद को आमू पार के प्रदेश को फतह करने का मौका मिल गया। दूसरी तरफ, दिल्ली के राजा ने विद्रोह कर दिया, मुसलमानो से थानेश्वर, नगरकोट तथा लाहौर को छोडकर सतलज पार के पूरे प्रदेश को उसने छीन लिया। लाहौर को मुसलमानो की एक छोटी गैरीसन ने बचा लिया।

१०४६ मौदूद से, जो अपने सारे जीवन सेलजुकों के खिलाफ लडता रहा था, गोर के राजा ने उस कबीले के विरुद्ध लडाई में मदद करने की प्रार्थना की, मौदूद ने उसे सहायता देने का वचन दिया, किन्तु मदद देने के बजाय उसने अपने उस सहयोगी की हत्या कर दी और गोर पर अधिकार कर लिया, १०५० में, गज़नी मे उसकी खुद की मृत्यु हो गयी; उसका छोटा भाई—

१०५०-१०५१—सुलतान अबुल हसन उसका उत्तराधिकारी बना; सारे देश ने उसके विरुद्ध विद्रोह कर दिया; ग़जनी के सिवा उसके पास कुछ नहीं बचा। उसका सेनानायक अली इब्न रबिया भारत गया, वहाँ उसने स्वयं जीतें हासिल कीं। सुलतान महमूद के सबसे छोटे बेटे, अबुल रशीद के पक्ष मे, जो कि सुलतान अबुल हसन का चाचा था, पूरा पश्चिमी क्षेत्र हथियार लेकर [उठ खडा हुआ], अबुल रशीद ने अबुल हसन को ग़जनी की गद्दी से हटा दिया।

१०५१-१०५२ सुलतान अबुल रशीद; विद्रोहियो के सरदार, तुगरिल ने ग़जनी मे उसे घेर लिया, उसके क़िले पर चढाई कर दी और नौ राजपुत्रों के साथ सुलतान की हत्या कर दी; क्रुद्ध आबादी ने तुग़रिल को मार डाला और उसके क़बीले को वहाँ से बाहर खदेड दिया। देश मे सुबुक्तगीन वंश के किसी राजकुमार की तलाश होने लगी, एक किले में कैद फ़र्रुख़ज़ाद का पता लगा, उसे मुक्त किया गया, और गद्दी पर बैठा दिया गया।

१०५२-१०५८. सुलतान फर्रुखजाद। शान्तिपूर्ण शासन, स्वाभाविक मृत्यु से मरा; उसके स्थान पर उसका भाई—

१०५८-१०८९—सुलतान इब्राहीम (धर्मात्मा) सुलतान बना। इसके शासनकाल में कोई विशेष बात नहीं हुई; उसका उत्तराधिकारी उसका पुत्र—

१०८९-१११४—सुलतान मसऊद द्वितीय हुआ, मुसलमान फौजों को वह गंगा के उस पार तक ले गया; उसका उत्तराधिकारी उसका बेटा—

१११४-१११८—सुलतान अर्सलान बना, उसने बहराम को छोडकर अपने तमाम भाइयो को पकड कर क़ैद करा दिया; बहराम सेलजुकों के पास भाग

कर बच गया था; इन लोगों ने उसका साथ दिया, अर्सलान के ऊपर चढ़ाई कर दी, उसे हरा दिया और वहराम को गद्दी पर बैठा दिया।

११११८-११५२. सुलतान बहराम। कुछ वर्षों के शासन के बाद, उसने ग़ोर के साथ छेड़खानी शुरू की, उसके एक राजकुमार को मरवा डाला; मारे गये शाहज़ादे के भाई, सैफ़ुद्दीन ने उसके खिलाफ बग़ावत कर दी, ग़ज़नी पर क़ब्ज़ा कर लिया, और बहराम को भगाकर पहाड़ों में खदेड़ दिया। बहराम फिर लौट आया, सैफ़ुद्दीन को उसने गिरफ़्तार कर लिया और सता-सताकर मार डाला; मारे गये व्यक्ति का एक भाई, अलाउद्दीन, ग़ोर लोगों की फौज लेकर आगे बढ़ा; ग़ज़नी को उसने बिल्कुल बर्बाद कर दिया, उसे मिस्मार करके मिट्टी में मिला दिया; उसने केवल तीन इमारतों को—महमूद, मसऊद प्रथम, और इब्राहीम के मक़बरों को—साबुत खड़ा रहने दिया था। बहराम लाहौर भाग गया; ग़ज़नी राजवंश का अन्त हो गया। ग़ज़नी का शाही परिवार लाहौर में ३४ वर्ष तक (११८६ तक) और राज्य करता रहा, इसके बाद ख़त्म हो गया।

इस प्रकार, महमूद द्वारा अपने को (९९९ में) सुलतान घोषित करने के १८७ वर्ष बाद, महमूद ग़ज़नवी के राजवंश का अन्त हो गया।

(३) ग़ज़नी में सुबुक्तगीन वंश के ध्वंसावशेषों पर ग़ोर वंश की स्थापना, ११५२-१२०६

११५२-११५६. अलाउद्दीन। अर्सलान से भागकर सेलजुकों के पास पहुँचने पर बहराम ने उनसे वादा किया था कि अगर वे उसे उसकी गद्दी फिर दिलवा देंगे तो वह उन्हें कर (ख़राज) देगा और वास्तव में जब तक वह गद्दी पर बना रहा तब तक उन्हें ख़राज देता भी रहा। अलाउद्दीन ने ज्यों ही अपने को ग़ज़नी का बादशाह घोषित किया, त्यों ही सेलजुकों के प्रधान, संजर ने उससे माँग की कि वह पहले की ही तरह ख़राज दे; अलाउद्दीन ने राज देने से इन्कार कर दिया; संजर ने अपनी सेना लेकर उस पर चढ़ाई कर दी और उसे बन्दी बना लिया; फिर भी, संजर ने उसे उसकी गद्दी पर बिठा दिया।

११५३. ओग़ुज़ के तातारी क़बीले ने संजर और अलाउद्दीन दोनों के राज्यों पर अधिकार कर लिया। अलाउद्दीन की मृत्यु के बाद उसका बेटा—

११५६-११५७—सैफ़ुद्दीन उसका उत्तराधिकारी बना; उसे उसके एक अमीर

ने, जिसके भाई की उसने हत्या कर दी थी, मार डाला। अलाउद्दीन के दो भतीजे थे : गयासुद्दीन और शहाबुद्दीन।

११५७-१२०२ गयासुद्दीन गद्दी पर बैठा, उसने अपने भाई शहाब को अपनी फ़ौजों का सेनानायक बना दिया और उसके साथ मित्रता कर ली। दोनों भाइयों ने ख़ुरासान को जीत कर सेलजुकों से छीन लिया। वे दोनों मिल-जुलकर काम करते रहे।

११७६ शहाब लाहौर [गया], वहाँ महमूद के वंश के अन्तिम प्रतिनिधि, ख़ुसरो द्वितीय को उसने हरा दिया।

११८१ शहाब ने सिन्ध पर कब्ज़ा कर लिया, और ११८६ में ख़ुसरो को क़ैद कर लिया, इसके बाद उसकी नज़र हिन्दुस्तान के शक्तिशाली राजपूत राज्यों की तरफ़ गयी, दिल्ली और अजमेर में उस समय महान् राजा पृथ्वीराज राज्य करता था। शहाब दिल्ली के आक्रमण में हार गया। फिर वह ग़ज़नी लौट गया।

११९३ शहाब ने भारत पर फिर हमला किया, राजा पृथ्वी को उसने पराजित कर दिया, उसको मार डाला, अपने एक गुलाम,[1] कुतुबुद्दीन को, जो एक अमीर बन गया था, उसने अजमेर का शासक बना दिया और ख़ुद चला गया। कुतुबुद्दीन ने दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया, वहाँ शासक के रूप में वह रहता रहा, बाद में उसने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया और, इस प्रकार, दिल्ली का पहला मुसलमान बादशाह बन गया।

११९४ शहाब ने कन्नौज और बनारस पर कब्ज़ा कर लिया (कन्नौज का राजा [मारा गया] और उसके परिवार के लोग भागकर मारवाड़ चले गये, वहाँ पर उन्होंने एक राज्य क़ायम किया), ग्वालियर को भी उसने अपने राज्य में मिला लिया, इसी बीच कुतुबुद्दीन ने गुजरात, अवध, उत्तर बिहार, तथा बंगाल को लूट-पाट कर उजाड़ दिया।

१२०२ ग़यास की मृत्यु हो गयी, उसका वारिस उसका भाई—

१२०२-१२०६—शहाबुद्दीन बना, इसने ख़्वारिज़्म को फ़तह करने की कोशिश की, हार गया और अपनी जान बचाने के लिए उसे वहाँ से भागना पड़ा।

१२०६ ख़्वारिज़्म पर उसने दूसरी बार हमला किया, अपने अंग रक्षकों से अलग पड़ जाने पर कुछ खोकरों ने उसकी हत्या कर दी (खोकर एक लुटेरी जाति है), उसका वारिस उसका भतीजा—

---

[1] पूर्वी देशों के राजाओं के गुलाम (ममलूक) उनके दरबारों में अक्सर प्रमुख भूमिका अदा करते थे और कभी-कभी महल में होने वाली क्रान्तियों का भी नेतृत्व करते थे।

१२०६. महमूद बना; वह अपने राज्य को अन्दरूनी झगड़ों से न बचा सका; उसके राज्य के टुकड़े-टुकड़े हो गये; उसके विभिन्न भाग शहाब के प्रिय गुलामों के हाथों में चले गये। सल्तनत का बँटवारा हो गया; कुतुबुद्दीन ने दिल्ली और भारतीय इलाक़ों को लिया। (दिल्ली १२०० वर्षों से एक छोटे और महत्वहीन राज्य की राजधानी बनी चली आयी थी।) एक गुलाम यलदौज़ ने ग़ज़नी पर अधिकार कर लिया, परन्तु ख़्वारिज़्म के बादशाह ने उसे वहाँ से निकाल बाहर किया, वह भागकर दिल्ली पहुँचा। एक दूसरे गुलाम, नासिरुद्दीन ने अपने को मुलतान और सिन्ध का मालिक बना लिया।

(४) दिल्ली के गुलाम [ममलूक] बादशाह १२०६-१२८८

१२०६-१२१०. कुतुबुद्दीन; उसकी मृत्यु के बाद उसका बेटा—

१२१०. अरम उसका उत्तराधिकारी बना, अगले वर्ष उसे उसके बहनोई—

१२११-१२३६ शमसुद्दीन इल्तुतमिश ने गद्दी से हटाकर उसकी जगह ले ली।

१२१७. चंगेज़ ख़ाँ (जन्म ११६४[1]) के नेतृत्व में मंगोलों की एक विशाल सेना ने, जो तूरान से आ रही थी, ख़्वारिज़्म के ऊपर हमला कर दिया; जलाल (शाह के बेटे) ने बड़ी बहादुरी से सिन्धु नदी के किनारे तक, जहाँ मंगोलों की सेना ने उसे ढकेल दिया था; चंगेज ख़ाँ का मुक़ाबला किया। मंगोलों के डर से किसी भी राजा ने उसका साथ नहीं दिया, इसलिए उसने खोकरों का एक गिरोह इकट्ठा किया और दूर-दूर तक लूट-मार का राज्य क़ायम कर दिया।

तब चंगेज़ ख़ाँ ने नासिरुद्दीन के मुलतान और सिन्ध प्रदेश को एक भारी सेना भेजकर उजाड़ डाला; मंगोल जब सिन्ध नदी के उस पार चले गये तो, परिस्थिति का फ़ायदा उठा कर, शमसुद्दीन इल्तुतमिश ने देश पर हमला कर दिया और उसे जीतकर अपने राज्य में मिला लिया।

१२२५. शमसुद्दीन ने बिहार और मालवा को जीत लिया, और—

१२३२. पूरे उत्तरी हिन्दुस्तान में वह बादशाह मान लिया गया; १२३६ में, जिस समय वह अपनी सत्ता के शिखर पर था, उसकी मृत्यु हो गयी; उसका उत्तराधिकारी—

---

[1] मार्क्स ने श्लौशर के आधार पर जो कालक्रम-सारिका तैयार की थी उसमें ११५५ को चंगेज़ ख़ाँ के जन्म का वर्ष बताया गया था ('मार्क्स और एंगेल्स अभिलेखागार', खण्ड ५, पृष्ठ २१६)। अब आमतौर से ११६४ को ही उसके जन्म का वर्ष माना जाता है।

१२३६—उसका बेटा रुकनुद्दीन बना, उसी वर्ष उसकी बहन ने उसे गद्दी से हटाकर उसके राज्य पर कब्जा कर लिया।

१२३६-१२३९: सुलताना रजिया; अबीसीनिया के एक गुलाम के साथ चल रहे उसके प्रेम-व्यापार की वजह से दरबार के अमीर-उमरा उस पर नाराज हो उठे, भटिण्डा के अमीर, अल्तूनिया ने बगावत कर दी, रजिया को उसने कैद कर लिया, वह उस पर आसक्त हो गया और उससे शादी कर ली, अल्तूनिया ने फिर एक सेना लेकर दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, अमीर—उमरा ने उसे हरा दिया और रजिया की हत्या कर दी रजिया का उत्तराधिकारी उसका भाई—

१२३९-१२४१—मुईजुद्दीन बहराम बना, वह भयंकर अत्याचारी था, इसकी भी हत्या कर दी गयी, रुकनुद्दीन का बेटा—

१२४१-१२४६—अलाउद्दीन मासूद उसका उत्तराधिकारी बना, उसकी हत्या कर दी गयी। अब गद्दी शमसुद्दीन इल्तुतमिश के पोते और मुईजुद्दीन बहराम के बेटे—

१२४६-१२६६नासिरुद्दीन महमूद को मिली। गयासुद्दीन बलबन नाम का गुलाम उसका मंत्री था, मुगलों के (मंगोलों के) हमलों को पराजित करने के लिए बलबन ने सीमा-प्रदेश के राज्यों का एक जबर्दस्त संघ कायम किया, अनेक छोटे-छोटे हिन्दू राजाओं को उसने हरा दिया।

१२५८ बलबन ने पंजाब पर किये गये मंगोलों के एक अन्य आक्रमण को असफल कर दिया।

१२६६ बादशाह नासिरुद्दीन महमूद की मृत्यु हो गयी, उसके कोई सन्तान न थी, उसकी गद्दी उसके मंत्री—

१२६६-१२८६—गयासुद्दीन बलबन को मिली। उसका दरबार भारत में मुसलमानों का अकेला दरबार था।

१२७९ बंगाल में विद्रोह उठ खड़ा होने की वजह से वह रणक्षेत्र में चला गया, उसकी अनुपस्थिति में दिल्ली के शासक, तुगरिल ने बगावत कर दी और अपने को उस शहर का बादशाह घोषित कर दिया, लौटने पर, गयास ने उसे हरा दिया और उसकी तथा एक लाख बन्दियों की हत्या कर दी। १२८६ में उसकी मृत्यु हो गयी, उसका उत्तराधिकारी उसका दूसरा बेटा बुगरा खाँ, जो अभी जिन्दा था, नहीं बना (गयास का पहला बेटा पहले ही मर चुका था), बल्कि बुगरा खाँ का बेटा—

१२८६-१२८८—कैकुबाद बना (बलबन का सबसे बड़ा बेटा मुहम्मद भी

कैख़ुसरो नाम का एक लड़का छोड़ गया था, इसे मुलतान का शासक बना दिया गया)।

१२८७. [कैक़ुबाद ने] अपने षड्यंत्रकारी वज़ीर, निज़ामुद्दीन को ज़हर दे दिया (निज़ामुद्दीन ने कैख़ुसरो के साथ मिलकर पहले षड्यंत्र किया था, फिर उसी को मरवा दिया था; कैक़ुबाद को भी उसने इस बात के लिए राज़ी कर लिया था कि एक दावत के समय अपने दरबार के तमाम मंगोलों को वह धोखे से मरवा दे)। वज़ीर के मर जाने पर दरबार में गड़बड़ी फैल गयी। दिल्ली में उस समय (१२८७ में) मुख्य दल ख़िलजियों के पुराने ग़ज़नी वंश का था; १२८८ में इन लोगों ने कैक़ुबाद को मार डाला और—

१२८८—अपने नेता, जलालुद्दीन ख़िलजी को दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया।

(५) ख़िलजी वंश

१२८८-१३२१

१२८८-१२९५. जलालुद्दीन ख़िलजी: इसने एक उदार शासन की नींव डाली; एक विद्रोही सरदार, ग़यासुद्दीन के भतीजे को उसने माफ़ कर दिया; मंगोलों के एक आक्रमण को पराजित कर देने के बाद, उसने तमाम बन्दियों को रिहा कर दिया।

१२९३. तीन हज़ार मंगोल आकर उसके साथ शामिल हो गये और दिल्ली में बस गये।

अपने भतीजे अलाउद्दीन को उसने अवध का शासक बना दिया; उसने दक्षिण पर हमला करने की तैयारी की; इलिचपुर से होता हुआ देवगिरि (जिसे अब दौलताबाद कहा जाता है) अपनी सेना के साथ पहुँच गया, वहाँ जो हिन्दू राजा एकदम शान्तिपूर्वक रहता था उस पर उसने अचानक हमला कर दिया, उसके नगर और कोष को लूट लिया, तथा आस-पास के प्रदेश पर भारी हर्जाना लाद दिया; राजा ने उसके साथ सन्धि कर ली और वह मालवा वापिस चला गया; वहाँ से वह दिल्ली गया, दिल्ली में जिस समय उसका शाही चचा उसे छाती से लगा रहा था उसने उसकी छाती में छुरा भोंक दिया।

१२९५-१३१७. अलाउद्दीन ख़िलजी (भयंकर रूप से ख़ूँख़ार और ख़ूनी)। अपने चाचा की मृत्यु के बाद, इसने उसके बेटों और विधवा स्त्री को

मरवा डाला। इसके फलस्वरूप विद्रोह हो गया, विद्रोह का उसने बागियों की स्त्रियो और बच्चो का क़त्लेआम करके अन्त किया।

१२९७ उसने गुजरात को जीता। थोडे ही समय बाद एक मगोल आक्रमण [हुआ], अलाउद्दीन ने उसे पराजित कर दिया।

१२९८[1] अलाउद्दीन शिकार पर गया हुआ था, तभी उसके भतीजे शाहजादा सुलेमान ने उसे घायल कर दिया, उसे मरा समझ कर सुलेमान वहाँ से चला गया। वह दिल्ली [गया] और वहाँ उसने गद्दी का दावा किया, किन्तु, इसी बीच, अलाउद्दीन अच्छा हो गया, अच्छा होकर वह अपनी सेना के सामने आया, वह पूरेतौर से उसके साथ हो गयी। सुलेमान और दो दूसरे भतीजों के सिर उसने कटवा दिये, इसके परिणाम-स्वरूप जन विद्रोह हो गया, इसे भयकर निर्दयता के साथ कुचल दिया गया।

१३०३ अलाउद्दीन ने मेवाड जाकर चित्तौड पर क़ब्ज़ा कर लिया, चित्तौड एक पहाडी पर बना हुआ भारत का एक सबसे प्रसिद्ध किला था, वहाँ एक विद्रोही राजपूत राज्य करता था, मगोल आक्रमण हुआ।

१३०४ हिन्दुस्तान के अन्दर घुसने के लिए मगोलों ने ३ बार अलग-अलग कोशिशें कीं, हर बार उन्हें भगा दिया गया, फ़रिश्ता के कथनानुसार, ऐसे अवसरो पर जितने भी मगोल बन्दी पकड कर पडाव पर लाये जाते थे उन सबको बहुत बुरी तरह मौत के घाट उतार दिया जाता था।

१३०६ देवगिरि के राजा पर अलाउद्दीन ने जो ख़राज लगाया था उसे देने से उसने इन्कार कर दिया, इसलिए एक हिजडे और पहले के गुलाम, मलिक काफ़ूर के नेतृत्व म अलाउद्दीन ने उसके खिलाफ एक बडी फ़ौज भेज दी। राजा पराजित हुआ और दिल्ली ले जाया गया, अपना शेष सारा जीवन उसने वहीं बिताया।

१३०९ मलिक काफ़ूर को दोबारा दक्षिण भेजा गया, इस बार तेलगाना, वहाँ उसकी विजय हुई, वारगल के सुदृढ किले पर उसन अधिकार कर लिया।

१३१०. मलिक काफ़ूर ने कर्नाटक तथा पूरे पूर्वी तट को कन्या कुमारी तक जीत लिया, बेशुमार दौलत लाद कर वह दिल्ली लौट आया, अपनी विजयों के विस्तार की स्मृति के रूप मे कन्या कुमारी अन्तरीप म उसने एक मस्जिद बनवाई थी। तमिल भूमि पर यह पहला मुसलमानी आक्रमण था। दिल्ली मे जो १५ हजार मुग़ल रहते थे उन सबकी अलाउद्दीन न हत्या करवा दी। मलिक काफ़ूर ने गद्दी के लिए षडयन्त्र करना शुरू कर

[1] एलफ़िंस्टन के कथनानुसार, १२९९।

दिया; लोग अलाउद्दीन की निर्दयता तथा अत्याचारों से ऊब उठे थे, इसलिए देश भर में जबर्दस्त अव्यवस्था पैदा हो गयी।

१३१६. "अत्याचारी" अलाउद्दीन को गुस्से के कारण मिर्गी का दौरा आया और वह मर गया; काफ़ूर ने गद्दी पर क़ब्ज़ा करने की कोशिश की; उसकी "हत्या" कर दी गयी; अलाउद्दीन का बेटा—

१३१७-१३२०—**मुबारक खिलजी** गद्दी पर बैठा; उसने अपने शासन का श्रीगणेश अपने तीसरे भाई की आँखें फुड़वाकर और जिन दो सेनानायकों ने गद्दी पर बैठने में उसकी मदद की थी उनकी हत्या करके किया; फिर उसने अपनी पूरी सेना को भंग कर दिया, एक गुलाम—**ख़ुसरो ख़ाँ**—को अपना वज़ीर बनाया, और खुद निकृष्टतम क़िस्म की ऐय्याशी में लग गया।

१३१९. **ख़ुसरो** ने मलबार को फ़तह कर लिया—

१३२०—में वह दिल्ली लौटा, बादशाह **मुबारक** को उसने मार डाला, और उसके खानदान के तमाम बचे लोगों का क़त्ल करके देश को खिलजियों से मुक्त कर दिया; फिर उसने सिंहासन पर अधिकार कर लिया; किन्तु—

१३२१—में पंजाब के शासक, **गयासुद्दीन तुग़लक** के नेतृत्व में एक विशाल सेना आकर दिल्ली के सामने खड़ी हो गयी; दिल्ली को उजाड़ दिया गया, खुसरो को मार दिया गया, और पंजाब का वह भूतपूर्व शासक बादशाह तथा तुग़लक वंश का संस्थापक बन गया; इस वंश ने सौ वर्ष से अधिक तक दिल्ली पर शासन किया। **गयासुद्दीन तुग़लक** (भूतपूर्व गुलाम) गयासुद्दीन बलवन के एक गुलाम का लड़का था; गयासुद्दीन बलवन नासिरुद्दीन महमूद का वज़ीर तथा उत्तराधिकारी था।

(६) तुग़लक वंश, १३२१-१४१४

१३२१-१३२५. **गयासुद्दीन तुग़लक प्रथम**; इसका शासन अत्यन्त उदार था।

१३२४. अपने बेटे **जूना ख़ाँ** पर शासन का भार छोड़कर, उसने बंगाल पर चढ़ाई कर दी। वापिस आने पर—

१३२५. में, ख़ुशियाँ मनाते समय, एक मण्डप के गिर जाने से उसकी मृत्यु हो गयी; उसका बेटा **जूना ख़ाँ** उसका वारिस बना, उसने अपना नाम—

१३२५-१३५१—**मुहम्मद तुग़लक** रखा; अपने समय का वह सबसे योग्य राजा था। उसने खुद अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं से अपने को बर्बाद कर लिया। उसका पहला काम यह था कि उसने मंगोलों को मिला लिया और उनको इस हद तक अपना दोस्त बना लिया कि उसके पूरे शासनकाल में उन

एक भी हमला नहीं किया। फिर उसने दक्षिण को अपने अधीन किया। इसके बाद विश्व साम्राज्य कायम करने की उसकी योजनाएँ [आयीं]।

[उसने] एक इतनी विशाल 'फ़ारस की सेना' (फारस को फतह करने के लिए) तैयार की कि उस सेना के लिए उसके पास पैसा नहीं रह गया तब उसने चीन को अधीन करने की तजवीज़ रखी और एक लाख सैनिकों को भेज दिया कि हिमालय के अन्दर से चीन जाने का कोई रास्ता वे ढूँढ निकालें तराई[1] के जंगलों में उनमें से लगभग हर आदमी मर गया। उसका ख़ज़ाना चूँकि ख़ाली हो चुका था, इसलिए जनता के ऊपर उसने अत्यन्त विनाशकारी कर लादे, ये कर इतने भारी थे कि ग़रीब लोग घर छोड़कर जंगलों में भाग गये, उसने इन लोगों के ख़िलाफ़ एक फ़ौजी घेरा डलवा दिया और फिर तमाम भगोड़ों को पकड़वा कर उसने एक नर-संहार रचा जिसमें उसने ख़ुद भाग लिया, जैसे शिकार में जानवरों को मारा जाता है वैसे ही उसने उन सबको मरवा डाला। फलस्वरूप फ़सल बिल्कुल मारी गयी और एक भयंकर अकाल पड़ा। चारों तरफ़ विद्रोह उठ खड़े हुए, मालवा और पंजाब के विद्रोह तो आसानी से कुचल दिये गये किन्तु—

१३४०—बंगाल का विद्रोह सफल हो गया। कारोमंडल तट (कृष्णा नदी से कन्या कुमारी तक के पूर्वी तट) ने विद्रोह कर दिया और स्वाधीन हो गया। तेलंगाना और कर्नाटक में विद्रोह भी सफल हुए। अफ़गानों ने पंजाब को लूटमार कर उजाड़ दिया, गुजरात ने बग़ावत कर दी और अकाल पूरे ज़ोर पर था। बादशाह ने गुजरात पर [चढ़ाई कर दी], पूरे प्रान्त को लूटमार कर वीरान कर दिया, और फिर दस में तेज़ी से इधर उधर भागता हुआ बारी बारी से हर विद्रोह को कुचलने की कोशिश करने लगा वह इसी काम में लगा हुआ था कि—

१३५१—में सिन्ध के ट्ट्टा नामक स्थान में बुखार से उसकी मृत्यु हो गयी। (अपने भारत के इतिहास में एलफिंस्टन लिखता है कि 'पूर्व में किसी बुरे बादशाह को ख़त्म कर देने को आमतौर से इतना कम बुरा समझा जाता है कि ऐसा बहुत ही कम होता है कि एक आदमी का प्रशासन इतनी ज़बर्दस्त बर्बादी कर सके जितनी कि मुहम्मद तुगलक ने की थी।) उसके बाद उसका भतीजा—

[1] पहाड़ के नीचे का घने जंगल वाला इलाक़ा।

१३५१-१३८८—**फ़ीरोज़ तुग़लक** गद्दी पर बैठा; बंगाल को फिर से अपने राज्य में मिलाने की असफल कोशिश करने के बाद, उसने उस प्रान्त की तथा दक्षिण की स्वाधीनता स्वीकार कर ली; उसका शासन महत्वहीन था जिसमें छोटे-छोटे विद्रोह और छोटी-छोटी लड़ाइयाँ होती रही थीं।

१३८५. बहुत बूढ़ा हो जाने पर, उसने एक वज़ीर नियुक्त किया।

१३८६. उसने अपने बेटे नासिरुद्दीन को अपने स्थान पर बादशाह बना दिया; लेकिन भूतपूर्व बादशाह के भतीजों—

१३८७—ने नासिर को दिल्ली से भगा दिया, उन्होंने घोषणा की कि फ़ीरोज़ ने अपनी गद्दी अपने पोते ग़यासुद्दीन को दी थी; ८० वर्ष की उम्र में, १३८८ में, फ़ीरोज़ की मृत्यु हो गयी।

१३८८-१३८९. **ग़यासुद्दीन तुग़लक द्वितीय**; जिन चचेरे भाइयों ने उसे गद्दी पर बैठाया था उनसे उसने तुरन्त झगड़ा कर लिया, उन्होंने जल्दी ही उसे गद्दी से हटा दिया; गद्दी उसके भाई—

१३८९-१३९०—**अबूबकर तुग़लक** को मिली; उसके चचा नासिर ने एक बड़ी सेना लेकर दिल्ली पर चढ़ाई कर दी और उसे क़ैद कर लिया।

१३९०-१३९४. चार साल के शासन के बाद **नासिरुद्दीन तुग़लक** की मृत्यु हो गयी; उसके सबसे बड़े बेटे हुँमायूँ ने अपने ४५ दिन के ही शासन में शराबख़ोरी करके अपने को ख़त्म कर लिया; उसके स्थान पर उसका भाई—

१३९४-१४१४—**महमूद तुग़लक** गद्दी पर बैठा। विद्रोह, झगड़े, लड़ाइयाँ। **मालवा, गुजरात और ख़ान्देश** ने फ़ौरन ही अपने को स्वतंत्र कर लिया। यहाँ तक कि दिल्ली में भी विभिन्न दलों के बीच बराबर झगड़े और गड़-बड़ियाँ होती रहती थीं; [तभी]—

१३९८—में **तैमूर (तैमूर लंग का) पहला हमला** [हुआ]। (यह हमला उसने चंगेज़ ख़ाँ के लगभग पूरे साम्राज्य पर अधिकार कर लेने और उसे अपने अधीन कर लेने के बाद किया था; फिर उसने फ़ारस, आमू पार के प्रदेश, तातारी प्रदेश और साइबेरिया पर चढ़ाई करके उन्हें अपने क़ब्ज़े में ले लिया)। तैमूर [भारत में] काबुल के रास्ते घुसा था; उसी समय उसके पोते पीर मुहम्मद ने मुल्तान पर चढ़ाई कर दी। सतलज के किनारे दोनों सेनाएँ मिल गयीं और दिल्ली की ओर बढ़ने लगीं, रास्ते में सारे इलाके को वे वीरान बनाती गयीं। महमूद तुग़लक गुजरात भाग गया; इसी बीच दिल्ली को लूट कर जला दिया गया और उसके बाशिन्दों को मौत के

पाट उतार दिया गया। फिर मगोलों ने मेरठ पर कब्जा कर लिया और—

१३९९—मे, काबुल के रास्ते से वे आमू पार के प्रदेश की ओर लौट गये। साथ मे उनके लूट का सारा माल था। महमूद फिर दिल्ली वापस आया, १४१४ मे वही उसकी मृत्यु हो गयी। तैमूर जिस खिज़्र खाँ को शासक बना कर चला गया था, खिज़्र खाँ ने सैय्यद, यानी पैगम्बर के असली वशज के नाम से अपने को बादशाह घोषित कर दिया। सीद अथवा सीदी सेयार का अरबी पर्याय है[1], यह सिद (Cid) की ही तरह है, यह एक सम्मानजनक पदवी है जिसे उन सब लोगों ने धारण किया था जो अपने को मुहम्मद का वशज कहते थे, *il est porte aussi par tous les Ismaeliens* [2]

(७) सैय्यदो का शासन, १४१४-१४५०

१४१४-१४२१ सैय्यद खिज़्र खाँ; शहर और आस-पास के एक छोटे-से इलाके को छोड़ कर दिल्ली के राज्य का कुछ भी शेष नहीं रह गया था, अलाउद्दीन खिलजी द्वारा विजित तमाम इलाके हाथ से जा चुके थे। खिज़्र खाँ तैमूर के केवल एक प्रतिनिधि के रूप मे ही काम करता था, वह वास्तव मे एक बहुत छोटा शासक था। उसने रुहेलखण्ड और ग्वालियर पर कर लगाया था, उसके स्थान पर उसके बेटे—

१४२१-१४३६—सैय्यद मुबारक ने शासन का भार सभाला। पजाब मे इस समय बहुत गड़बड़ी फैल रही थी, उसने कोई परवाह नही की। १४३६ मे उसके वजीर ने उसकी हत्या कर दी, उसके स्थान पर उसका बेटा—

१४३६-१४४४—सैय्यद मुहम्मद गद्दी पर बैठा, मालवा के राजा ने दिल्ली प्रदेश पर आक्रमण कर दिया, पजाब के शासक बहलोल खाँ लोदी की मदद से सैय्यद ने उसे मार भगाया, उसका वारिस उसका बेटा—

१४४४-१४५०—सैय्यद अलाउद्दीन बना, उसने बदायूँ मे, गगा के उस पार, अपना महल बनाया, पजाब के गवर्नर बहलोल खाँ लोदी ने दिल्ली पर कब्जा कर लिया।

---

[1] 'अमीर का' जिसका अर्थ प्रभु है।

[2] सैय्यदी की उपाधि 'इस्माइली' लोग भी धारण करते हैं।

(८) लोदी वंश, १४५०-१५२६

१४५०-१४८८. बहलोल लोदी; उसने पंजाब और दिल्ली को मिला कर एक कर दिया। १४५२ में, जौनपुर के राजा ने दिल्ली को घेर लिया; फलस्वरूप युद्ध छिड़ गया जो २६ वर्षों तक चलता रहा (यह बात महत्वपूर्ण है, यह जाहिर करती है कि देशी राजे अब इतने शक्तिशाली हो गये थे कि पुराने मुस्लिम शासन का [विरोध कर सकें]) । युद्ध का अन्त राजा की पूर्ण पराजय के रूप में हुआ; जौनपुर को दिल्ली में मिला लिया गया। बहलोल ने और भी जीतें हासिल कीं; जब वह मरा तो उसका राज्य जमुना से लेकर हिमालय तक फैल गया था, पूर्व में वह बनारस तक फैला हुआ था, पश्चिम में बुन्देलखण्ड तक। उसके बाद उसका बेटा—

१४८८-१५०६—सिकन्दर लोदी गद्दी पर बैठा; उसने बिहार को फिर अधिकार में ले लिया; वह एक योग्य और शान्तिप्रेमी शासक था; उसके बाद उसका बेटा—

१५०६-१५२६—इब्राहीम लोदी गद्दी पर बैठा; यह खूंखार आदमी था; अपने दरबार के तमाम सरदारों की उसने हत्या कर दी; पंजाब के गवर्नर को भी उसने मारने की कोशिश की; उसने अपनी मदद के लिए बाबर के नेतृत्व में मुग़लों को बुला लिया।

१५२४. भारत पर बाबर का आक्रमण; बाबर ने पंजाब के गवर्नर को, जिसने उसे बुलाया था, कैद कर लिया; लाहौर पर कब्ज़ा कर लिया; वहाँ दिल्ली के इब्राहीम का भाई, अलाउद्दीन उससे आकर मिल गया; मुग़ल सेना का प्रधान बनाकर उसे दिल्ली को फ़तह करने के लिये भेज दिया गया। इब्राहीम ने उसके परखचे उड़ा दिये; तब बाबर स्वयम् वहाँ आया; पानीपत (दिल्ली के उत्तर में, यमुना के समीप) में दोनों सेनाओं का मुकाबला हुआ।

१५२६. पानीपत की पहली लड़ाई। इब्राहीम पराजित हुआ, वह स्वयम् और ४० हजार हिन्दू रणक्षेत्र मे खेत रहे। बाबर ने दिल्ली और आगरा पर अधिकार कर लिया।

रौबर्ट सीवेल (मद्रास सिविल सर्विस) ने भारत के विश्लेषणात्मक इतिहास (१८७०) में लिखा है:

एशिया में तीन बड़ी नस्लें हैं: (१) तुर्क (तुर्कमान), जो बुखारा के

आस-पास तथा पश्चिम की ओर कैस्पियन सागर तक फैले हुए हैं, (२) तातार, ये साइबेरिया तथा रूस के एक भाग मे बसे हुये हैं, इनके मुख्य कबीले अस्त्राखान तथा कज़ान मे है और तुर्की कबीलो के उत्तर के संपूर्ण प्रदेश म फैले हुए हैं (३) मुगल अथवा मगोल, य मगोलिया, तिब्बत तथा मचूरिया म बस है ये सब गडरियों के कबीले है। पश्चिमी मुगल अथवा काल्मुक, और पूर्वी मुगल अनक कबीला, अथवा उलूज़ मे बट हुए हैं। ये उलूज़ अथवा फिरके आपसी दोस्ती करके अक्सर एक नेता के नेतृत्व म एक हो जाया करन हैं।

११६४ चगेज़ खाँ का जन्म, वह एक महत्वहीन फिरके का मुखिया था, खिनान क तातारो को वह खराज चुकाना था बाद मे, उसके हाथो पिटने के बाद, तातार भी उसकी फौजो म शामिल हो गये थ, फिर उसकी फ़ौजो की सख्या मगोलो की फौजो से बढ़ गयी थी। इस फौज के साथ चगेज़ खाँ ने पूर्वी मगोलिया और उत्तरी चीन को फतह किया, फिर आमू पार के प्रदेश तथा खुरासान को जीत लिया, उसन तुर्की प्रदेश, अर्थात्, बुखारा, ख्वारिज़्म, फ़ारस को फ़तह कर लिया, और भारत पर आक्रमण कर दिया। उस समय उसका साम्राज्य कैस्पियन सागर व पोलैण्ड तक फैला हुआ था, दक्षिण की तरफ हिन्द महासागर तथा हिमालय तक उसका विस्तार था, अस्त्राखान तथा कज़ान उसके साम्राज्य की पश्चिमी सीमाओ पर थे। उसकी मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य चार भागो मे बट गया था किप्चक, ईरान, चगतई, तथा चीन समेत मगोलिया, पहल के तीन भागो पर खान लोग शासन करते थे, अन्तिम भाग चूंकि मूल शासक देश था इसलिए उसके शासक को सर्वोच्च, अथवा बड़ा खान माना जाता था।

१३३६ चगतई म केश नामक स्थान पर तैमूर का जन्म हुआ, यह स्थान समरकन्द से अधिक दूर नही था, वह—

१३६०—ने केश के शहज़ादे के तथा बर्लास कबीले के प्रधान के रूप मे अपने चाचा सैफ़ुद्दीन का उत्तराधिकारी बना, बर्लास कबीला चग़तई के खान, तुगलक तैमूर के आधिपत्य मे था।

१३७० तैमूर लग ने खान के राज्य, आदि पर अधिकार कर लिया। १४०५ मे उसकी मृत्यु हो गयी। उसकी मृत्यु के बाद उसका साम्राज्य उसके बेटो म बँट गया, उसका सबसे बडा भाग पीर मुहम्मद को मिला जो तैमूर के सबसे बडे लडके का दूसरा बेटा था।

इसी लेखक (सीवेल) के कथनानुसार, तुर्कों के मुख्य परिवारों में थे आटोमान (१४वीं शताब्दी में ये लोग पश्चिम की ओर चले गये थे, वहाँ फ्राइविया में उन्होंने अपनी सत्ता क़ायम की थी, वहाँ से उन्हें कभी नहीं हटाया जा सका), सेलजुक (मुख्यतया फ़ारस, सीरिया तथा इकोनियम में थे), तथा उज़्बेक (इनका वंश १३०५ में पैदा हुआ था); ये लोग किप्चक के तुर्क थे, उनका नाम उज़्बेक उनके ख़ान के नाम पर पड़ा था। यह ख़ान १३०५ में पैदा हुआ था। बाबर के ज़माने में ये बहुत शक्तिशाली थे।[1]

१५२६. बाबर, तैमूर (तैमूर लंग) का छठा वंशज था; वह फ़रग़ाना (वर्तमान कोकनद का एक प्रान्त) के बादशाह, उमरशेख़ मिर्ज़ा का बेटा था। वह अकेला मुग़ल सम्राट था जिसने स्वयं अपनी जीवनी लिखी थी; उसका अनुवाद लेडेन और अर्स्किन ने किया था (१८२६)। जन्म १४८३, मृत्यु १५३०।

. . . .

बाबर के आगमन के समय भारत के राज्य

१३५१. मुहम्मद तुग़लक के दिल्ली राज्य के विध्वंस के बाद अनेक नये राज्य क़ायम हो गये थे। १३९८ के क़रीब (तैमूर के आक्रमण के समय),

---

[1] रौबर्ट सीवेल की पुस्तक में कई ग़लतियाँ पायी जाती हैं। एक तो वह कहता है कि साइबेरिया के तातार तथा मंगोल दो अलग-अलग क़ौमों के लोग हैं। दूसरे, चंगेज़ ख़ाँ के जन्म की तिथि के सम्बन्ध में देखिए पृष्ठ........। तीसरे, तैमूर की मृत्यु के बाद, सबसे बड़ा राज्य उसके बेटे शाहरुख़ को प्राप्त हुआ था, पीर मुहम्मद को नहीं, जैसा कि सीवेल कहता है, शाहरुख़ ख़ुरासान, सेयिस्तान तथा मजन्दरान का शासक था। चौथे, आटोमान तुर्कों के मध्य एशिया से एशिया माइनर जाने की बात को अनेक इतिहासकार सही नहीं मानते। १४वीं शताब्दी में, आटोमान लोगों ने बरसा के आसपास के इलाके में अपनी सत्ता स्थापित कर ली थी; आसपास के प्रदेश में अपनी सत्ता का विस्तार यहीं से उन्होंने किया था। पांचवें, उज़्बेकों की बात करते समय, सीवेल उज़्बेक ख़ाँ का उल्लेख करता है जो सुनहरी सेनाओं* (Golden Horde—किप्चकों) का १३१३ से १३४० तक प्रधान था। उज़्बेक नाम को यूहेची क़बीलों के एक भाग ने उसी के आधार पर अपना लिया था; इन क़बीलों ने उसी के कहने पर इस्लाम धर्म को स्वीकार कर लिया था।

* किप्चकों का नाम। ये तुर्क थे। मध्य और दक्षिण रूस में इनके साम्राज्य की स्थापना तेरहवीं शताब्दी में बाटू ने की थी।—अनु०

दिल्ली के इर्द गिर्द के कुछ मील के स्थानों को छोडकर, पूरा भारत मुसलमानो के आधिपत्य से मुक्त था, मुख्य भारतीय राज्य निम्न थे

(१) दक्षिण के बहमनी राजे, इस राज्य की स्थापना गगू बहमनी नामक एक गरीब आदमी ने की थी, गुलबर्गा मे उसने अपना स्वाधीन राज्य क़ायम कर लिया था।

१४२१ बहमनी राजा ने तेलगाना [के राजा] को वारगल मे भगा दिया और हिन्दू बाद म राज महेन्द्री, मछलीपट्टम् तथा कजीवरम् पर अधिकार कर लिया। (तेलगाना म उत्तरी सरकार, हैदराबाद, बालाघाट, कर्नाटक प्रान्त शामिल थ। गजम् और पुलीकट के बीच तिलगा[1] भाषा अब भी बोली जाती है)। इसके बाद ही, शिया और सुन्नी दो धार्मिक सम्प्रदायों [की शत्रुता के कारण] आन्तरिक उथल-पुथल पैदा हो गयी, [शिया लोग] यूसुफ आदिल के नेतृत्व म बीजापुर चले गये और वहाँ पर उन्होंने एक राज्य की स्थापना की, अपने नेता को उन्होंने बादशाह आदिलशाह की पदवी दी।

(२) बीजापुर-अहमदनगर।

१४८६-१५७६,[2] राजवश का शासनकाल। मराठों का उदय इसी छोटे से राज्य हिन्दू मे हुआ था, एक प्रसिद्ध ब्राह्मण अपने शिष्यों को लेकर यहाँ से चला गया था और उसने अहमदनगर के राज्य की स्थापना की थी।

(३) गोलकुण्डा[3]-बरार-बीदर। ये तीनों छोटे-छोटे राज्य भी बहुत-कुछ इसी तरह पैदा हुए थे और १६वीं शताब्दी के अन्त तक बने रहे थे।

(४) गुजरात (१३५१-१३८८)। फीरोज तुगलक के शासनकाल में एक राजपूत, मुजफ्फरशाह को इसका गवर्नर बना दिया गया था, उसने उसे एक स्वतत्र राज्य बना लिया। बाद में, सख्त लडाई के बाद उसके हिन्दू उत्तराधिकारियों ने मालवा को अपने राज्य मे मिला लिया (१५३१)। यह राज्य १३९६ से १५६१ तक कायम रहा था।[4]

---

[1] तिलगा अथवा तेलगू भाषा।

[2] मार्क्स ने यहाँ पर उस काल को दिया है जिसमें राजवश के अन्तिम प्रतिनिधि का शासन शुरू हुआ था। उसका शासन १५९५ में खत्म हो गया था।

[3] १६वीं शताब्दी के अन्तकाल से ही गोलकुण्डा प्राय बीजापुर पर निर्भर रहने लगा था, क्योंकि उसका अपना राजनीतिक महत्व अधिकांशतया समाप्त हो गया था। मुगल साम्राज्य के अधीन वह १६३६ में गया था, १६८७ में, अन्त में, उसे मुगल साम्राज्य में मिला लिया गया था।

[4] मार्क्स यहाँ वह वर्ष बता रहे हैं जिसमें राजवश के अन्तिम प्रतिनिधि के शासन का आरम्भ हुआ था। उसके शासन का १५७२ में अन्त हो गया था।

(५) गुजरात के साथ-साथ मालवा भी स्वतंत्र हो गया, १५३१ तक उस पर गोर वंश का शासन था; १५३१ में गुजरात के बहादुरशाह ने उसे स्थायी रूप से अपने राज्य में मिला लिया।

(६) खानदेश; १३९९ में स्वतंत्र राज्य बन गया; १५९९ में अकबर ने उसे फिर दिल्ली के साम्राज्य में मिला लिया।

(७) राजपूत राज्य। मध्य भारत में कई राजपूत राज्य थे; इनकी हिन्दू स्थापना आमतौर से मुक्त पहाड़ी क़बीलों ने की थी; ये बहुत बढ़िया सैनिक थे, इन में से अधिक महत्वपूर्ण राज्यों के नाम थे: चित्तौड़, मारवाड़ (या जोधपुर), बीकानेर, जैसलमेर, जयपुर।

भारत में मुग़ल साम्राज्य

१५२६-१७६१[1]

(२३५ वर्ष कायम रहा)

(१) बाबर का शासन

१५२६-१५३० बाबर का शासनकाल।

१५२६. कुछ ही महीनों के अन्दर, बाबर के सबसे बड़े बेटे हुमायूं ने इब्राहीम लोदी के पूरे राज्य को अपने अधीन कर लिया।

१५२७. मेवाड़ के राजा संग्राम ने, जो एक राजपूत था, और जिसने अजमेर और मालवा को अपने शासन में ले लिया था, एक विशाल सेना लेकर दिल्ली पर चढ़ाई कर दी, संग्राम को मारवाड़ और जयपुर का सामन्ती नेता माना जाता था, [उसने] आगरा के समीप बयाना पर अधिकार कर लिया और बाबर की फौज की एक टुकड़ी को पराजित कर दिया। सीकरी की लड़ाई ("भारतीय हेस्टिंग्स"[2]) हुई। बाबर की भारी विजय हुई, उसने भारत में अपनी सत्ता स्थापित कर ली। (बाद की अपनी लड़ाइयों में बाबर ने तीरों के साथ-साथ बारूद का भी इस्तेमाल किया,

---

[1] तथाकथित 'मुग़ल साम्राज्य' की स्थापना १५२६ में बाबर ने की थी, वह १७६१ तक चला था। बाबर अपने को एक "मुग़ल" ("मंगोल का विकृत स्वरूप") कहता था, वह अपने को प्रसिद्ध तैमूरलंग का (छठी पीढ़ी का) वंशज बताता था। मां की तरफ से वह चंगेज़ खाँ का वंशज था। वास्तव में, न वह मंगोल था और न उसकी सेना, वह फारस से आया था और उसकी सेना तुर्कों, फारसियों तथा अफगानों से मिलकर बनी थी। मुग़ल साम्राज्य की सरकारी भाषा फ़ारसी थी। १७०७ में, औरंगज़ेब की मृत्यु के बाद, *मुग़ल साम्राज्य का विघटन होने लगा था यद्यपि सारे अधिकारों से वंचित, महान मुग़ल,* अथवा शाहंशाह दिल्ली के राजसिंहासन पर १८५७ तक बैठा रहा था।

[2] *इस लड़ाई में मुसल्मान मुग़ल सेनाओं ने हिन्दू फौजों को हरा दिया था और भारत को* फ़तह कर लिया था।

वह अपने गोलों और तोड़ेदार बन्दूक़ चलाने वालों तथा अपने तीरंदाज़ों का ज़िक्र करता है; वह स्वयम् तीर-कमा का एक अच्छा निशाने-बाज था।)

१५२८. चंदेरी (चंदारी; सिंधिया) पर जिस पर एक राजपूत राजा का राज्य था, भारी नुक़सान उठाकर अधिकार किया गया था; उस पर अधिकार करने में पूरी गैरीसन का एक-एक आदमी काम आ गया था। इसी समय अवध में अफ़ग़ानों ने हुमायूँ को हरा दिया; उसकी सहायता के लिए बाबर ने चंदेरी से कूच कर दिया, वहाँ पहुँचकर उसने दुश्मन को हरा दिया और दिल्ली लौट गया। इसके बाद ही संग्राम [के बेटे] ने रणथम्भौर के क़िले को समर्पित कर दिया।

१५२९. यह सुनकर कि महमूद लोदी ने बिहार पर क़ब्ज़ा कर लिया है, बाबर ने उसके ऊपर चढ़ाई कर दी; उसकी फ़ौजों को उसने भगा दिया और उसके राज्य को अपने साम्राज्य में मिला लिया; इसके बाद उसने घाघरा नदी के घाट पर बंगाल के राजा को, (जिसके अधिकार में उत्तर बिहार था) हरा दिया; अपने अभियान का अन्त उसने अर्ध जंगली अफ़ग़ानों के एक क़बीले को जड़मूल से मिटाकर किया। इन लोगों ने लाहौर पर क़ब्ज़ा कर लिया था।

२६ दिसम्बर, १५३०. बुखार से दिल्ली में बाबर की मृत्यु हो गयी; उसकी इच्छा के अनुसार उसे काबुल में, ख़ुद उसके द्वारा चुने गये एक स्थान पर, दफ़न किया गया; काबुल के निवासी आज भी उस स्थान पर छुट्टियाँ मनाने जाते हैं। (देखिए बर्नेस)।

(२) हुमायूँ का पहला और दूसरा शासन-काल, बीच में सूरवंश का शासन, १५३०–१५५६

१५३०. बाबर चार बेटे छोड़ गया था : हुमायूँ, शाहंशाह (जो उसका उत्तराधिकारी बना); कामरान, जो उस वक़्त काबुल का गवर्नर था, अपनी पिता की मृत्यु के बाद उसने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया था; हिन्दाल, यह सम्भल का गवर्नर था; और मिर्ज़ा अस्करी, यह मेवात का गवर्नर और एक बहादुर सिपाही था। हुमायूँ का पहला काम जौनपुर (चानपुर) के विद्रोह को कुचलना था; इसके बाद [उसने] गुजरात के ख़िलाफ़ युद्ध छेड़ दिया; गुजरात के राजा, बहादुरशाह ने,

बाबर की मृत्यु की खबर पाकर, मुगलो के खिलाफ लड़ाई छेड दी थी।
५ वर्षों के अन्दर, अर्थात—

१५३५—जब हुमायूँ ने गुजरात की सेना को नष्ट कर दिया, इसके बाद उसने चम्पानेर के किले पर जहाँ बहादुरशाह चला गया था, अधिकार कर लिया।

१५३६ उस किले पर जल्दी ही कब्जा हो गया बहादुर ने ऊपरीतौर से उसके साथ दोस्ती कर ली।

१५३० हुमायूँ शेरखाँ के साथ लड़ाई में उलझा हुआ था, क्योंकि वह बंगाल पर कब्जा करने की कोशिश कर रहा था, मौका देखकर बहादुरशाह ने गुजरात पर फिर अधिकार कर लिया और मालवे पर चढ़ाई कर दी।

१५३७-१५४० शेर खाँ के खिलाफ हुमायूँ के सैनिक अभियान। शेर खाँ, उर्फ शेरशाह दिल्ली के गोर राजाओं का वंशज था।

१५२७ लोदियों को हराने के बाद एक अफसर के रूप में वह बाबर की सेना में शामिल हो गया था, अपने काम से उसने इज्जत हासिल की थी, बाबर ने उसे बिहार का एक सेनानायक बना दिया था।

१५२९ महमूद लोदी ने बिहार पर अधिकार कर लिया, और शेर खाँ उससे मिल गया, महमूद की मृत्यु पर वह बिहार का मालिक बन गया।

१५३२ जिस समय हुमायूँ गुजरात में था, शेरशाह ने बंगाल की तरफ बढ़ना शुरू कर दिया, इसलिए—

१५३७—में हुमायूँ अपनी सेना लेकर उसकी तरफ रवाना हो गया, वहाँ, दोनों तरफ की फौजी चालों के बावजूद—

१५३९—में, हुमायूँ को गंगा के किनारे उसके शिविर में शेरशाह ने अचानक घेर लिया, उसको बुरी तरह हरा दिया, हुमायूँ को भागना पड़ा, और शेर खाँ, उर्फ शेरशाह ने बंगाल पर कब्जा कर लिया।

१५४० हुमायूँ ने फिर पहल की और कन्नौज पर चढ़ाई कर दी, वह फिर हार गया, भागते समय गंगा मे डूबते-डूबते बचा, शेर खाँ ने लाहौर तक उसका पीछा किया, हुमायूँ भाग कर सिंध चला गया, एक-दो बार घेरा डालने की असफल कोशिशें करने के बाद, वह मारवाड़ (जोधपुर) भाग गया, किन्तु वहाँ के राजा ने उसे वहाँ रहने देने से इन्कार कर दिया, और वह जैसलमेर के रेगिस्तान में भटकता रहा, वहाँ भी उसके और उसके थोड़े से साथियों के पड़ावों पर बराबर हमले होते रहे, वहीं—

१४ अक्टूबर, १५४२—को, उसके हरम की एक अतीव सुन्दरी नर्तकी हमीदा

के गर्भ से प्रसिद्ध अकबर का जन्म हुआ, १८ महीने तक रेगिस्तान में भटकते रहने के बाद, वे सब अमर कोट पहुँचे, वहाँ उनको आदर-सत्कार के साथ रखा गया।

हुमायूँ ने एक बार फिर सिंध को फतह करने की असफल कोशिश की; इसके बाद उसे कंधार चला जाने दिया गया; वहाँ उसने देखा कि वह प्रान्त उसके भाई मिर्ज़ा अस्करी के अधिकार में था, उसने हुमायूँ को मदद देने से इन्कार कर दिया। हुमायूँ भाग कर हेरात [फ़ारस] चला गया। फ़ारस में उसके साथ एक बन्दी जैसा व्यवहार किया गया; शाह तहमास्प ने उसे सफ़ावी धर्म स्वीकार करने के लिए मजबूर किया। (सफ़ावी, या सूफ़ी बादशाह सन्त दरवेशों के एक परिवार के वंशज थे, ये सन्त दरवेश शिया सम्प्रदाय के मानने वाले थे; उन्होंने आज़ादी हासिल कर ली थी और अपने नाम पर एक नये धर्म की स्थापना की थी; यही फ़ारस का धर्म बन गया था।) इसके बावजूद—

१५४५—में, तहमास्प ने १४,००० घोड़ों से हुमायूँ की सहायता की। हुमायूँ ने अफ़ग़ानिस्तान पर धावा कर दिया, अपने भाई मिर्ज़ा अस्करी से उसने कन्धार छीन लिया; अपने अफ़सरों के विरोध के बावजूद, उसने उसकी (अपने भाई की) जान नहीं ली। फिर उसने काबुल पर कब्ज़ा कर लिया। वहाँ पर, बाबर का तीसरा बेटा, हिन्दाल उसके साथ हो गया।

१५४८. कामरान, उसका तीसरा भाई, जिसने [उसके ख़िलाफ़] बग़ावत कर दी थी [अब] उससे मिल गया। (परन्तु, उसने फिर विद्रोह किया और १५५१ में उसे कुचल दिया गया; उसने फिर गड़बड़ी की तो १५५३ में उसे क़ैद कर दिया गया और उसकी आँखें निकलवा ली गयीं)।

इस तरह, हुमायूँ फिर अपने परिवार का प्रधान बन गया; वह काबुल में ही रहता रहा।

बीच में, १५४०-१५५५ तक, दिल्ली में सूरवंश का राज्य

१५४०-१५४५. दिल्ली में शेर शाह।

१५४०. दिल्ली के राज्य पर (उसने) क़ब्ज़ा कर लिया और अपना नाम बदल कर शेर खां की जगह शेर शाह कर लिया; उसने हुमायूँ के सारे इलाक़ों पर अधिकार कर लिया।

१५४१. उसने मालवा को जीत लिया, १५४३ मे रायसेन [के क़िले को], और १५४४ मे मारवाड़ को जीत लिया।

१५४५. उसने चित्तौड के चारो तरफ घेरा डाल दिया, शहर की तोप के एक गोले से धोखे में मर गया। उसका उत्तराधिकारी उसका छोटा बेटा—

१५४५-१५५३—जलाल खाँ बना, वह सलीम शाह सूर के नाम से दिल्ली का शाह बन गया। शेरशाह के सबसे बड़े बेटे, आदिल ने अपना हक़ लेने की कोशिश की, हार गया और वहाँ से भाग गया। सलीम शाह सूर के शासन-काल मे सार्वजनिक निर्माण के बहुत अच्छे काम हुए।

१५५३. सलीम शाह सूर की मृत्यु हो गयी, उसके बड़े भाई आदिल ने गद्दी पर कब्जा कर लिया।

१५५३-१५५४ मुहम्मद शाह सूर आदिल, अपने नौजवान भतीजे, सलीम शाह के पुत्र की उसने हत्या करवा दी, ऐशो-इशरत में लग गया, थोड़े ही समय के बाद उसी के परिवार के एक व्यक्ति, इब्राहीम सूर के नेतृत्व में विद्रोह उठ खडा हुआ, इब्राहीम सूर ने उसे भगा दिया, और दिल्ली तथा आगरे पर अधिकार कर लिया। पजाब, बगाल, और मालवा ने भी फौरन अपनी अधीनता खत्म कर दी। इन उपद्रवो की खबर पाकर—

१५५४. मे, हुमायूँ ने एक फौज इकट्ठा की, और अपने राज्य-सिंहासन पर अधिकार करने के लिए काबुल से रवाना हो गया।

जनवरी, १५५५ हुमायूँ ने काबुल से कूच किया, पजाब पर चढाई कर दी, लाहौर, दिल्ली, आगरा पर बिना किसी कठिनाई के उसने कब्जा कर लिया।

जूलाई, १५५५. हुमायूँ ने फिर अपनी पुरानी भारी शानो-शौकत हासिल कर ली—

जनवरी, १५५६ सगमर्मर के एक चिकने पत्थर पर पैर फिसल कर गिर जाने से हुमायूँ की मृत्यु हो गयी, उस समय उसका पुत्र अकबर (जो १३ वर्ष का हो चुका था) अपने पिता के वज़ीर, बैराम खाँ के साथ पजाब मे था, बैराम खाँ उसे फौरन दिल्ली ले आया।

(३) अकबर का शासन, १५५६-१६०५

१५५६. स्वाभाविक था कि शुरू-शुरू मे बैराम खाँ ही वास्तविक शासक था, किन्तु जिस समय वह दिल्ली मे स्थानीय शासन को ठीक-ठाक करने मे

लगा हुआ था, उस समय बदख़्शां के बादशाह ने काबुल पर कब्ज़ा कर लिया, और उसी समय शाह आदिल के वजीर, हेमू ने भी बग़ावत का झण्डा ऊँचा कर दिया।

पानीपत की दूसरी लड़ाई। हेमू ने आगरा पर अधिकार कर लिया, बैराम उसका मुक़ाबला करने के लिए आगे बढ़ा, दोनों सेनाओं की पानीपत में मुठभेड़ हुई; **हेमू की पराजय हुई,** बैराम ने उसकी स्वयं अपने हाथों से हत्या की; इस प्रकार शेर खाँ के वंश का अन्त कर दिया गया।

बैराम जब दिल्ली लौटा तो उसको अपनी शक्ति का बहुत गुमान हो गया था; उसने अनेक लोगों को, जो उसका विरोध करते थे, मरवा दिया; इनमें खासतौर से अकबर के दोस्त भी थे; इसलिए—

१५६०—में अकबर ने शासन की बागडोर स्वयं अपने हाथों में ले ली; बैराम राजपूताना में नगर चला गया, और ज्योंही अकबर ने उससे उसके अधिकार छीनने की घोषणा की त्योंही उसने **बग़ावत कर** दी। अकबर ने उसके खिलाफ़ एक सेना रवाना की, उसे बुरी तरह हरा दिया गया, फिर माफ़ कर दिया गया, किन्तु एक कुलीन वंशी सरदार [के बेटे] ने उसको मार डाला क्योंकि उसने धोखा देकर उसके पिता की हत्या कर दी थी। अकबर १८ वर्ष का हो गया था; उसका राज्य दिल्ली और आगरा के **आस-पास के इलाक़े तथा पंजाब तक सीमित था।**

गद्दी पर बैठने के लगभग तुरन्त बाद उसने अजमेर, ग्वालियर, और लखनऊ को फ़तह कर लिया; इसके बाद उसने—

१५६१—में मालवा को वहाँ के बाग़ी गवर्नर, अब्दुल्ला खाँ से पुनः जीत लिया **और उसे देश निकाला दे दिया।** वह खान एक उज़्बेक था, इसलिए—

१५६४—में, उसके देश निकाले के परिणामस्वरूप, उज़्बेकी फ़िरके ने विद्रोह कर दिया; अकबर ने स्वयं जाकर १५६७ में इस विद्रोह को कुचला।

१५६६. अकबर के भाई, **हकीम ने काबुल पर** कब्ज़ा कर लिया; एक लम्बे अर्से तक वही उसका स्वामी बना रहा।

१५६८-१५७०. राजपूत राज्य।

१५६८. अकबर ने चित्तौड़ पर घेरा डाल दिया; चित्तौड़ के राजा ने बड़ी बहादुरी से उसका मुक़ाबला किया, फिर एक तीर लगने से उसकी मृत्यु हो गयी, चित्तौड़गढ़ का पतन हो गया। बचे-खुचे राजपूत [तर-हिन्दू दार] उदयपुर [भाग गये], वहाँ उनके प्रधान सेनानायक के वंशजों ने एक नये राज्य की स्थापना की और वह उनका राज्य आज तक [क़ायम]

है। इसके बाद जयपुर और मारवाड़ के साथ शान्तिमय सम्बन्ध कायम रखने के लिए अकबर ने दो राजपूत रानियों से विवाह किया।

१५७०[1] अकबर ने रणथम्भोर तथा कालिंजर के दो और राजपूत [गढ़ों] को अपने राज्य में मिला लिया।

१५७२-१५७३ गुजरात। वहाँ उपद्रव (उपद्रवकारियों के तीन दल थे प्रथम गवर्नर मजरा मिर्ज़ाओं[2] का तैमूर लंग के वंशजों का था इसी दिनों ने वे अकबर के सम्बन्धी थे १५६६ में उन्होंने सम्भल में विद्रोह कर दिया था वे भगा दिये गये थे और भागकर गुजरात चले आये थे)। गवर्नर एतमाद खाँ ने न्योता दिया कि अकबर स्वयं वहाँ आये।

१५७३ अकबर गुजरात [गया] उसे उसने सीधे शाही शासन के अन्तर्गत ले लिया मिर्ज़ा लोगों को उसने मार भगाया और फिर आगरा लौट आया। मिर्ज़ा लोगों ने फिर विद्रोह किया अकबर ने उन्हें अन्तिम रूप में कुचल दिया।

१५७५ बंगाल। वहाँ शाहज़ादा दाऊद ने अधीन रहने से इन्कार कर दिया (कर, आदि देना बन्द कर दिया)। अकबर बंगाल [गया] दाऊद को उसने उड़ीसा भगा दिया ज्योंही वहाँ से वह लौटा त्योंही दाऊद ने फिर बंगाल पर चढ़ाई कर दी, अपनी अमलदारी को पुनः उसने हासिल कर लिया, जमकर लड़ाई हुई अकबर ने उसे पराजित किया, दाऊद लड़ता हुआ मारा गया।

१५७५-१५९२ बिहार, १५३० से शेर खाँ के वंशज उस पर शासन करते आये थे १५७५ में [अकबर ने] उसको फिर अपने राज्य में मिला लिया।—थोड़े ही समय बाद बिहार और बंगाल की शाही फ़ौजों में विद्रोह उठ खड़ा हुआ उसे पूरे तौर से तीन साल तक न दबाया जा सका। इसलिए बिहार से निकाले गये अफ़गानों ने उड़ीसा के सूबे पर कब्ज़ा कर लिया और कुछ समय तक उस पर शासन करते रहे।

१५९२ अन्त में उड़ीसा में अफ़गानों को अकबर के एक सेनापति ने कुचल दिया।

१५८२ काबुल में शाहज़ादा हकीम ने पंजाब पर चढ़ाई कर दी अकबर ने

---

[1] बर्नीयर के अनुसार १५६९, ("विन्सेंट स्मिथ, आधुनिक भारत का इतिहास" एडिनबर्ग, १९१३।)

[2] मिर्ज़ा (शाहज़ादे) मुहम्मद सुल्तान के वंशज और सम्बन्धी। मिर्ज़ा बाबर के साथ भारत आये थे। उनके नाम उलुग मिर्ज़ा शाह मिर्ज़ा और इब्राहीम हुसेन मिर्ज़ा थे। उन्होंने दिल्ली के सिंहासन पर अधिकार करने की कोशिश की थी।

उसे मार भगाया, और काबुल पर अपना अधिकार कर लिया; अपने भाई हकीम को उसने माफ़ी दे दी और अपने, यानी दिल्ली के शाहंशाह के अधीन उसे काबुल के सूबे का गवर्नर-जनरल बना दिया।

१५८२-१५८५. शान्ति, **अकबर ने साम्राज्य जमा लिया।** धार्मिक मामलों की तरफ़ वह उदासीन था, इसलिए सहिष्णु था, उसके मुख्य धार्मिक तथा साहित्यिक परामर्शदाता **फ़ैज़ी और अबुलफ़ज़्ल** थे। फ़ैज़ी ने प्राचीन संस्कृत काव्यों का अनुवाद किया; इनमें **रामायण** और **महाभारत** भी थे (बाद में, गोआ में अकबर द्वारा एक रोमन-कैथलिक पुर्तगाली पादड़ी के ले आये जाने के पश्चात्, फ़ैज़ी ने ईसाई धर्म-प्रचारकों की रचनाओं का भी अनुवाद किया था)। **हिन्दुओं के प्रति वह ख़ास तौर से उदार था;** अकबर सिर्फ़ **सती प्रथा** (पति की चिता पर विधवाओं को जला देने की प्रथा), आदि का अन्त करने पर जोर देता था। उसने **जज़िया,** अर्थात् **प्रति व्यक्ति पर लगाये जाने वाले उस कर का** अन्त कर दिया जिसे प्रत्येक हिन्दू को **मुसलमान सरकार को ज़बर्दस्ती चुकाना पड़ता था।**

अकबर की राजस्व (मालगुज़ारी—अनु०) **व्यवस्था** (इसकी रचना उसके वित्त मंत्री, **राजा टोडर मल** ने की थी); काश्तकारों से लगान **वसूल करने के लिए—**

(१) पहले पैमाइश का एक एकविध मान स्थापित किया गया और फिर **पैमाइश की एक निश्चित व्यवस्था क़ायम कर दी गयी।**

(२) हर **अलग-अलग बीघे की पैदावार** का पता लगाने के लिए और उसके आधार पर यह निश्चित करने के लिए कि **सरकार को उसे उसका कितना भाग देना चाहिए,** ज़मीन को, **उर्वरता की भिन्न-भिन्न मात्राओं के अनुसार, तीन अलग-अलग श्रेणियों में** बाँट दिया गया। फिर, प्रत्येक बीघा की **औसत** उपज उसकी श्रेणी के आधार **पर निश्चित की गयी** और पैदावार की **इस मात्रा के एक-तिहाई भाग** को बादशाह का अंश **निर्धारित किया गया।**

(३) रुपये में पैदावार की इस मात्रा की क्या क़ीमत होगी इसे तै करने के लिए पूरे देश के पैमाने पर १९ साल की क़ीमतों के नियमित रिकार्ड तैयार किये गये थे; फिर उनका **औसत** निकालकर, **नक़दी के रूप में** उसका मूल्य लिया जाता था।

छोटे अधिकारियों की ज़्यादतियों को सख़्ती से ख़त्म कर दिया गया; **मालगुज़ारी की मात्रा को घटा दिया गया;** किन्तु वसूली के ख़र्चे भी

कर दिये गये; इसमें असली आमदनी की मात्रा उतनी ही बनी रही। ठेके पर उठाकर मालगुजारी वसूलने की प्रथा को अकबर ने समाप्त कर दिया, इस प्रथा की वजह से बहुत जुल्म और लूट-खसोट होती थी।

साम्राज्य को १५ सूबों में बाँट दिया गया। हर सूबे के मुख्य अधिकारी को वाइसराय (सिपहसालार और बाद में सूबेदार—अनु०) कहा जाता था।

न्याय व्यवस्था *काजी क़ानून बनाता, पूरी तहक़ीक़ात व बाद मुक़दमों की कैफियत पेश करता। मीर आदिल (प्रधान न्यायाधीश) बादशाह की मर्जी का नुमाइन्दा होता। वह मुक़दमे के* निर्णय को सुनता और सजा देता। अकबर ने सजाओं की संहिता में सुधार किया, उसकी स्थापना आंशिक रूप से मुसलमानी रीति-रिवाजों के आधार पर और आंशिक रूपसे मनु द्वारा निर्धारित नियमों के आधार पर उसने की।

सेना *सेना में तनख़ा देने की व्यवस्था में ज़बर्दस्त गड़बड़ी थी, शाही* ख़ज़ाने से नियमित रूप से सैनिकों को तनख़ा देने की व्यवस्था कायम करके अकबर ने कुचालों को रोक दिया, प्रत्येक रेजीमेन्ट में भर्ती किये जाने वाले तमाम सैनिकों की सूची उसने रखवानी शुरू कर दी।

दिल्ली को उसने उस समय की दुनिया का सबसे बड़ा और सबसे ख़ूबसूरत शहर बना दिया।

१५८५-१५८७ कश्मीर, १५८५ में, उज़्बेकों के आक्रमण के डर से काबुल में उपद्रव शुरू हो गये, अकबर ने उन्हें ज़बर्दस्त शक्ति प्रदर्शन के द्वारा कुचल दिया।

१५८६ कश्मीर के आक्रमण में असफल हुआ, १५८७ में वह उसमें सफल हो गया और उसने कश्मीर को अपने साम्राज्य में मिला लिया।

१५८७ पेशावर तथा आस-पास के उत्तर पश्चिमी जिले। देश के इस भाग पर एक *शक्तिशाली अफ़ग़ानी क़बीले, यूसुफ़ज़ाइयों का अधिकार था, इस क़बीले का सम्बन्ध कट्टर रौशनी सम्प्रदाय के साथ था, इन लोगों ने* काबुल को इतना हलाकान किया कि अकबर ने उनसे लड़ने के लिए दो डिवीज़न भेजे—एक डिवीज़न के नेता राजा बीरबल थे और दूसरे के ज़ैन ख़ाँ। दोनों ही डिवीज़न करीब-करीब काट डाल गये, शाही सेना के बचे-खुचे जो लोग थे वे अटक की तरफ़ भाग गये। अकबर ने वहाँ एक और सेना भेजी और इन अफ़ग़ानों को पहाड़ों में भगा दिया, यही एकमात्र विजय थी जो उनके ख़िलाफ़ लड़ाई में वह प्राप्त कर सका था।

१५६१. सिन्ध : किन्हीं आन्तरिक झगड़ों का बहाना बना कर अकबर ने उस पर हमला कर दिया और उसे अपने साम्राज्य में मिला लिया।

१५६४. हुमायूँ की मृत्यु पर कंधार को पारसियों ने फिर अपने अधिकार में ले लिया था, [अकबर ने] उसे फिर लड़कर छीन लिया।

इस प्रकार, १५६४ में, पूरा उत्तरी भारत मुग़लों के शासन में आ गया।

दक्षिण में लड़ाइयाँ, १५९६-१६००

१५९६. शाहज़ादा मुराद (अकबर के दूसरे बेटे) और मिर्ज़ा ख़ाँ के नेतृत्व में दो सेनाओं ने अहमदनगर पर आक्रमण किया; अहमदनगर पर प्रसिद्ध सुलताना चाँद का अधिकार था; उसको घेरने और उसपर हमला करने की कोशिशें फ़ेल हो गयीं; अकबर को सिर्फ़ बरार पर कब्ज़ा करने का मौक़ा मिल सका।

१५९७. नयी लड़ाइयाँ; ख़ानदेश के राजा के उसकी सेना में आ मिलने तथा उसकी अधीनता स्वीकार कर लेने से अकबर की ताक़त बढ़ गयी। गोदावरी नदी पर मुराद जो लड़ाई लड़ रहा था वह अनिर्णीत रही; नर्बदा के पास अकबर उसकी सेना से जा मिला।

१६००. अपने सबसे छोटे लड़के दानियाल को उसने अहमद नगर को घेरने के लिए आगे भेज दिया, फिर ख़ुद वहाँ जाकर उसके साथ शामिल हो गया, सेना ने वीरांगना सुलताना की हत्या कर दी और शहर को मुग़लों के हवाले कर दिया।

सलीम के विद्रोह की वजह से अकबर को हिन्दुस्तान वापिस लौटना पड़ा; अपने पिता की अनुपस्थिति में, सलीम ने अवध और बिहार पर कब्ज़ा कर लिया था; अकबर ने उसे माफ़ कर दिया और बंगाल तथा उड़ीसा दे दिया; सलीम का शासन निर्मम था, अकबर उसके ख़िलाफ़ कार्रवाई करने ही वाला था कि सलीम ने आगरा में उससे माफ़ी माँग ली।

१६०५. उसके बेटों—मुराद और दानियाल की अचानक मृत्यु की वजह से अकबर की भी ६३ वर्ष की अवस्था में जल्दी ही मृत्यु हो गयी। उसके एकमात्र जीवित बेटे सलीम ने शाहंशाह की हैसियत से जहाँगीर ("विश्व-विजेता") के नाम से शासन करना शुरू कर दिया।

(४) जहाँगीर का शासन, १६०५-१६२७

१६०५. जहाँगीर के गद्दी पर बैठने के समय हिन्दुस्तान शांत था, किन्तु दक्खिन में अशान्ति बढ़ रही थी और उदयपुर के साथ युद्ध चल रहा था। अपने पिता के तमाम प्रमुख अधिकारियों को जहाँगीर ने उनके पदों पर कायम रखा, मुस्लिम धर्म को पुन: राज्य-धर्म के रूप में स्थापित कर दिया और एलान किया कि न्याय व्यवस्था को पहले ही की तरह वह कायम रखेगा। जिस समय जहाँगीर आगरा में था, उसके बेटे, शाहज़ादा खुसरो ने दिल्ली और लाहौर में बगावत कर दी थी, जहाँगीर ने उसे हरा दिया और क़ैद कर लिया, खुसरो के ७०० अनुयाइयों को उसने खूँटों पर लटकवा कर फाँसी दे दी और उनकी भयानक कतारों के बीच से खुसरो को निकाला।

१६१० जहाँगीर ने दो सेनाएँ रवाना की, एक दक्षिण की तरफ, दूसरी उदयपुर की तरफ। दक्खिन में अहमदनगर के युवा राजा का मंत्री, मलिक अम्बर था, अहमदनगर के राजा की राजधानी औरंगाबाद ले जायी गयी थी, १६१० में मलिक अम्बर ने अहमदनगर को फिर छीन लिया था (अकबर वहाँ पर जो दुर्गरक्षक सेना छोड़ गया था वह हार गयी थी) किन्तु—

१६१७—में पहले मलिक अम्बर के खिलाफ भेजी गयी सेनाएँ उसे हराने में सफल न हो सकीं। यह सफलता भी उन्हें खुली लड़ाई में नहीं, बल्कि मलिक अम्बर के मित्रों द्वारा उसका साथ छोड़ देने की वजह से ही मिल सकी थी।

१६११ जहाँगीर ने नूरजहाँ (फारस के एक उत्प्रवासी की बेटी) के साथ शादी कर ली। वह उसके ऊपर पूरे तौर से हावी थी, और पहले की शादी से हुए उसके बेटों के खिलाफ साजिश करती थी।

१६१२. शाहज़ादा खुर्रम (बाद में शाहजहाँ) ने उदयपुर को जीत लिया और मारवाड़ को अधीन कर लिया।

१६१५ जेम्स प्रथम के राजदूत के रूप में—ईस्ट इण्डिया कम्पनी के सम्बन्ध में, जो अभी बीज रूप में ही थी, बातचीत करने के लिए दिल्ली के दरबार में सर टामस रो आया। दिल्ली दरबार में पहुँचने वाला वह पहला अंग्रेज था। जहाँगीर ने खुर्रम (अपने तीसरे बेटे) को अपना उत्तराधिकारी नियुक्त किया (उसका सबसे बड़ा बेटा, खुसरो, जेल में ही बन्द रहा, १६२१ में

वहीं उसकी मृत्यु हो गयी; और अपने दूसरे बेटे, परवेज़ को वह नाकारा समझता था) ख़ुर्रम को उसने गुजरात का सूबेदार बना दिया और मलिक अम्बर के ख़िलाफ़, जिसने फिर विद्रोह कर दिया था, लड़ने के लिए भेज दिया।

१६२१. नूरजहाँ ने जहाँगीर को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि ख़ुर्रम (शाहजहाँ) को वह क़न्धार भेज दे; इसके पीछे उसका इरादा यह था कि उसे दिल्ली से हटाकर अपने प्रिय बेटे परवेज को गद्दी पर बैठा दे। इसलिए शाहजहाँ ने विद्रोह करने की बेकार कोशिशें कीं—

१६२४—में वह एक शोकार्त्त अपराधी के रूप में दिल्ली में हाज़िर हुआ। थोड़े ही समय बाद, नूरजहाँ महाबत ख़ाँ से, जिसे शाहजहाँ के ख़िलाफ़ लड़ने के लिए भेजा गया था, नाराज़ हो गयी; उसे दक्षिण से वापिस बुलवा लिया गया, दिल्ली में उसके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया गया। जहाँगीर उसी समय काबुल जाने वाला था, उसने महाबत को अपने साथ ले लिया और उसके साथ इतना कठोर बर्ताव किया कि, जिस समय तमाम शाही फ़ौजें वितस्ता (झेलम—पश्चिम से पूर्व की ओर जाने पर पंजाब की पांच नदियों में यह दूसरे नम्बर पर पड़ती है) को पार कर गयी थीं, महावत ने जहाँगीर को क़ैद कर लिया और बन्दी के रूप में उसे अपने शिविर में ले गया। नूरजहाँ ने नदी पार की, फ़ौरन महाबत पर हमला कर दिया, काफ़ी नुक़सान उठाने के बाद उसकी हार हो गयी, इसके बाद उसने महाबत की अधीनता स्वीकार कर ली। बन्दिनी बनकर वह जहाँगीर के पास पहुँच गयी। महाब्रत अपने शाही क़ैदियों को साथ ले गया, उनके साथ उसका व्यवहार सम्मानपूर्ण था, किन्तु नूरजहाँ उसकी सेना में से अपने समर्थकों को इकट्ठा करने लगी।

१६२७. नूरजहाँ की सलाह पर फ़ौज की एक बड़ी परेड के समय जहाँगीर घोड़े पर बैठकर महाबत के आसपास के सैनिकों के घेरे से बाहर निकल गया और एक ऐसी सैनिक टुकड़ी के पास पहुँच गया जो पूरे तौर से उसके साथ थी, उसने उसे छुड़ा लिया। महाबत को माफ़ कर दिया गया और शाहजहाँ से लड़ने के लिए भेज दिया गया, किन्तु वहाँ जाकर वह फ़ौरन उससे मिल गया।

२८ अक्तूबर, १६२७. लाहौर के रास्ते में जहाँगीर की मृत्यु हो गयी। दिल्ली के गवर्नर आसफ़ ख़ाँ ने फ़ौरन शाहजहाँ को बुलवा भेजा; थोड़े ही समय में महाबत ख़ाँ के साथ वह वहाँ आ पहुँचा और पूरे शान-शौकत से आगरे

में उसका राज्याभिषेक कर दिया गया; नूरजहाँ को मजबूर होकर राजनीतिक जीवन से सन्यास लेना पड़ा।

(५) शाहजहाँ का शासन, १६२७-१६५८

१६२७[1] खान जहाँ लोदी का विद्रोह। यह शाहज़ादा परवेज़ का एक सेनानायक था, यह मलिक अम्बर के निष्क्रिय बेटे की सनाओं में मिल गया, फिर माफ़ी का आश्वासन पा जाने पर वह दिल्ली लौट आया, किन्तु उसको विश्वास नहीं था इसलिए वह चम्बल नदी की तरफ भाग गया, वहाँ शाही सेनाओं का उसने मुकाबला किया, हार गया, तब चम्बल पार कर बुन्देलखण्ड की ओर से वह अहमदनगर चला गया।

१६२९. उसके खिलाफ़ शाहजहाँ स्वयं सेनाएँ लेकर दक्षिण गया, बुरहानपुर में शाहजहाँ से उसकी मुठभेड़ हुई और शाहजहाँ ने उसे अहमदनगर की ओर वापिस खदेड़ दिया, खान जहाँ को उम्मीद थी कि बीजापुर में अपने मित्र मुहम्मद आदिलशाह के पास वह सुरक्षित रह सकेगा, किन्तु उसने उसे वहाँ पनाह देने से इन्कार कर दिया, तब वह मालवा की ओर भागा, वहाँ से उसने बुन्देलखण्ड में घुसने की कोशिश की, परन्तु वह बुरी तरह हारा और मार डाला गया। इसके बाद शाहशाह ने अहमदनगर पर चढ़ाई कर दी।

१६३०[2] अहमदनगर जिस समय शाही सेनाओं से घिरा हुआ था, उसी समय अहमदनगर के राजा के मन्त्री, फतह ख़ाँ ने उसकी हत्या कर दी और नगर को शाहजहाँ के हवाले कर दिया। इसके बाद, शाहजहाँ ने बीजापुर नगर पर अधिकार करने की असफल कोशिश की, फिर बीजापुर को घेरने तथा दक्षिण में मुख्य सेनानायक का काम करने की ज़िम्मेदारी महाबत ख़ाँ पर छोड़कर शाहजहाँ दिल्ली वापिस लौट गया।

१६३४ बीजापुर के असफल घेरे के बाद महाबत ख़ाँ को वहाँ से वापिस बुला लिया गया।

१६३५ शाहजहाँ ने ख़ुद जाकर बीजापुर को घेर लिया—पर वह उस पर अधिकार न कर सका।

१६३६ इसलिए, शाहजहाँ ने बीजापुर के राजा मुहम्मद आदिलशाह के साथ

---

[1] डॅन्स के अनुसार, १६२८।
[2] डॅन्स के अनुसार, १६३१।

सन्धि कर ली और अहमदनगर राज्य को उसी को दे दिया, किन्तु इसकी वजह से अहमदनगर राज्य की स्वाधीनता ख़त्म हो गयी। ६ साल तक आदिल ने पूरी मुग़ल सेना को आगे बढ़ने से रोक रखा था।

१६३७. शाहजहाँ काबुल [गया]; वहाँ से अलीमर्दान ख़ाँ (जो अकबर द्वारा १५९४ में फ़ारसियों से छीने गये कन्धार के नये मुग़ली सूबे का सूबेदार था) और अपने बेटे मुराद के नेतृत्व में उसने बलख़ के ख़िलाफ़ अपनी सेनाएँ भेजीं।

१६४६. चूँकि दोनों ही हमले सफल हुए, इसलिए बलख़ पर कब्ज़ा कर लिया गया और शाहंशाह के तीसरे बेटे, औरंगज़ेब को वहाँ का शासक बना दिया गया।

१६४७. बलख़ में उज़्बेकों ने औरंगज़ेब को घेर लिया; उसको बहुत क्षति उठानी पड़ी और वह हिन्दुस्तान भाग गया।

१६४७. शाह अब्बास के नेतृत्व में ईरानियों ने फिर कन्धार पर अधिकार कर लिया; उस पर फिर से अधिकार करने के लिए औरंगज़ेब को भेजा गया; दुश्मन ने उसकी रसद को उसके पास पहुँचने से रोक दिया, बाध्य होकर उसे काबुल लौट जाना पड़ा।

१६५२. कन्धार पर पुनः अधिकार करने का नया प्रयत्न असफल हुआ; १६५३ में भी, जब बादशाह के सबसे बड़े लड़के दारा शिकोह ने उस पर अन्तिम आक्रमण किया था, ऐसा ही हुआ था। मुग़ल वहां से चले आये, क़न्धार फिर ईरानियों के हाथ में चला गया।

१६५५. गोलकुण्डा के वज़ीर मीरजुमला की प्रार्थना पर मुग़ल सेनाएँ फिर दक्षिण में लौट आयीं; मीरजुमला को उसके स्वामी राजा अब्दुल्ला ख़ाँ ने मारने की धमकी दी थी। इसके बाद, औरंगज़ेब ने हैदराबाद पर अधिकार कर लिया और—

१६५७—में, उसने गोलकुण्डा को घेर लिया; अब्दुल्ला खाँ ने अधीनता स्वीकार कर ली और दस लाख पौंड सालाना की भेंट देने का उसने वायदा किया। शाहजहाँ की बीमारी का समाचार पाकर औरंगज़ेब जल्दी-जल्दी दिल्ली की ओर चला। शाहजहाँ के चार बेटे थे: दाराशिकोह, शुजा, औरंगज़ेब, और मुराद। दारा राज्य का शासन चलाता था; शुजा बंगाल का सूबेदार था; मुराद (जो सबसे छोटा था) गुजरात का सूबेदार था। औरंगज़ेब, शाहजहाँ का तीसरा बेटा पक्का और सोच-विचार कर काम करने वाला था, वह स्वयं बादशाह बनना चाहता था और चूँकि वह जानता था

[1] एल्फिन्स्टन के अनुसार, १६४४।

कि मजहब साम्राज्य की बहुत बड़ी प्रेरणा-शक्ति था, इसलिए उसने इस्लाम के रक्षक के रूप म लोकप्रियता प्राप्त करने की चेष्टा की।

बीमार होने पर, शाहजहाँ ने राज-काज का काम दारा को सौंप दिया, शुजा न विद्रोह कर दिया, बिहार पर चढाई कर दी यही मुराद ने किया, उसन सूरत पर अधिकार कर लिया। औरगजेब ने दाराशिकोह और शुजा को आपस म लड़ाकर एक दूसरे को कमजोर करने दिया और यह कहकर अपनी सना को लेकर मुराद के पास पहुँच गया कि, यद्यपि वह तो फकीर बनकर दुनिया स दूर चला जाना चाहता है, किन्तु ऐसा करन के पहले वह अपने सबस छोट भाई का राजसिहासन पर बैठा देना चाहता है। दाराशिकोह ने शुजा का हरा दिया, फिर उसने मुराद और औरगजेब के ऊपर हमला कर दिया। उस हरा दिया गया।

१६५८ शाहजहाँ की स्पष्ट आज्ञा के विरुद्ध, दाराशिकोह फिर लड़ने के लिए मैदान मे पहुँच गया आगरे क पास सामूगढ़ म सेनाएँ मिली, मुराद की बहादुरी के सामन [दाराशिकोह] न टिक सका, भागकर वह अपने पिता के पास आगरे चला गया, औरगजेब न उसका वहाँ भी पीछा किया, दानो को महल के अन्दर एक सुरक्षित स्थान म कैद कर लिया, विश्वासघात करके उसने मुराद को भी पकड लिया और दिल्ली म नदी पार सलोमगढ़ के किले म कैद कर दिया, फिर जजीरों से बँधवाकर उसे ग्वालियर के क़िले म भेज दिया, शाहजहाँ के स्थान पर, जिसे उसने राजसिहासन से हटा दिया था, औरगजेब ने स्वयम अपने को बादशाह घोषित कर दिया, उसन आलमगीर की पदवी धारण की।

(६) औरगजेब का शासन, और मराठो का उदय १६५८-१७०७

१६५८ दाराशिकोह बन्दीगृह से निकल भागा और लाहौर जा पहुँचा (वहाँ पर उसके बेटे सुलेमान ने उसके पास पहुँचने की कोशिश की, किन्तु उसे बीच मे ही रोक दिया गया और कश्मीर की राजधानी श्रीनगर म कैद कर दिया गया), तब दारा सिन्ध की तरफ [बढ़ा], और शुजा ने दिल्ली पर चढाई कर दी। यद्यपि लडाई के बीचोबीच राजा जसवन्तसिह के नेतृत्व में शाही सेनाओं के एक भाग ने धोखा देकर उसका साथ छोड दिया था, फिर भी खजवा की लड़ाई म औरगजेब ने उसे हरा दिया, शुजा की पराजय के बाद राजा जसवन्तसिह जोधपुर भाग गया।

इसी समय दाराशिकोह फिर रणक्षेत्र में कूद पड़ा [हार गया], वहाँ से भागता हुआ वह अहमदाबाद, कच्छ, क़न्धार, और अन्त में सिन्ध में जुन पहुँचा; वहाँ उसके साथ विश्वासघात हुआ और उसे पकड़वा दिया गया; दिल्ली में लाकर उसको मार डाला गया; दिल्ली के निवासियों ने बग़ावत की, उसे बलपूर्वक कुचल दिया गया।

१६६०. शाहज़ादा मुहम्मद सुलतान (औरंगज़ेब का बेटा) और गोलकुंडा का भूतपूर्व मंत्री, **मीरजुमला** बंगाल में **शुजा** के विरुद्ध लड़ाई में विजयी हुए। शुजा भागकर अराकान[1] की पहाड़ियों की शरण में चला गया। इसके बाद उसके बारे में कभी कुछ सुनायी नहीं दिया। **मुहम्मद सुलतान** ने मीर जुमला के ख़िलाफ़ विद्रोह कर दिया था [और शुजा से मिल गया था], फिर वह वापिस अपनी ड्यूटी पर लौट आया था। औरंगज़ेब ने वर्षों तक उसे एक क़ैदी की तरह बन्द रखा; अन्त में जेल में ही उसकी मृत्यु हो गयी। **श्रीनगर के राजा** ने दाराशिकोह के बेटे, **सुलेमान** को पकड़कर आगरा भेज दिया; वहाँ पर **औरंगज़ेब** ने उसे ज़हर दे दिया और थोड़े ही समय बाद उसकी **मृत्यु हो गयी**। इसी के साथ-साथ **मुराद** को भी मरवा दिया गया। इसके बाद से **औरंगज़ेब** एकदम सर्व-सर्वा बन गया (शाहजहाँ अब भी "बन्द कोठरी" में क़ैद था)।

मीर जुमला को वजीर बना दिया गया, जिस समय वह **आसाम** पर चढ़ाई करने जा रहा था ढाका में [१६६३ में] उसकी मृत्यु हो गयी; उसका स्थान उसके सबसे बड़े बेटे मुहम्मद अमीन ने ग्रहण किया।

१६६०-१६७०. मराठों का उदय।

मलिक अम्बर के उच्चाधिकारियों में एक **मालोजी भोंसले** थे, उनके **शाहजी** नाम का एक पुत्र था; सेना के एक प्रधान अधिकारी, यदुराव की पुत्री से उसकी शादी हुई थी; इस शादी से **शिवाजी** नाम का एक पुत्र पैदा हुआ; अपने पिता की **जागीर** (विशेष योग्यता के लिए किसी व्यक्ति विशेष को बादशाह द्वारा पारितोषिक-स्वरूप दिया गया-इलाक़ा) के उजड्ड सिपाहियों के सम्पर्क में हमेशा रहने के कारण, उसमें एक डाकू की आदतें पड गयी थीं। इसका अभ्यास उसने शुरू में अपने ही आश्रित व्यक्तियों के ऊपर किया। उसने ख़ुद अपने पिता की रियासत पर अधिकार कर लिया। कई क़िलों को छीन लिया; फिर शाही ख़ज़ाना ले जाने वाले एक दल को पकड़कर उसने **खुला विद्रोह** शुरू कर दिया; उसके सहा-

[1] बर्मा का पुराना नाम।

उसने कोंकण के शासक को कैद कर लिया और राजधानी, कल्याण सहित उत्तरी कोंकण पर कब्ज़ा कर लिया। इस सफलता के बाद, शिवाजी ने शाहजहाँ के साथ सम्बन्ध स्थापित करने की कोशिश की जिसे शाहजहाँ ने भी नापसन्द नहीं किया। इसके बाद उसने दक्षिणी कोंकण पर अधिकार कर लिया और—

१६५५—अपनी सत्ता का निरन्तर विस्तार करता गया। इस मराठा के अभिमान को चूर्ण करने के लिए *औरंगज़ेब भेजा गया।* शिवाजी ने कपट से काम लिया और उसे झाँसा दे दिया, वह माफ कर दिया गया, शाही सैन्य-शक्ति के वहाँ से वापिस लौटते ही उसने फिर बीजापुर पर हमला बोल दिया। *बीजापुर का (सेनानायक) अफ़ज़ल ख़ाँ शिवाजी के साथ अकेला* अलग मिलने के लिए तैयार हो गया, शिवाजी ने खुद अपने हाथ से उसकी हत्या कर दी और फिर खान की भयभीत सेना को परास्त कर दिया।

शिवाजी के अनुयायियों के अनगिनत दल अब पैदा हो गये थे, उनके ख़िलाफ़ सेना भेजी गयी, इसके बाद बीजापुर के नये सेनानायक ने—

१६६०—में, सैन्य शक्ति लेकर मराठों के देश पर चढ़ाई कर दी, शिवाजी को उसने हरा दिया, और—

१६६२—में, उसके साथ अच्छी शर्तों पर सन्धि कर ली, कोंकण की एक जागीर में उसने बागी को बन्द करके छोड़ दिया।

१६६२. शिवाजी ने फिर मुगल इलाकों की लूट-पाट शुरू कर दी। औरंगज़ेब *ने उसे दबाने के लिए शाइस्ता ख़ाँ को भेजा, उसने* औरंगाबाद से पूना पर चढ़ाई कर दी और उस पर अधिकार कर लिया, सारे जाड़े वह वहीं डेरा डाले रहा, एक रात उसकी हत्या करने के इरादे से शिवाजी चुपचाप उसके डेरे में घुस गया, किन्तु खान बच गया। वर्षा ऋतु के बाद शाइस्ता ख़ाँ औरंगाबाद गया, और शिवाजी ने फ़ौरन सूरत को लूट डाला।

१६६४. शिवाजी के पिता, शाहजी की मृत्यु हो गयी, और शिवाजी अपने पिता के उत्तराधिकारी के रूप में (शाहजी की जागीर) तथा मद्रास (के पास के इलाके) और कोंकण का, जिसे उसने स्वयम् जीता था, स्वामी बन गया। अब उसने मराठों के राजा की पदवी धारण कर ली और दूर दूर तक के इलाके को लूट डाला।

१६६५ औरंगज़ेब क्रोध से उबल उठा, उसने उसके ख़िलाफ़ सेना के दो

डिवीज़न रवाना कर दिये । शिवाजी ने अधीनता स्वीकार कर ली; इसके बावजूद, सन्धि के अन्तर्गत, इस चालाक आदमी ने एक और जागीर प्राप्त कर ली; इस जागीर में उन बत्तीस किलों में से जिन पर उसने कब्ज़ा कर लिया था १२ किले और उनके इलाक़े शामिल थे । इसके अलावा, उसने चौथ पाने का अधिकार भी हासिल कर लिया—यह एक प्रकार की घूस थी । दक्षिण में सारे मुग़ल इलाक़े पर चौथ लगा दी गयी, इससे बाद में मराठों [को] इर्द-गिर्द के तमाम राज्यों के साथ झगड़ा करने और उनके इलाक़ों में घुस-पैठ करने का एक बहाना [प्राप्त हो गया] ।

१६६६. एक मेहमान के रूप में शिवाजी दिल्ली गये; उनके साथ इतनी रुखाई का व्यवहार किया गया कि क्रुद्ध हो कर फौरन दक्षिण वापिस चले गये (अपनी "सारी चालाकी" के बावजूद, औरंगज़ेब ने उनकी हत्या नहीं की और, आमतौर से, शुरू से ही मराठों के साथ उसका व्यवहार एक "गधे" जैसा था) । इसी साल शाहजहाँ की बन्दी अवस्था में मृत्यु हो गयी ।

१६६७. शिवाजी ने ऐसी चालाकी से अभिसन्धि रची कि सन्धि में उन्हें राजा मान लिया गया; इसके बाद उन्होंने बीजापुर और गोलकुण्डा को भय दिखाया और उनके ऊपर कर लगा दिया ।

१६६८-१६६९. शिवाजी ने अपने राज्य को अच्छी तरह जमा लिया; राजपूतों तथा अन्य पड़ोसियों के साथ अच्छी शर्तों पर उन्होंने सन्धियाँ कर लीं।

१६६६. इस प्रकार मराठों का एक राष्ट्र बन गया जिसका शासक एक स्वतंत्र राजा था ।

१६७०. औरंगज़ेब ने सन्धि का उल्लंघन किया; शिवाजी ने पूना पर अधिकार करके अपनी कार्रवाइयों का श्रीगणेश किया और सूरत तथा खानदेश को लूट-पाट कर मिस्मार कर दिया; औरंगज़ेब का बेटा मुअज़्ज़म औरंगाबाद में निष्क्रिय पड़ा रहा । महाबत ख़ाँ को भेजा गया, शिवाजी ने उसको बहुत बुरी तरह से पराजित कर दिया । औरंगज़ेब ने अपनी सेनाओं को वापिस बुला लिया और लड़ाई स्थगित कर दी । इसके बाद से औरंगज़ेब का प्रभाव घटने लगा । सभी लोग उससे नाराज़ थे, उसके निष्फल मराठा अभियानों की वजह से उसके मुग़ल सिपाही बहुत नाराज़ थे, और हिन्दू इसलिए नाराज़ थे कि उसने जज़िया फिर से लागू कर दिया था और हर तरह से उनका दमन किया था ।

१६७८. अन्त में, उनके महान् सरदार, राजा जसवन्तसिंह की विधवा पत्नी तथा बच्चों के साथ दुर्व्यवहार करके उसने अपनी सेना के सर्वश्रेष्ठ

योद्धाओं, राजपूतों को भी अपना विरोधी बना लिया। राजा जसवन्तसिंह की मृत्यु १६७८ में हो गयी थी। राजा के बेटे, दुर्गादास ने औरंगज़ेब के बेटे शाहज़ादा अकबर के साथ षड्यंत्र किया और ७० हज़ार राजपूतों को लेकर दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। आन्तरिक षडयन्त्रों तथा विद्रोहों के कारण यह गठबन्धन टूट गया और लड़ाई होने के पहले ही सेना छिन्न-भिन्न हो गयी, अकबर और दुर्गादास भाग कर मराठों के पास चले गये जिनके नेता प्रसिद्ध शिवाजी के पुत्र सम्भाजी थे।

१६८१ छिट-पुट ढंग से दोनों दलों के बीच काफ़ी दिन तक संघर्ष चलते रहने के बाद, मेवाड़ और मारवाड़ में शान्ति हो गयी। इसी दर्म्यान—

१६७३—में, शिवाजी ने कोंकण पर अधिकार कर लिया था, १६७४ में उन्होंने खानदेश तथा बरार के मुगल सूबों को लूट-खसोट कर तबाह कर दिया, इसी प्रकार शिवाजी—

१६७७—तक, एक के बाद एक, कुर्नूल, कुडप्पा (कनारा), जिंजी तथा वेल्लूर पर अधिकार करते गये (वह मद्रास के पास से गुज़रे थे, इसकी वजह से अंग्रेजों की फैक्टरियों के दफ्तरों में काम करने वाले अंग्रेज बुरी तरह घबड़ा गये थे—मद्रास की दस्तावेज़ें, मई १६७७)।

१६७८ शिवाजी ने मैसूर और तंजोर पर अधिकार कर लिया, १६८० में, मुगल सेना की रसद के रास्तों को काटकर, उन्होंने बीजापुर पर चढ़ाई कर दी, और—

१६८०—में, इसी अभियान के दौरान शिवाजी की मृत्यु हो गयी, उनके बेटे सम्भाजी मराठा सेनाओं के सेनापति बन गये। सम्भाजी एक निर्दयी और व्यभिचारी राजा था। उसकी सत्ता का क्षय होने में समय न लगा, मुगलों के पास अगर कोई अच्छा सेनापति होता तो उन्होंने मराठों की सत्ता का विध्वंस कर दिया होता, किन्तु औरंगज़ेब एक "बैल" की ही तरह काम करता गया।

१६८३ सम्भाजी ने शाहज़ादा मुअज़्ज़म को, जिसे कोंकण भेजा गया था, हरा दिया, मराठों ने मुगल सेना के पृष्ठ भाग के इलाके को लूट-पाट कर बराबर कर दिया, बुरहानपुर के शहर को उन्होंने आग लगा दी, इस पर मुअज़्ज़म ने हैदराबाद को लूट डाला और गोलकुण्डा के राजा के साथ सन्धि कर ली, मराठे इसी बीच उत्तर की तरफ़ बढ़ते गये और उन्होंने भड़ौच को लूट लिया।

इसके बाद, एक दूसरी सेना लेकर, औरंगज़ेब ने बीजापुर के नगर और

राज्य का विध्वंस कर दिया, गोलकुण्डा के साथ अपनी सन्धि को ढिठाई से उसने तोड़ दिया और उस शहर पर कब्ज़ा कर लिया।

इसके बाद से औरंगज़ेब स्वयं अपने पुत्रों से डरने लगा तथा हर एक पर सन्देह करने लगा; उसके डर ने—

१६८७—तक आधे पागलपन का रूप ग्रहण कर लिया; बिना किसी कारण के अपने पुत्र मुअज़्ज़म को उसने क़ैदखाने में डाल दिया, सात वर्ष तक वह वहीं [बन्द रहा]।

मुग़ल साम्राज्य के पतन का श्रीगणेश इसी समय से हुआ था; दक्षिण में चारों तरफ़ अव्यवस्था फैली हुई थी, देशी राज्य टूट-फूट कर बर्बाद हो गये थे; देश भर में चोरों-बटमारों के गिरोह घूमते-फिरते थे; मराठों की शक्ति बहुत बढ़ी थी; उत्तर की राजपूत और सिक्ख जातियाँ स्थायी रूप से विरुद्ध हो गयी थीं।

१६८९. तक़र्रब ख़ाँ नामक एक मुग़ल सरदार ने (जो घाटों के समीप, कोल्हापुर का सूबेदार था) यह सुन कर कि सम्भाजी वहीं पास में शिकार कर रहा था, उसे पकड़ कर गिरफ़्तार कर लिया, बन्दी के रूप में उसे उसने औरंगज़ेब के पास भेज दिया जिसने उसे फ़ौरन मरवा डाला।

सम्भाजी के बाद उसके नाबालिग़ पुत्र शाहूजी को गद्दी पर बैठा दिया गया, साहसी और समझदार राजाराम को उसका संरक्षक बना दिया गया।

१६९२. संरक्षक राजाराम ने मराठों के लूट-पाट करने वाले गिरोहों को फिर से संगठित किया, सन्ताजी और धनाजी नाम के सरदारों को उसने सेना नायक बनाया और मुग़ल सेनाओं से लड़ने के लिए भेज दिया; उन्होंने कई छोटी-मोटी लड़ाइयाँ लड़ीं; यह लड़ाई लगभग पांच वर्ष तक—१६९४ से १६९९ तक—चलती रही; इनमें से तीन लड़ाइयों का उद्देश्य जिंजी को घेर लेना था, अन्त में मराठों ने उस पर अधिकार कर लिया।

१६९४. औरंगज़ेब ने अपने सेनापति, ज़ुल्फ़िक़ार ख़ाँ को जिंजी पर आक्रमण करने के लिए भेजा; ख़ाँ ने औरंगज़ेब से और सैनिकों की मांग की, औरंगज़ेब ने देने से इन्कार कर दिया; इसके बजाय, उसने शाहज़ादा कामबख़्श को बड़ा मुख्य सेनानायक बना कर भेज दिया; इससे क्रुद्ध होकर, ख़ाँ ने घेरे को ढीला कर दिया; मराठों के साथ वह बराबर बात-चीत करता रहा; इसके फलस्वरूप, तीन वर्ष तक प्रयत्न करने के बाद भी कामबख़्श उस स्थान पर क़ब्ज़ा न कर सका।

१६९७. सन्ताजी ने घेरे को तोड़ दिया; अन्त में—

१६६८—म, यह समझ कर कि अगर वह युद्ध नहीं करेगा तो औरंगज़ेब उसका अपमान करेगा, जुल्फिकार खाँ ने मराठा सरदार को वहाँ से भाग जाने दिया और फिर बिना किसी विशेष प्रयत्न के उसके दुर्ग पर क़ब्जा कर लिया। इसके फलस्वरूप स्वयं मराठों के अन्दर झगड़े होने लगे, धना जी ने स्वयं अपने हाथों से सन्ता जी की हत्या कर दी। फिर लड़ाई शुरू हो गयी। राजाराम स्वयं एक बड़ी सेना लेकर मैदान में उतर आया, और दूसरी तरफ मुग़ल सेना का नेतृत्व स्वयं औरंगज़ेब ने सभाला।

१७०० औरंगज़ेब ने सतारा पर क़ब्जा कर लिया और—

१७०४—तक, उसने मराठों के अनेक और क़िलों को जीत लिया। राजाराम की उसी साल [१७००] मृत्यु हो गयी। औरंगज़ेब अब [१७०४] ८६ वर्ष का हो गया था। उसके जीवन के पिछले चार वर्षों में उसका सारा शासन अस्त-व्यस्त हो गया था, मराठों ने अपने क़िलों पर फिर से कब्जा करना शुरू कर दिया और उनकी शक्ति फिर बढ़ने लगी, इसी समय एक भयंकर अकाल पड़ा जिसने फौजों की रसद को समाप्त कर दिया और राजकोष को भी खाली कर दिया, वेतन न मिलने से सिपाहियों ने बग़ावतें करनी शुरू कर दीं, मराठे अब औरंगज़ेब को बहुत तंग कर रहे थे, बहुत ही अस्त-व्यस्त हालत में वह अहमदनगर लौट गया, बीमार पड़ गया, और—

२१ फरवरी, १७०७—के दिन, ८६ वर्ष की अवस्था में, औरंगज़ेब की मृत्यु हो गयी ("अपने किसी बेटे को उसने अपनी शैय्या के पास तक नहीं फटकने दिया")।

[भारत में योरोपीय सौदागरों का प्रवेश]

१४९७ दिसम्बर में वास्कोडिगामा नामक पुर्तगाली उत्तमाशा अन्तरीप की परिक्रमा करने में सफल हुआ और—

मई, १४९८—में, कालीकट के तट पर पहुँच गया। इसके बाद गोआ, बम्बई तथा लंका के प्वाइंट डिगाल में पुर्तगाली सौदागरों की बस्तियाँ क़ायम हो गयीं।

१५९५ (एक शताब्दी बाद) डचों ने वर्तमान कलकत्ता नगर के समीप अपनी एक बस्ती क़ायम की।

१६०० लन्दन की ईस्ट इण्डिया कम्पनी—लन्दन नगर के व्यापारियों की कम्पनी की [स्थापना हुई]।

३० दिसम्बर, १६००. पूर्व के साथ सिल्क, सूती कपड़ों तथा हीरे-जवाहरात का व्यापार करने की सनद एलिज़ाबेथ से मिल गयी। तै हुआ कि कम्पनी का प्रबन्ध "एक गवर्नर तथा २४ समितियाँ" करेंगी।

१६०१. उनके प्रथम जहाज़ [भारत] आये।—महान् मुग़ल, जहाँगीर ने—

१६१३[1]—में, इन सौदागरों को अपने एक फ़र्मान के द्वारा सूरत का व्यापारिक बन्दरगाह दे दिया, और—

१६१५—में, सर टामस रो को एक राजदूत के रूप में दिल्ली आने की अनुमति प्रदान कर दी।

१६२४. कम्पनी ने जेम्स प्रथम से निवेदन किया कि [भारत में नियुक्त] अपने कर्मचारियों को सैनिक तथा नागरिक क़ानून के अनुसार सज़ा देने का अधिकार उसे दे दिया जाय और यह अधिकार उसे मिल गया; पार्लामेन्ट ने इसमें किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं किया; इस भाँति, वास्तव में, कम्पनी को "नागरिकों की ज़िन्दगी और क़िस्मत का फ़ैसला करने का असीमित अधिकार मिल गया" (जेम्स मिल[2])। यह पहला अदालती अधिकार था जो सम्राज्ञी ने कम्पनी को दिया था; यह अधिकार उसे केवल योरोपीय ब्रिटिश नागरिकों के ऊपर ही प्राप्त था।

१६३४. शाहजहाँ के फ़र्मान से बंगाल में प्रथम फ़ैक्टरी की स्थापना की गयी।

१६३६. अंग्रेज़ों को मद्रास में व्यापार करने की इजाज़त दे दी गयी।

१६५४. पचास वर्ष तक व्यापार करने के एकान्तिक अधिकार का उपभोग करने के बाद, "दुस्साहसी सौदागरों" के नाम से एक नयी सोसाइटी की स्थापना की वजह से कम्पनी की इजारेदारी के लिए खतरा उत्पन्न हो गया।

१६६१. भारत के बाज़ार में उसे प्रतियोगिता का सामना न करना पड़े, इस ख़याल से, पुरानी कम्पनी ने "दुस्साहसियों" को अपनी कम्पनी में शामिल हो जाने दिया।

१६६२. चार्ल्स द्वितीय का पुर्तगाल के बादशाह की बेटी के साथ विवाह हुआ; दहेज के रूप में वह अपने साथ बम्बई के व्यापारिक बन्दरगाह को लायी; इस भाँति वह ब्रिटिश सम्राट का बन गया, किन्तु—

१६६८—में, "खुशमिज़ाज व्यक्ति" ने बम्बई के बन्दरगाह को ईस्ट इण्डिया

---

[1] क्रॉस के अनुसार, १६१२ में।

[2] मिल, 'ब्रिटिश भारत का इतिहास,' खण्ड १, लन्दन, १८५८।

कम्पनी को दे दिया। चाय के लिए पहला आर्डर (जिसे चाय उसके चीनी *नाम के कारण कहा जाता था) इंगलैण्ड से मद्रास इसी साल भेजा गया* था। साथ ही साथ, चार्ल्स द्वितीय ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी को इस बात का भी पट्टा दे दिया कि उससे सम्बन्धित व्यापारी किसी भी ऐसे बिना लाइसेन्स के व्यक्ति को, जो भारत में स्वयं अपने लिए, आदि रोजगार करता पाया जाय, क़ैद करके वे इंगलैण्ड भेज दें। यह कम्पनी के एकाधिकारी *अधिकारों की पराकाष्ठा थी।*

१६८२ कम्पनी के इंगलैण्ड में रहने वाले डायरेक्टर मंडल ने बंगाल को एक अलग प्रेसीडेन्सी बना दिया (प्रेसीडेन्सी का अर्थ उस समय किसी सूबे में फैली हुई चन्द फैक्ट्रियाँ तथा व्यापार-मंडियां होना था)। कलकत्ते में प्रेसीडन्सी का एक गवर्नर तथा एक कौन्सिल नियुक्त कर दी गयी।

१६८८[1] *कलकत्ते के संस्थापक,* चारनाक को मुगलों ने बंगाल से *जलावतन* कर दिया, डर कर, दूसरे निकाले गये व्यापारियों के साथ, नदी के रास्ते में अपनी जान बचा कर वह भाग गया।

१६९० औरंगज़ेब की अनुमति से 'कुत्ते' फिर वापिस आ गये, चारनाक ने कलकत्ते में अब स्थायी बस्ती कायम कर ली और किले बना कर यहां पर सैनिक टुकड़ियां तैनात कर लीं।

१६९८ औरंगज़ेब ने "कुत्तों' अर्थात्, "कम्पनी' को कलकत्ता, सुतनती और गोबिन्दपुर के तीन गाँवों को खरीदने की अनुमति दे दी, बाद में इन गाँवों की किलाबन्दी कर दी गयी थी। नयी किलेबन्दियों को सर चार्ल्स आयर ने, "डच मुक्तिदाता' के सम्मान में, फोर्ट विलियम का नाम दे दिया, अब भी सारी सार्वजनिक दस्तावेजों पर "फोर्ट विलियम, बंगाल' लिखा रहता है।

इसी वर्ष, इंगलैण्ड में विलियम तथा मैरी के नवें और दसवें पट्टे के मातहत एक नयी कम्पनी की स्थापना हुई, इस कम्पनी ने कहा कि कितने ही व्यक्ति अगर वे ८ प्रतिशत सूद की दर पर २० लाख पौंड का ऋण देने को तैयार हों तो मिलकर पूर्वी भारत के साथ व्यापार शुरू कर सकते हैं। हिस्से खरीदने वालों को व्यापार करने की इजाजत दे दी गयी, किन्तु उन पर यह प्रतिबन्ध लगाया गया कि अलग-अलग उनके निर्यात की मात्रा ऋण के उनके अपने भाग से अधिक नहीं हो सकती। इस कम्पनी का नाम था इंगलिश ईस्ट इण्डिया कम्पनी।

[1] बर्नेस के अनुसार, १६८७।

१७००. नयी कम्पनी ने सर विलियम नोरिस के नेतृत्व में (औरंगज़ेब के दरबार में) एक ख़र्चीला तथा सर्वथा निरर्थक राजदूतावास खोला जिसकी वजह से वह क़रीब-क़रीब स्वयं ख़त्म हो गयी ।

१७०२. "पुरानी लन्दन कम्पनी" "नयी कम्पनी" के साथ मिल गयी; इसके बाद से केवल एक ही कम्पनी अस्तित्व में रह गयी जिसका नाम था पूर्वी भारत के साथ व्यापार करने वाले सौदागरों की संयुक्त कम्पनी (The United Company of Merchants Trading to East India) ।

इसी वर्ष[1] औरंगज़ेब ने मीर जाफ़र नामक एक व्यक्ति को मुर्शिद कुली ख़ाँ की पदवी देकर दीवान नियुक्त किया (सूबे का दीवान मुग़ल शासक का एक अफ़सर होता था; वह मालगुज़ारी की वसूली की देख-रेख करता था और उसके सूबे की सीमाओं के अन्दर दीवानी के जितने मुक़दमे होते थे उनके फ़ैसले करता था) [बाद में जाफ़र ख़ाँ बंगाल, बिहार तथा उड़ीसा का सूबेदार बन गया (सूबेदार ज़िले का वाइसराय होता था; अक्सर एक ही व्यक्ति दोनों काम करता था)]।

यह महाशय सुशील अंग्रेज़ों (les agreables Anglais) से घृणा करते थे, उनके व्यापार में दख़ल देते थे, और उनको बराबर तंग करते रहते थे (१७१५ में, अंग्रेज़ों ने उसके ख़िलाफ़ फ़र्रुख़सियर की सेवा में शिकायत की; फ़र्रुख़सियर ने अंग्रेज़ सौदागरों को ३८ नगर भेंट कर दिये ! और एक दस्तक, अथवा सरकारी अनुमतिपत्र देकर उनके माल को कर से मुक्त कर दिया; इसके बाद उनके माल की गाँठें सरकारी अधिकारियों की जाँच-पड़ताल से मुक्त हो गयीं) ।

मुर्शिद कुली ख़ाँ मालगुज़ारी का प्रसिद्ध अफ़सर था; ज़बर्दस्ती वसूली करने तथा लोगों को सताने के तरह-तरह के निर्लज्ज तरीक़े ईजाद करके उसने बंगाल की मालगुज़ारी को बहुत बढ़ा दिया: इस मालगुज़ारी को नियत समय पर वह दिल्ली भेज देता था। सूबे को उसने चकलों में बाँट दिया, प्रत्येक चकले में एक मुख्य वसूली करने वाला अफ़सर होता था जिसकी नियुक्ति वह स्वयं करता था; यह अफ़सर ठेके पर मालगुज़ारी वसूल करने का काम करता था । बाद में इन अफ़सरों ने अपने पदों को पुश्तैनी बना लिया और "ज़मींदार राजाओं" की पदवी धारण कर ली ।

---

[1] रैम्सबाथम के अनुसार, १७०४—'बंगाल की मालगुज़ारी व्यवस्था के इतिहास का अध्ययन,' कलकत्ता, १९२६ ।

औरंगज़ेब के बाद उसका प्रथम उत्तराधिकारी शाहजादा मुअज़्ज़म राज सिंहासन पर बैठा।

७ औरंगज़ेब के उत्तराधिकारी पानीपत का महायुद्ध मुगल आधिपत्य का अन्त, १७०७-१७६१

(१) १७०७-१७१२ बहादुरशाह (मुअज्जम ने यह पदवी धारण कर ली थी)।—[औरंगज़ेब के] द्वितीय जीवित पुत्र शाहजादा आजम तथा तीसरे पुत्र, शाहजादा कामबख्श ने विद्रोह कर दिया मुअज़्ज़म के साथ लडाई में एक एक कर के दोनों पराजित हुए और मारे गये। बहादुर ने अपनी शक्तियों को बटोर कर मराठों के खिलाफ लगा दिया, उनके सरदारों के बीच फूट पैदा कर दी और, *अन्त में उनके लिए अहितकर शर्तों पर* सन्धि करने के लिए उन्हें मजबूर कर दिया।

१७०९ उदयपुर, मारवाड़ तथा जयपुर के राजपूत राज्यों के साथ उसने अपने लिए लाभदायक सन्धियाँ कर लीं।

१७११ उसने सिक्खों के ऊपर चढ़ाई कर दी, पंजाब से खदेड़ कर उन्हें पहाड़ों में जाने के लिए मजबूर कर दिया।—सिक्ख ईश्वरवादी हिन्दुओं का एक धार्मिक समुदाय था, इस समुदाय का उदय अकबर के काल में हुआ था, उसके 'संस्थापक" का नाम नानक था। उनका एक सम्प्रदाय बन गया जिसका नेतृत्व उनके गुरु (आध्यात्मिक नेता) करते थे। जब तक मुसलमानों ने उनके ऊपर दमन करना शुरू नहीं किया तब तक वे शान्त थे। १६०६ में मुसलमानों ने उनके नेता को मार डाला। इसके बाद से वे हर मुस्लिम चीज़ के कट्टर दुश्मन बन गये, प्रसिद्ध गुरु गोविन्द के नेतृत्व में उन्होंने अपनी सैनिक शक्ति कायम की और पूरे पंजाब पर अधिकार कर लिया।

१७१२ ७१ वर्ष की अवस्था में बहादुर की मृत्यु हो गयी, काफी लडाई झगड़े तथा अनेक हत्याओं के बाद उसका निकम्मा लडका—

(२) १७१२-१७१३ जहाँदार शाह उसकी गद्दी पर बैठा, उसने जुल्फिकार खाँ को अपना वज़ीर बनाया, जिन पदों पर पहले अमीर-उमरा काम करते थे उन पर उसने गुलामों की नियुक्ति की। उसके भतीजे फर्रुखसियर ने—

१७१३—में बंगाल में विद्रोह कर दिया शाही फौज को आगरा के समीप पराजित कर दिया, और जहाँदार शाह तथा जुल्फिकार खाँ को मरवा दिया।

(३) १७१३-१७१९. फ़र्रुख़सियर । अमीरों में जिन दो मुख्य आदमियों ने उनका साथ दिया था वे सैयद अब्दुल्ला और सैयद हुसेन थे। उन्होने उसे मजबूर कर दिया कि वह उन्हें अपने दरबार मे उच्च पदों पर नियुक्त करे। फ़र्रुख़सियर उनसे अन्दर ही अन्दर डरता था। हुसेन दक्षिण गया, वहा पर बादशाह के गुप्त इशारे पर, वहाँ के सूबेदार दाउद ने उसका विरोध किया, किन्तु विजय के समय दाउद मारा गया। तब हुसैन ने मराठों के ऊपर [चढ़ाई कर दी], कुछ हासिल न कर सका, आखिर में नवयुवक राजा शाहू के साथ उसने सन्धि कर ली; इस सन्धि को फ़र्रुख़-सियर ने मानने से इन्कार कर दिया, उसने कहा कि वह अपमान-जनक थी।

१७१५. (देखिए पृष्ठ ५६[1]) कलकत्ते के अंग्रेज व्यापारियों ने वाइसराय मुर्शिद कुली खां के खिलाफ़ शिकायत करने के लिए एक प्रतिनिधि-मंडल दिल्ली भेजा; इन प्रतिनिधियों में एक हैमिल्टन नाम का सर्जन था, उसने महान् मुग़ल को उसकी एक बीमारी का इलाज करके चंगा कर दिया, इसलिए—आदि-आदि, देखिए, पृष्ठ ५६।

१७१९. सैयद अब्दुल्ला ने, जो "खतरे में था", दक्षिण से हुसेन को बुला भेजा; उसने अन्तःपुर मे स्वयं अपने हाथों से फ़र्रुख़सियर की हत्या कर दी। उसकी मृत्यु के बाद के पहले दो महीनों के अन्दर विद्रोही सरदारों ने दो छोटे-छोटे शाहजादों को राजसिंहासन पर बैठाया और फिर हटा दिया; अन्त में, उन्होंने शाही खानदान के मुहम्मदशाह नामक एक शाहजादे को चुना।

(४) १७१९-१७४८. मुहम्मदशाह । एक साथ कई विद्रोह उठ खड़े हुए।

१७२०. मालवा के गवर्नर आसफ़जाह ने अपने को स्वतंत्र घोषित कर दिया।

(उसका असली नाम चीनक्लीज खां था; वह एक तुर्की सरदार, ग़ाज़िउद्दीन का पुत्र था। ग़ाज़िउद्दीन औरंगज़ेब का एक प्रिय अफ़सर था। पहले वह दक्षिण का गवर्नर बना, फिर मालवा का भी गवर्नर बन गया। उसे निज़ामुलमुल्क भी कहते थे। उसके वंशज ही दक्षिण के निज़ाम बने थे।) उसने बुरहानपुर और बालापुर में शाही फौजों को हरा दिया; शाही फौजों का नेतृत्व सैयद लोग कर रहे थे। इन लोगों से डरकर

[1] इस संस्करण का पृष्ठ ५५

महान् मुगल ने इसके बाद ही आसफजाह को अपना वज़ीर बना लिया, किन्तु बाद में वह यह महसूस करने लगा कि वह एक दर्द-सर था।

१७२३[1] [आसफजाह] हटकर दक्षिण की ओर चला गया— सैयद हुसेन की एक कार्मुक ने (ऐसा लगता है कि, बादशाह के हुक्म से) हत्या कर दी, (सैयद) अब्दुल्ला ने एक नया बादशाह बनाने की कोशिश की, वह हार गया और कैद कर लिया गया।—इसी समय राजपूतों ने साम्राज्य से गुजरात को छीन लिया।

१७२५ मुहम्मदशाह ने मुबारिज, हैदराबाद के गवर्नर को भड़काया कि वह आसफजाह के विरुद्ध कार्रवाई करे, आसफजाह ने उसे हराकर मार डाला और उसका सिर काटकर दिल्ली भेज दिया।

१७२० बाला जी विश्वनाथ की मृत्यु, राजा शाहू के मन्त्री की हैसियत से उसने उसके साम्राज्य को सुगठित किया था। वह "पहला पेशवा" था— यह एक पदवी थी जिसे मराठा राजा के मन्त्री ने धारण किया था। (बाद में, पेशवाओं ने सम्पूर्ण वास्तविक सत्ता पर अधिकार कर लिया और राजपरिवार चुपचाप सतारा में रहता रहा। कालान्तर में, राज परिवार का महत्व खत्म हो गया और उसके सदस्य केवल "सतारा के राजा" रह गये।) उसके बाद उसका तेजस्वी पुत्र बाजीराव गद्दी पर बैठा (यह सबसे बड़ा पेशवा तथा शिवाजी को छोड़कर सबसे योग्य मराठा था); शाहू को उसने सलाह दी कि वह स्वयं मुग़ल साम्राज्य पर हमला करे। शाहू ने सारी सत्ता उसी के हाथ में छोड़ दी। बाजीराव ने मालवा को लूट-पाट कर बर्बाद कर दिया।

१७२२. बाजीराव ने आसफजाह पर (जो उस समय मुगल बादशाह का गवर्नर था) हैदराबाद में हमला कर दिया और उसे बुरी तरह से हरा दिया—इसके अतिरिक्त, गुजरात को भी उसने लूट डाला।

मराठा सेनाओं के उस समय के जो सेनानायक थे वही दक्षिण के तीन महान् परिवारों के संस्थापक बने थे, उदाजी पंवार, मल्हार होल्कर तथा रानोजी सिंधिया।

१७३३[3] बाजीराव और आसफजाह के बीच एक दूसरे का समर्थन करने के वादे के आधार पर एक गुप्त समझौता हो गया।

---

[1] एलफिन्स्टन के अनुसार, १७२४।
एलफिन्स्टन के अनुसार, १७२७।
[3] बर्नेस के अनुसार, १७३१।

१७३४. मराठों ने मालवे और बुन्देलखण्ड पर कब्ज़ा कर लिया। वादशाह ने उनके द्वारा जीते गये प्रदेशों को उनको दे दिया और इस वात का भी अधिकार दे दिया कि आसफ़जाह के राज्य में वे चौथ वसूल कर सकें; इसने [आसफ़जाह और वाजीराव के वीच हुए] समझौते को भंग कर दिया और आसफ़ फिर वादशाह के प्रति वफ़ादार बन गया।

१७३७. वाजीराव ने यमुना के उस पार तक के प्रदेश को उजाड़ डाला और अचानक दिल्ली के द्वार पर जा पहुंचा, किन्तु उस पर हमला किये विना ही वापिस लौट गया। आसफ़जाह ने उस पर चढ़ाई कर दी, भोपाल [के क़िले] के समीप वह हार गया और मजबूर होकर नर्वदा और चम्वल के बीच के पूरे प्रदेश को उसे मराठों को दे देना पड़ा। इस प्रकार उत्तर में भी मराठे आ पहुंचे।

१७३९-१७४०. भारत पर नादिरशाह ने आक्रमण किया (वह एक लुटेरा था; अपने कुछ अनुयायियों को लेकर वह फ़ारस के जलावतन शाह, तहमास्प से मिल गया था। तहमास्प को खिलजियों ने जलावतन कर दिया था। नादिर ने तहमास्प की मदद करके उसे उसका राज सिंहासन फिर से दिलवा दिया, फिर उसे हटा दिया और खुद अपने को शाह बना लिया। उसने कंधार और कावुल को अधीन कर लिया और फिर हिन्दुस्तान पर आक्रमण कर दिया)।

१७३९. नादिरशाह ने लाहौर पर अधिकार कर लिया और करनाल में मुहम्मदशाह को पराजित कर दिया। वादशाह ने उसकी अधीनता स्वीकार कर ली और नादिर के साथ दिल्ली चला गया। दिल्ली में हिन्दुओं ने अनेक फ़ारसियों को मार डाला; इसके फलस्वरूप, हिन्दुओं का बड़े पैमाने पर क़त्लेआम किया गया; नादिर की लूट-खसोट तथा हिंसा की भयंकर कार्रवाइयाँ।

१७४०. सोने-चाँदी और हीरे-जवाहरात से लदा नादिर घर [लौट गया], मुग़ल साम्राज्य को वह टूटता हुआ छोड़ गया। इसी वर्ष मराठों ने फिर हमला शुरू कर दिया; पेशवा वाजीराव की मृत्यु हो गयी और उसकी गद्दी पर उसका पुत्र वालाजी राव बैठा।

१७४३. वालाजी राव ने मालवे पर चढ़ाई कर दी और दिल्ली के दरवार से फिर माँग करने लगा; वादशाह ने उसे मालवा दे दिया; मालवा रवुजी खां का था जिसने विद्रोह कर दिया था।

१७४४ बालाजी ने रघुजी को हरा दिया, उसे खदेड़ कर भगा दिया, और फिर सतारा वापिस लौट आया।

१७४४[1] अहमद खां दुर्रानी का पहला आक्रमण। नादिरशाह की हत्या कर दी गयी, अब्दाली, अथवा (जैसा कि बाद में उसे कहा जाने लगा था) दुर्रानी के अफ़ग़ानी क़बीले ने अहमद खां के नेतृत्व में पंजाब पर क़ब्ज़ा कर लिया, मुहम्मद के बेटे अहमदशाह ने उसे हरा दिया।

१७४८ आसफ़जाह की मृत्यु हो गयी, मुहम्मदशाह की भी मृत्यु हो गयी, उसकी जगह उसका पुत्र अहमदशाह गद्दी पर बैठा।

१७४९ राजा शाहू की मृत्यु हो गयी, बालाजी ने बड़े राजाराम और उनकी पत्नी ताराबाई के पात राजाराम को गद्दी पर बैठा दिया।

(५) १७४८-१७५४ अहमदशाह। जल्दी ही रुहेलों के साथ, जो कि अवध [के आस पास के इलाके के] अफ़ग़ान थे, उसके झगड़े शुरू हो गये। (रुहेले एक अफगानी कबीले के लोग थे जो काबुल से आये थे—लगता है कि पहले वे उत्तर-पश्चिमी हिमालय की तरफ़ गये थे, जिसका नाम रुहेलों का हिमालय पड़ गया था फिर १७वीं शताब्दी के उत्तरार्ध में वे घाघरा और गंगा के बीच, दिल्ली के उत्तर-पूर्वी भाग में बस गये थे, इस भाग का नाम उन्होंने रुहेलखण्ड कर दिया था।) वह उनका सामना नहीं कर पाया, वे बढ़ते हुए इलाहाबाद पहुँच गये और उनके खिलाफ़ मदद के लिए वहाँ के वज़ीर, सफ़दरजंग ने मराठों को बुला लिया, मराठों ने [रुहेलों को] वहां से निकाल बाहर किया, और उनकी सहायता के एवज में मराठा नेताओं, सिंधिया और होल्कर को पुरस्कार-स्वरूप जागीरें दी गयीं।

१७५३[2] अहमद खां दुर्रानी का पंजाब पर द्वितीय आक्रमण; वह चुपचाप उसको दे दिया गया। उसने शाह की पदवी धारण कर ली।

१७५४ ग़ाज़िउद्दीन ने—आसफ़जाह के सबसे बड़े बेटे [के बेटे] ने—जिसके साथ महान् मुगल सम्राट ने झगड़ा कर लिया था, उसे गिरफ्तार कर लिया, उसकी आखें निकलवा ली, उसे गद्दी से उतार दिया, और शाही खानदान के एक शाहज़ादे को—

(६) १७५४-१७५९—म, आलमगीर द्वितीय के नाम से [शाहंशाह] घोषित कर दिया (औरंगज़ेब अपने को आलमगीर प्रथम कहता था), खुद अपने-

---

[1] एलफिन्स्टन के अनुसार, १७४८।
[2] एलफिन्स्टन के अनुसार, १७५१।

आप को ग़ाज़िउद्दीन ने उसका मंत्री बना लिया; ग़ाज़िउद्दीन बहुत ही घृणित ढंग से शासन करता था, लोगों ने कई बार उसकी हत्या करने की कोशिश की; इसी वज़ीर ने—

१७५६—में, धोखे से अहमदशाह दुर्रानी [द्वारा नियुक्त किये गये पंजाब के गवर्नर] के बेटे को गिरफ़्तार कर लिया, अहमदशाह दुर्रानी दिल्ली आया, उसे उसने लूट डाला, और जब वह लाहौर वापिस लौट गया तो—

१७५७—में, ग़ाज़ी ने मराठों को बुला भेजा, और उनकी सहायता से दिल्ली पर फिर अधिकार कर लिया।

१७५८. मराठा नेता, राघोबा ने अहमदशाह दुर्रानी से पंजाब छीन लिया और गाज़िउद्दीन के साथ मिलकर सम्पूर्ण हिन्दुस्तान को मराठों के शासन के अन्तर्गत लाने की साज़िश रची।

१७५६. ग़ाज़िउद्दीन ने आलमगीर द्वितीय की हत्या कर दी—कुछ भी वास्तविक सत्ता रखने वाला यही अन्तिम मुग़ल सम्राट था।

१७६०. एक मराठा सरदार, सदाशिव भाऊ ने, जो उस समय पेशवा की सेनाओं का सेनानायक था (दिल्ली पर अधिकार करने के लिए व्यापक तैयारियाँ पूरी कर लेने के बाद उत्तर की तरफ़ कूच कर दिया) दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया। अहमदशाह दुर्रानी के नेतृत्व में अफ़ग़ान [रुहेले] नेता फ़ौरन घोर वर्षाऋतु में यमुना पार करके उधर पहुँच गये; दूसरी तरफ़, सदाशिव भाऊ ने पानीपत में ज़बर्दस्त मोर्चा लगा दिया; आक्रमणकारियों की दोनों विशाल वाहिनियाँ एक दूसरे के सामने आ डटीं, उनमें से हर एक भारत की राजधानी को फ़तह करने के लिए दृढ़-संकल्प थी।

६ जनवरी, १७६१. पानीपत का तीसरा युद्ध। मराठा नेताओं ने इस दिन सदाशिव भाऊ को सूचित किया कि या तो वह फ़ौरन युद्ध छेड़ दे या फिर मराठे उसे छोड़ कर चले जायेंगे। (इस समय तक, दोनों सेनाएँ क़िलाबन्दी करके आमने-सामने अपने-अपने शिविरों में पड़ी हुई थीं, वे लगातार एक-दूसरे को परेशान करती थीं और एक दूसरे की रसद सप्लाई काटने की कोशिश करती थीं; भूख और बीमारी की वजह से मराठों को भारी नुक़सान उठाना पड़ रहा था।) सदाशिव ने रणक्षेत्र के लिए कूच कर दिया; भयंकर युद्ध हुआ; मराठे करीब-करीब जीत ही गये थे किन्तु तभी अहमदशाह दुर्रानी ने ख़ुद अपने सैनिकों को हमला करने का आदेश दे दिया और साथ ही साथ बायें बाज़ू के अपने सिपाहियों से मराठों के

दाहिने बाजू को छोड कर निकल जाने और फिर उस पर आक्रमण करने के लिए कहा। यह चाल निर्णायक [सिद्ध हुई]। मराठे तितर-बितर होकर भाग खड़े हुए, उनकी सेना करीब-करीब काट डाली गयी, (लगता है कि) रणभूमि में उनके दो लाख सैनिक मारे गये थे, जो शेष बचे थे वे नर्बदा की तरफ लौट गये। अहमदशाह की सेना भी इस युद्ध मे इतनी बुरी तरह से छिन्न-भिन्न हो गयी थी कि अपनी विजय का फल चखे बिना ही वह पंजाब वापिस चला गया।

दिल्ली खाली पड़ी थी, उस पर शासन करने वाला कोई नही था; आस-पास की तमाम सरकारें छिन्न-भिन्न हो गयी थी, इस चोट के बाद मराठे फिर कभी न उठ सके।

पानीपत के युद्ध के बाद देश की अवस्था :

मुगल साम्राज्य का अन्त हो गया; नाममात्र का शाहंशाह अली गौहर बिहार मे इधर-उधर भटक रहा था—मराठो का पेशवा, बालाजी राव दुख से मर गया, उसकी सत्ता चार बड़े-बड़े सरदारो गुजरात के गायकवाड़, नागपुर के राजा (भोसले), होल्कर, और सिंधिया के बीच बंट गयी। हैदराबाद मे निज़ाम स्वतन्त्र राजा बन गया, किन्तु उसकी शक्ति नुकसान होने की वजह से क्षीण होती गयी, उसको सरक्षण देने की जो फ्रान्सीसी नीति थी उसने भी उसकी शक्ति को कमज़ोर कर दिया।

१७६१ में, जिस साल पानीपत का युद्ध हुआ था, अंग्रेज़ों ने फ्रान्सीसियों को दक्षिणी भारत से निकाल बाहर किया था; १६ जनवरी १७६१ को पाडिचेरी को, जिसे कूटे ने घेर लिया था, फ्रान्सीसियो ने छोड़ दिया, कूटे ने उसके क़िले को तुड़वा दिया; इस प्रकार, भारत में फ्रान्सीसी सत्ता के प्रत्येक चिन्ह तक को नष्ट कर दिया गया।

कर्नाटक का नवाब पूरे तौर से मद्रास के अंग्रेज गवर्नर की कृपा पर निर्भर करता था, अवध का नवाब स्वतन्त्र हो गया था, उसके पास लम्बे-चौड़े इलाक़े और एक अच्छी सेना थी; राजपूत बहुत अच्छे सैनिक थे, किन्तु वे इधर-उधर बिखर गये थे; एक संयुक्त राजपूत राज्य की बात तो सुनी ही नही गयी थी; जाटों और रुहेलों की शक्ति काफ़ी बढ गयी, बाद में भारतीय इतिहास मे उन्होने काफी बडी भूमिका अदा की—मैसूर में हैदरअली की बडी ताक़त थी, अंग्रेजो ने उसके साथ जल्दी ही सम्पर्क

स्थापित कर लिया।—सम्भवतः अब तक अंग्रेज़ों की शक्ति भारत में सबसे बड़ी शक्ति बन गयी थी, दो बड़े-बड़े राज्यों के राजाओं की नियुक्ति वे इससे पहले ही कर चुके थे—बंगाल, बिहार, और उड़ीसा की सूबेदारी के शासक की और कर्नाटक के नवाब की; इसके बाद ही, उनके सहयोगी, निज़ामअली ने अपने भाई, दक्षिण के सूबेदार को क़ैद कर लिया और उसकी गद्दी छीन ली; इस प्रकार, सम्पूर्ण दक्षिणी भारत ब्रिटिश प्रभाव के अन्तर्गत आ गया। (देखिए, पृष्ठ ६८)[1] (आगे, पृष्ठ ८४ पर देखिए)

. . . .

[भारत पर होने वाले विदेशी आक्रमण का सर्वेक्षण]

३३१ ई० पूर्व. **दारियस कोडोमैनस** को कुर्दिस्तान के पर्वतों के समीप, अर्बेला के युद्ध में, **अलेक्ज़ेण्डर मैगनस** (सिकन्दर महान्) ने अन्त में हरा दिया।

३२७ ई० पूर्व. सिकन्दर ने अफ़ग़ानिस्तान को अधीन बना लिया, फिर सिन्धु नदी को पारकर तक्षशिला नाम के प्रदेश में वह घुस गया; उसके राजा ने, कन्नौज से सारे हिन्दुस्तान पर शासन करने वाले महान् राजा पोरस, अथवा पुरु के विरुद्ध, सिकन्दर के साथ मेल कर लिया।

३२६ ई० पूर्व. पोरस ने झेलम अथवा वितस्ता के पूर्वी तट पर सिकन्दर का मुक़ाबला किया; जमी लड़ाई में हिन्दू हार गये; किन्तु सिकन्दर की सेना भारत में और आगे बढ़ने के लिए तैयार नहीं थी; इसलिए अपनी सम्पूर्ण सेना को नावों की एक विशाल संख्या पर बैठाकर सिन्धु नदी के पास पहुँचने के लिए सिकन्दर झेलम में उतर पड़ा; रास्ते में सख़्त लड़ाइयाँ लड़ने के बाद वह सिन्धु नदी के मुहाने पर पहुँच गया और अपनी सेना को उसने दो

---

[1] जिस उद्धरण का उल्लेख किया जा रहा है वह ११६-२० पृष्ठों पर दिया गया है। यहाँ पर, कालक्रम के अनुसार तैयार की गयी अपनी टिप्पणियों के बाद, मार्क्स ने कोवालेव्स्की की रचना का सारांश दिया है; उसके अध्यायों को उन्होंने निम्न नाम दिये हैं: (ई)मुसलमानी शासन के अन्तर्गत भारत की कृषि व्यवस्था के सामन्तीकरण की क्रिया(पृष्ठ ६२-६७); (ऊ) ब्रिटिश आधिपत्य और भारत की सामुदायिक सम्पत्ति पर उसका प्रभाव (पृष्ठ ६८-७६)। इन दो अध्यायों के बाद कोवालेव्स्की की रचना के अल्जीरिया से सम्बन्धित दो अन्तिम अध्याय आते हैं। कालक्रम के अनुसार तैयार की गयी टिप्पणियाँ मार्क्स की नोटबुक के पेज ८४ से फिर शुरू हो जाती हैं।

भागो मे विभक्त कर दिया। एक भाग को नियारकस के नेतृत्व में सौंपकर उसने उसे आदेश दिया कि वह फ़ारस की खाडी से आगे बढ़े, दूसरे भाग को लेकर सिकन्दर स्वय स्थल मार्ग से लौट गया। मुसलमानों के आने से पहले यह भारत का अन्तिम आक्रमण था।[1]

हिन्दुस्तान के पुराने राज्यों मे से बगाल के राज्य को मुसलमानो (गोर-वश, शहाबुद्दीन) ने सन् १२०३ मे, जब कि वह छठे, अथवा सेन वश के शासन मे था, नष्ट कर दिया था।

१२३१ मालवा राज्य को मुसलमानो ने (दिल्ली के एक गुलाम बादशाह, शमशुद्दीन इल्तुतमिश ने) नष्ट कर दिया।

१२९७ गुजरात राज्य को मुसलमानो ने (अलाउद्दीन खिलजी ने) नष्ट कर दिया, उसके राजा राजपूत थे, किम्वदन्ती के अनुसार, इस राज्य की स्थापना कृष्ण ने की थी।

११९३ कन्नौज राज्य को (जो १०१७ मे, जब महमूद गजनवी ने उसकी राजधानी पर अधिकार किया था, अत्यन्त धन-धान्यपूर्ण था, गयासुद्दीन के भाई—गोर वश के—शहाब ने) नष्ट कर दिया और उसकी राजधानी को लूट डाला। वहाँ का राजा शिवाजी भागकर मारवाड मे जोधपुर चला गया और वहाँ उसने एक राजपूत राज्य की स्थापना की, जो अब सबसे सम्पन्न राज्यो मे से है।

१०५० दिल्ली राज्य को, जो उस समय अत्यन्त महत्वहीन था, अजमेर के राजा, बीसल ने फतह कर लिया।

११९२ अजमेर राज्य को जो महत्वहीन था, और दिल्ली को, जो उसके ऊपर निर्भर करता था, मुसलमानों ने (गोरवश के गयासुद्दीन के मातहत) उलट दिया। मेवाड, जैसलमेर तथा जयपुर के पुराने राज्य अब भी मौजूद थे, मेवाड़ का राजवश हिन्दुस्तान का सबसे पुराना राजवश है।

१२०५ सिन्ध मुसलमानो के हाथ मे आ गया, उसे शहाबुद्दीन गोरी ने फतह कर लिया (३२५ [ई० पूर्व] मे, सिकन्दर महान् के जमाने में, यह एक स्वतत्र राज्य था, बाद मे बँट गया और फिर मिलकर एक हो गया,

---

[1] यह कथन एलफिन्स्टन का है जिसे यों ही उद्धृत कर लिया गया है, स्पष्ट है कि चौथी शताब्दी तथा ईसा के बाद की सातवीं शताब्दी के बीच यूचियों, शकों, हूणों तथा अन्य कबीलों द्वारा भारत पर किये जाने वाले आक्रमणों के विषय में एलफिन्स्टन को कोई जानकारी नहीं थी।

७११ में उस पर मुसलमानों ने आक्रमण कर दिया, वहाँ के राजपूत नेता ने सुमेर जाति का नेतृत्व करते हुए उनको मार भगाया) ।

१०१५. कश्मीर महमूद ग़ज़नवी के हाथों में चला गया (मगध के राज्य की कहानी अत्यन्त रोचक थी। उसके बौद्ध राजाओं की सत्ता दूर-दूर तक फैली हुई थी; अनेक वर्षों तक ये राजा क्षत्री वंश के थे, किन्तु फिर शूद्र जाति के। मनु की वर्ण-व्यवस्था के चतुर्थ तथा सबसे नीचे के वर्ण के—एक व्यक्ति ने—जिसका नाम चन्द्रगुप्त था—यूनानियों ने उसे सैन्ड्राकुट्टस (शशिगुप्त) कहा है—राजा की हत्या कर दी और स्वयं सम्राट बन बैठा; उसका समय सिकन्दर महान् का समय था। बाद में, हमें तीन और शूद्र राजवंश देखने को मिलते हैं जिनकी सन् ४३६ में संयुक्त आन्ध्र की स्थापना के साथ समाप्ति हो गयी। मालवा का एक राजा विक्रमादित्य था; उसके नाम पर अब भी हिन्दू सम्वत् चलता है; वह ईसा पूर्व ५८ में राज्य करता था) ।

. . . .

दक्षिण के पुराने राज्य : दक्षिण में पांच भाषाएँ हैं: (१) तमिल, यह द्रविड़ देश में, अर्थात् धुर दक्षिण में, बंगलौर से लेकर कोयम्बटूर और कालीकट तक के नीचे के इलाके में बोली जाती है; (२) कन्नड़, यह तेलगू की एक उप-भाषा है, उत्तर और दक्षिण कनारा में बोली जाती है; (३) तेलगू, मैसूर तथा उत्तर के इलाकों में बोली जाती है; (४) मराठी, यह देवनागरी लिपि में लिखी जाती है और इसके क्षेत्र की निम्न सीमाएँ हैं: उत्तर में सतपुड़ा की पर्वतमाला; दक्षिण में तेलंगाना कहलाने वाला तेलगू प्रदेश; पूर्व में वर्धा नदी; पश्चिम में पर्वतमाला; (५) उड़िया, एक अनगढ़ उप-भाषा है जो उड़ीसा में बोली जाती है। उड़ीसा और मराठा प्रदेश के बीच के इलाके में गौड़ रहते हैं जो एक अनगढ़ स्थानीय भाषा बोलते हैं।

रामायण में अवध के राजा, राम के पराक्रम की प्रशंसा की गयी है; उनका समय ई० पूर्व १४०० माना जाता है; उस महाकाव्य के अनुसार, वे हिन्दुओं के विजयी नेता थे जिन्होंने दक्षिण और लंका को जीता था; उस पौराणिक आक्रमण के क्रम में हिन्दुओं को दक्षिण में अनेक सभ्य जातियाँ मिलीं थीं: तमिल भाषा बोलने वाले तमिल मिले थे और तेलंगों

के देश में अन्य लोग मिले थे जिनकी मातृभाषा तेलगू थी। सबसे पुराने राज्य तमिल लोगों के थे।

ईसा पूर्व, पांचवीं शताब्दी के लगभग, पांड्य नाम के एक गडेरिया राजा ने पांड्य राज्य की स्थापना की थी, यह छोटा-सा राज्य था, इसकी राजधानी मदुरा का प्राचीन नगर थी और उसके प्रदेश में कर्नाटक के धुर दक्षिण के मदुरा तथा तिन्नेवली के वर्तमान ज़िले आते थे, सन् १७३६ तक यह स्वतंत्र बना रहा था, उस वर्ष अर्काट के नवाब ने उसे जीत लिया था।

चोल, जहाँ तमिल भाषा बोली जाती थी, राजधानी कन्जीवरम् थी। ईसा सन् १६७८ में, एक मराठा सरदार वेन्कोजी ने राजा को हटा दिया था और तंजोर के वर्तमान राजाओं के वंश का पहला राजा बन गया था।

चेर, एक छोटा-सा राज्य था जिसमें त्रावन्कोर, कोयम्बटूर तथा मलबार का एक भाग शामिल था।

केरल, हिन्दुस्तान के ब्राह्मणों ने इसे उपनिवेश बना लिया था, उसी जाति का एक अभिजात वर्ग उसका शासन करता था, इसमें मलबार तथा कनारा शामिल थे, धीरे-धीरे यह गुटों में बंट गया और टुकड़े-टुकड़े हो गया, मलबार पर ज़मोरिनों (कालीकट के राजाओं) का अधिकार हो गया, और कनारा पर विजयनगर के राजाओं ने कब्ज़ा कर लिया।

कर्नाट, प्राचीनतम् विवरणों में उल्लेख मिलता है कि यह पांड्य तथा चेर राजाओं के बीच [बँटा हुआ था]। इसमें एक बड़ा और शक्तिशाली वंश था, बलाला के राजाओं का वंश, (अलाउद्दीन खिलजी के नेतृत्व में मुसलमानों ने १३१० में इस वंश का अन्त कर दिया था)।

यादव लोग, इनका उल्लेख मात्र है, इनके रहने का स्थान अज्ञात है, इनके विषय में कुछ नहीं मालूम।

कर्नाट के चालुक्य, कल्याण में, बीदर के पश्चिम की ओर, रहने वाला यह एक राजपूत वंश था; इसी वंश की एक अन्य शाखा में आते थे—

कलिंग के चालुक्य, पूर्वी तेलगाना के एक इलाके पर जो समुद्रतट के किनारे-किनारे उड़ीसा के सीमान्तों तक फैला हुआ था, वे राज्य करते थे, उन्हें कटक के राजाओं ने गद्दी से हटाया था।

आन्ध्र, राजधानी वारंगल थी, ४०० से अधिक वर्षों तक कई राजवंश (इनमें से एक वंश के लोगों, गणपति राजाओं ने बहुत प्रसिद्धि प्राप्त की थी) राज्य करते रहे थे और १३३२ में (मुहम्मद तुग़लक के नेतृत्व में) मुसलमानों ने उनके राज्य का अन्त कर दिया था।

उड़ीसा, इस राज्य का प्रथम उल्लेख महाभारत में मिलता है; सबसे पुरानी प्रामाणिक तिथि ईसवी सन् ४७३ है (शासक वंश द्वारा आक्रमणकारी "यवनों"[1] को तभी बाहर निकाल बाहर किया गया था)। "पैंतीस केसरी" राजा एक के बाद एक होते गये थे, फिर ११३१ में, गंग वंश ने इस वंश को सिंहासनाच्युत कर दिया; गंग वंश १५५० तक सिंहासनारूढ़ रहा, तब राज्य पर मुसलमानों ने (सलीमशाह सूर—जलाल खाँ के नेतृत्व में, देखिए पृष्ठ ४९)[2] कब्ज़ा कर लिया।

अन्त में, पेरिप्लस के यूनानी लेखक ने दो तटवर्ती महान् नगरों, **तगाड़ा** और **प्लिथाना** का महत्वपूर्ण व्यापार-मंडियों के रूप में उल्लेख किया है; उनके बारे में कुछ ज्ञात नहीं है, वे **गोदावरी** नदी के समीप कहीं स्थित थे।

हिन्दुस्तान में **"प्राचीन"** की जानकारी के लिए **हस्तिनापुरम्** (वह छोटा-सा राज्य जिसको लेकर वह युद्ध लड़ा गया था जिसका भारतीय इलियड, महाभारत [में वर्णन किया गया है] का भी विवरण देखिए; प्राचीन धार्मिक नगर मथुरा तथा पांचाल (पृष्ठ ६)[3] थे।

---

[1] उस समय भारत में तमाम विदेशियों को यवन कहा जाता था। स्पष्ट नहीं है कि यहाँ पर विशेष रूप से किसके बारे में कहा जा रहा है। प्रथम प्रामाणिक तिथि उड़ीसा पर अशोक के आक्रमण काल की मिलती है; अशोक ई०पूर्व २७० से २३२ के आस-पास के काल में शासन करता था।

[2] इस संस्करण के पृष्ठ ३५–३६ देखिए।

[3] मार्क्स ने यहाँ और आगे जिन पृष्ठों का हवाला दिया है वे रौबर्ट सीवेल की पुस्तक, 'भारत का विश्लेषणात्मक इतिहास', लन्दन १८७०, से सम्बन्ध रखते हैं।

[ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कम्पनी द्वारा भारत की विजय]

(१) बगाल में ईस्ट इडिया कम्पनी, १७२५-१७५५

(महान् मुग़ल · मुहम्मदशाह, १७१९–१७४८;
अहमदशाह, १७४८–१७५४)

१७२५. बगाल, विहार और उडीसा के सूबेदार और बगाल के दीवान (माल-गुज़ारी वसूल करने वाले), मुर्शिद कुली ख़ाँ की मृत्यु। बगाल और उडीसा मे उसका स्थान उसके बेटे शुजाउद्दीन ने लिया।

१७२६. हुगली मे उस समय . कलकत्ते में अंग्रेज़, चन्द्रनगर में फ़्रान्सीसी, चिनसुरा मे डच व्यापार कर रहे थे और जर्मन सम्राट द्वारा क़ायम की गयी ऑस्टेण्ड ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने बाकी बाज़ार के गाँव में [एक फैक्टरी] स्थापित की थी। दूसरी कम्पनियो ने मिलकर हमला कर दिया और अनधिकृत व्यापारियों[1] को बगाल से निकाल बाहर किया। उसी साल (जौर्ज प्रथम के शासनकाल मे) प्रत्येक प्रेसीडेन्सी शहर मे मेयर की अदालतें क़ायम कर दी गयी थीं, भारत म अंग्रेज़ों के सामान्य तथा लिखित क़ानूनों के विस्तार के सम्बन्ध मे—तथा अंग्रेजी भाषा के सम्बन्ध मे—और अधिक जानकारी के लिए पृष्ठ ७६ देखिए।

१७३० इगलैण्ड म मुक्त व्यापार के सिद्धान्तो के आधार पर एक नयी सोसाइटी बनी, ईस्ट इन्डिया मे व्यापार करने के लिए पार्लमिन्ट से उसने पट्टे की प्रार्थना की, उसी समय पुरानी ईस्ट इन्डिया कम्पनी ने प्रार्थना की कि उसकी इजारेदारी की सनद की मियाद बढा दी जाय, क्योकि उसके संस्थापन का काल पूरा हो गया था, पार्लमिन्ट मे कसकर लड़ाइयाँ हुईं,

[1] वे व्यापारी जो भारत के साथ अपने आप व्यापार करते थे और इस तरह ईस्ट इंडिया कम्पनी की इजारेदारी में दखल देते थे।

पुरानी इजारेदार कम्पनी जीत गयी; उसके अधिकार-पत्र की मियाद को १७६६ तक के लिए बढ़ा दिया गया।

१७४०.[1] सूबेदार शुजाउद्दीन की मृत्यु हो गयी, उसका स्थान विहार के गवर्नर (शासक), अलीवर्दी खाँ ने लिया; इस तरह उसने बंगाल, बिहार और उड़ीसा के तीनों सूबों को फिर एक कर लिया; उस पर—

१७४१—में, मराठों ने हमला कर दिया, मुर्शिदाबाद में उन्होंने फैक्टरी लूट ली, इत्यादि (पृष्ठ ७९-८०)। इसके फलस्वरूप, अंग्रेज़ों ने—

१७४२—में, अलीवर्दी खाँ से प्रसिद्ध मराठा खाई बनाने की अनुमति उसने ले ली।

१७५१. मराठों को अलीवर्दी खाँ ने ले-देकर मिला लिया, वे दक्षिण की ओर वापिस चले गये। इसके बाद से, १७५५ तक, हुगली के तट पर बनी अंग्रेज़ों की कोठियाँ शान्तिपूर्वक अपना काम करती रहीं। (मराठा काण्ड के सम्बन्ध में पृष्ठ ७९-८० देखिए)।

. . . .

(२) कर्नाटक में फ्रान्सीसियों के साथ युद्ध, १७४४-१७६०

१७४४. योरोप में इंगलैण्ड और फ्रान्स के बीच महायुद्ध की घोषणा हो गयी; मद्रास प्रेसीडेन्सी में अंग्रेज सैनिकों की संख्या केवल ६०० थी; पांडिचेरी तथा इले द' फ्रान्स[2] में लाबूर्दोने के मातहत फ्रान्सीसी सिपाहियों की अधिक बड़ी संख्या थी।

२० सितम्बर, १७४६. लाबूर्दोने ने मद्रास पर क़ब्ज़ा कर लिया; उसने न तो अंग्रेज़ व्यापारियों को बन्दी बनाया, न उनको व्यक्तिगत रूप से कोई चोट पहुँचायी; इसकी वजह से उसका प्रतिद्वन्द्वी डूप्ले, पांडिचेरी का गवर्नर, नाराज़ हो गया (यह आदमी फ्रान्सीसी ईस्ट इण्डिया कम्पनी के एक डायरेक्टर का लड़का था)। १७३० में वह हुगली के तट पर स्थित चन्द्रनगर की एक बड़ी फ्रान्सीसी फैक्टरी का शासक था; १७४२ में पांडिचेरी का गवर्नर बना दिया गया। लाबूर्दोने के साथ उसकी प्रतिद्वन्द्विता का अन्त भारत में फ्रान्सीसियों के अधःपतन के रूप में हुआ।

---

[1] ग्रोस के अनुसार, १७३९।

[2] मारीशस का पुराना नाम।

एक तूफ़ान की वजह से लाबूर्दोने की कमान का जहाज़ी बेड़ा नष्ट हो गया था, डूप्ले ने उसे कोई मदद नहीं भेजी। लाबूर्दोने को अंग्रेजों ने बन्दी बना लिया। फ्रान्स लौटने पर, बेस्तील के अन्दर १७४९ में उसकी मृत्यु हो गयी (१७३५ में, उसे इले द' फ्रान्स तथा बोर्बन[1] का गवर्नर बना कर भेजा गया था और १७४१ में, उसकी मियाद पूरी हो जाने पर, नौ जहाजों के एक बेड़े का कमाण्डर बनाकर अंग्रेजों के व्यापार को नुक़सान पहुँचाने के लिए उसे भारत भेज दिया गया था, १७४४ में युद्ध की घोषणा हो जाने के बाद, फ्रान्सीसी बेड़े की कमान सभालने के लिए वह दक्षिण चला गया।)

१७४६ दक्षिण में विभिन्न दलों की स्थिति। महान मुग़ल मुहम्मदशाह (१७१९-१७४८) के मातहत आसफ़जाह, उर्फ़ निज़ामुल्मुल्क, दक्षिण का सूबेदार था। निज़ामों के राजवंश की स्थापना उसी ने की थी, वह हैदराबाद में रहता था। उसी की मेहरबानी से कर्नाटक के बालक पुश्तैनी नवाब की मृत्यु पर १७४० में अनवरुद्दीन कर्नाटक का नवाब बन गया। आसफ़जाह ने उसे इससे पहले कर्नाटक के नवाब का सरक्षक नियुक्त कर दिया था। कर्नाटक के भूतपूर्व नवाब, दोस्त अली की बेटी से शादी करके, चाँदा साहेब त्रिचनापल्ली का गवर्नर बन गया था, १७४१ में मराठों ने उसे वहाँ से भगा दिया और तब वह भागकर फ्रान्सीसियों के पास मद्रास चला गया था।

१७४६ अनवरुद्दीन (कर्नाटक का नवाब) ने १० हज़ार सिपाहियों के साथ मद्रास पर हमला कर दिया, जहाँ डूप्ले फ्रान्सीसी सैनिकों का प्रधान था। डूप्ले के नेतृत्व में लगभग एक हज़ार फ्रान्सीसियों ने नवाब को खदेड़ दिया, फिर शहर को लूट डाला, कई [अंग्रेज़ों की] फैक्ट्रियों को जला दिया और अधिक प्रमुख अंग्रेज निवासियों को वहाँ से हटाकर उन्होंने पांडिचेरी भेज दिया।

१९ दिसम्बर, डूप्ले ने मद्रास के दक्षिण में १२ मील के फ़ासले पर स्थित सेण्ट डेविड के क़िले पर १७०० सिपाहियों के साथ चढ़ाई कर दी (वहाँ पर अंग्रेज़ों के गैरीसन में २०० दुर्ग-रक्षक थे), किन्तु अनवरुद्दीन ने घेरा डाले हुए फ्रान्सीसी सैनिकों पर हमला कर दिया और उन्हें पांडिचेरी वापिस जाने के लिए मजबूर कर दिया।

---

[1] रीयूनियन का पुराना नाम।

१७४७. डूप्ले ने अनवरुद्दीन को अपनी तरफ़ मिला लिया; मार्च में उसने सेण्ट डेविड के क़िले पर फिर हमला कर दिया, [किन्तु] कैप्टन पेटन के नेतृत्व में अंग्रेज़ों के जहाज़ी बेड़े को आता देखकर वह वहाँ से वह हट गया; कैप्टन पेटन ने गेरीसन की मदद के लिए क़िले में और सैनिक छोड़ दिये।

जून, १७४७. इंगलैण्ड से जहाज़ी बेड़े को लेकर एडमिरल बोसकेविन तथा एडमिरल ग्रिफिन मद्रास पहुँच गये, इससे दक्षिण में ब्रिटिश सेना की शक्ति बढ़कर ४,००० हो गयी। अंग्रेज़ों ने पांडिचेरी को घेर लिया, [किन्तु] वहाँ से उन्हें खाली हाथ लौटना पड़ा।

४ अक्तूबर, १७४८. आर्शेन की सन्धि की ख़बर आयी; डूप्ले ने मद्रास अंग्रेज़ों को वापिस दे दिया। तंजोर के मराठा राजा शाहूजी ने, जो शाहजी (शिवाजी के पिता) के वंश में पाँचवाँ था तथा जिसकी जागीर [तंजोर में] थी, अपने छोटे भाई प्रताप सिंह के विरुद्ध अंग्रेज़ों से सहायता की प्रार्थना की। प्रताप सिंह ने उससे सत्ता छीन ली थी। उसके विद्रोह का [केन्द्र] कोलेरून के मुहाने पर स्थित देवीकोटा का मज़बूत अड्डा था।

१७४७.[1] शाहू जी ने अंग्रेज़ों से वादा कर दिया कि अगर वे उस मज़बूत अड्डे को फ़तह कर लेंगे तो उसे वह उन्हीं को दे देगा। मेजर लारेन्स ने, जिसके नीचे एक नौजवान अफ़सर के रूप में क्लाइव भी काम करता था, उस पर क़ब्ज़ा कर लिया; इस तरह देवीकोटा अंग्रेज़ों का हो गया। किन्तु, प्रताप सिंह ने अन्त में शाहू जी को राजगद्दी छोड़ने के लिए मजबूर कर दिया; उसने उसे ५० हज़ार रुपया सालाना देने का वादा किया।

१७४८. दक्षिण के सूबेदार, निज़ामुलमुल्क की मृत्यु हो गयी; उसके स्थान पर उसका बेटा नासिरजंग गद्दी पर बैठा; उसके एक निष्क्रिय बड़े भाई, मुज़फ़्फ़रजंग के बेटे ने कहा कि गद्दी का हक़दार वह है। दोनों के बीच लड़ाई छिड़ गयी।

१७४९. अंग्रेज़ों और फ़्रान्सीसियों के बीच नया युद्ध। मुज़फ़्फ़रजंग ने फ़्रान्सीसियों से मदद मांगी और वह उसे प्राप्त हो गयी। उसने चाँदा साहेब से भी सहायता करने के लिए कहा और उससे वादा किया कि सूबेदारी को पाने में अगर वह उसकी मदद करेगा तो वह उसे अर्काट का नवाब बना देगा।—दूसरी तरफ़, नासिरजंग (निज़ाम) के साथ अंग्रेज़ और अनवरुद्दीन (कर्नाटक का नवाब) थे।—अनवरुद्दीन पहली ही टक्कर में मारा गया, और उसके सिपाही त्रिचनापल्ली की तरफ़ भाग गये; किन्तु,

[1] ग्रोस के कथनानुसार, १७४६।

वेतन के प्रश्न पर फ्रान्सीसी सेना मे बगावत हो गयी, इसकी वजह से डूप्ले मुसीबत मे पड गया, नासिरजग आगे बढा, मुजफ्फरजग हार गया और बन्दी बना लिया गया, किन्तु चाँदा साहेब अपनी जान पर खेलकर लडता हुआ पाडिचेरी की तरफ निकल गया। विजय के बाद नासिरजग ने अर्काट मे खूब खुशियाँ मनायी। अग्रेज मद्रास वापिस चले गये।

१७५० अनवरुद्दीन का बेटा, मुहम्मद अली उसकी जगह पर कर्नाटक का नवाब बना, इस आदमी को यह पद अग्रेजो ने दिलाया था, इसलिए खुशी खुशी वह उनका गुनाम बना रहा। इसी वजह से उसे लोग तिरस्कारपूर्वक "कम्पनी का नवाब" कहते थे।—डूप्ले ने उसी साल विजयी चढाई करके जिजी, मछलीपट्टम् और त्रिबाडी के दुर्गों पर क़ब्ज़ा कर लिया; मुहम्मद अली को उसने हरा दिया। उसके उकसावे पर, कुछ गद्दारो, पठान नवाबों ने, जो निज़ाम (नासिरजग) के साथ थे, उसे [निज़ाम को] मार दिया, उसकी जगह उसका भतीजा मुज़फ्फरजंग (फ्रान्सीसियों का मित्र) सूबेदार बना। उसने डूप्ले को कर्नाटक का नवाब और चाँदा साहेब को अर्काट का नवाब बना दिया; किन्तु—

४ जनवरी, १७५१—के दिन, जिस समय वह नौकरो-चाकरो की एक बडी सेना लेकर हैदराबाद राज्य मे यात्रा कर रहा था, उन्ही पठान नवाबो ने जिन्होने नासिरजग को मार डाला था, मुज़फ़्फ़रजग की भी हत्या कर दी। मुज़फ़्फ़रजग के अपनी कोई सन्तान नही थी; इसलिए नासिरजग के बेटे ही अगले वारिस हो सकते थे; बुसी ने जो फ्रान्सीसी सैनिक टुकडी का कमान्डर था, [सूबेदार की] खाली जगह नासिरजग के सबसे छोटे बेटे सलाबतजंग को दे दी। मुज़फ़्फ़रजग की हत्या के समय इसे छावनी मे बन्दी बना कर डाल दिया गया था।

इसी बीच, चाँदा साहेब ने, अर्काट से चढाई करके, अपनी पुरानी राजधानी त्रिचनापल्ली पर हमला कर दिया; किन्तु कैप्टन क्लाइव ने अर्काट पर चढ़ाई करके उस पर जवाबी हमला कर दिया। क्लाइव ने अर्काट पर क़ब्ज़ा कर लिया और उसे वहाँ से घबडा कर पीछे हटने के लिए मजबूर कर दिया। ७ हफ़्ते तक अर्काट को बेकार घेरे रहने के बाद चाँदा साहेब त्रिचनापल्ली लौट गया, वहाँ भी—

१७५२—मे, क्लाइव ने उसका पीछा किया; वहाँ वह मुहम्मद अली और मेजर लारेन्स के साथ रहा; भगोडे चाँदा साहेब को वहाँ पर अग्रेज़ों के एक आश्रित व्यक्ति, तजोर के राजा ने धोखे से मार डाला।

१७५३. अंग्रेज़ों के साथी मुहम्मद अली ने मैसूर के राजा से वादा किया था कि त्रिचनापल्ली वह उसको देगा, किन्तु अब वह अपना वादा पूरा करने में असमर्थ था, क्योंकि उस स्थान पर अंग्रेज़ों ने क़ब्ज़ा कर रखा था। डूप्ले ने इस स्थिति का फ़ायदा उठा कर मैसूर के राजा से और उसके ज़रिए, मुरारीराव के अधीन मराठों के साथ, दोस्ती [कर] ली।

मई, १७५३-अक्तूबर, १७५४. डूप्ले ने अपने दोस्तों के साथ त्रिचनापल्ली पर चढ़ाई कर दी; लारेंस और क्लाइव ने सफलता के साथ उसकी रक्षा की।

उसी साल (जोर्ज द्वितीय के शासनकाल में), मेयर की अदालतें, जो १७४६ में लाबूर्दोने द्वारा मद्रास पर अधिकार कर लिए जाने के बाद से इस्तेमाल न होने की वजह से बेकार हो गयी थीं, मद्रास में फिर से क़ायम कर दी गयीं। योरोपियनों के तमाम मामलों के सम्बन्ध में तथा हिन्दुओं के तमाम मामलों के सम्बन्ध में भी फ़ैसला करने का अधिकार उन्हें मिल गया; किन्तु हिन्दुओं के सम्बन्ध में केवल उनकी रज़ामन्दी के आधार पर ही वे फ़ैसला कर सकती थीं। उन लोगों को जो इस अदालत को मानने से इन्कार करते थे, स्पष्ट रूप से उसके शासन-क्षेत्र से अलग कर दिया गया था। "यह अधिकार-पत्र इस चीज़ की पहली मिसाल है जो हमें मिली है जिसमें अपने क़ानूनों को हिन्दुस्तान की जनता पर लागू करने के सम्बन्ध में उन्होंने (अंग्रेज़ों ने—स०) रोक लगा दी थी।" (ग्रेडी द्वारा रचित, उत्तराधिकार सम्बन्धी हिन्दू क़ानून, प्रस्तावना, पृष्ठ ४४)।

१७५४. शान्ति; डूप्ले को वापिस बुला लिया गया (भारत में फ़्रान्सीसियों के पतन का यहीं से श्रीगणेश हुआ था)। इसकी वजह यह थी कि इस बात को लेकर १७५१ से ही योरप में झगड़ा चल रहा था कि कर्नाटक का नवाब किसको माना जाय: "कम्पनी के नवाब" मुहम्मद अली को; या पुश्तैनी सूबेदार द्वारा अधिकृत रूप से नियुक्त किये गये, डूप्ले को। अंग्रेज़ सरकार का कहना था कि कर्नाटक का नवाब मुहम्मद अली को बनाया जाना चाहिए क्योंकि वही पुराने नवाब का वारिस है, और क्योंकि नाममात्र का महान् मुग़ल अहमद शाह (मृत्यु १७५४; उसके बाद आलमगीर द्वितीय, १७५४-१७५९ गद्दी पर बैठा था) ही एक ख़ास फ़र्मान जारी करके उक्त पद को पुश्तैनी वारिसों से लेकर दूसरे किसी को दे सकता था। फ़्रान्स में डूप्ले के शत्रुओं ने उनके ख़िलाफ़ षड्यंत्र रचा और यह अभियोग लगाया कि उसने "बहुत ज़्यादा ख़र्च" किया था। डूप्ले को

हटा कर गाडह्यू (१७५४) को नियुक्त किया गया। (कुछ वर्ष बाद अत्यधिक गरीबी की हालत में डूप्ले की फ्रांस में मृत्यु हो गयी। उन फ्रान्सीसी पिल्लों की ईर्षा किन्हीं भी योग्य आदमियों को टिकने नहीं देती थी)।

२६ दिसम्बर, १७५४ गाडह्यू और सैन्डर्स (मद्रास के गवर्नर) के बीच सन्धि हो गयी, इसके द्वारा मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब मान लिया गया।—इसी बीच बुसी, जो भारत में स्थित सारे फ्रान्सीसी नेताओं में सबसे चतुर था, दक्षिण में निज़ाम सलाबतजंग के साथ औरंगाबाद पहुँच गया [था] सूबेदारी के कामकाज को चलाने में वह वहाँ उसे सहायता दे रहा था। — उसी वर्ष—१७५४[1] में—सलाबतजंग के ऊपर गाज़िउद्दीन खाँ (भूतपूर्व सूबेदार नासिरजंग के बड़े भाई) ने एक विशाल सेना के साथ, जिसमें मराठे भी थे, हमला कर दिया। बुसी ने उसे हरा दिया और गाज़ीउद्दीन को ज़हर पिलवा दिया, फ्रान्सीसियों को उत्तरी सरकार के इलाके देकर निज़ाम ने उनका शुक्रिया अदा किया।

१७५५ बुसी की सलाह के खिलाफ, सलाबतजंग ने मैसूर के राजा पर हमला कर दिया। मैसूर के राजा ने चौथ देने से इन्कार कर दिया था (मैसूर का राजा अभी तक फ्रान्सीसियों का मित्र था, अब अंग्रेजों के साथ मित्रता करने के लिए मजबूर हो गया था), सलाबतजंग का हमला सफल हुआ, बहुत माल लूटा गया और भेंटें देकर मैसूर के राजा ने सलाबतजंग से सुलह कर ली। इसके बाद निज़ाम पेशवा बालाजी राव के मातहत मराठों के साथ मिल गया और विद्रोही मराठा सरदार, मुरारी-राव को उसने पराजित कर दिया।

१७४९-१७५६ मराठों का हाल। १७४९ में, राजा शाहू की पूना में मृत्यु हो गयी, उसके कोई सन्तान नहीं थी। पेशवा, बालाजी राव वास्तविक शासक बन गया, रक्त सम्बन्ध से जुड़े एकमात्र राजकुमार, राजाराम को [उसने] पदवी के अलावा और कुछ नहीं दिया। उसे एक तरह से वह एक क़ैदी की तरह रखता था। साथ ही साथ, अपने बहादुर और बागी बेटे—राघोबा को—गुजरात के गायकवाड़ के राज्य को लूटने के बहाने उसने पूना से बाहर भेज दिया।

१७५६ निज़ाम, सलाबतजंग ने बुसी को अपने दरबार से हटा दिया था, तो वह मछलीपट्टम चला गया था। उसने सुना कि फ्रांसीसियों की सूबेदारी

---

[1] एल्फिन्स्टन के कथनानुसार, १७५२ में।

कारोमण्डल तट के उत्तर में स्थित प्रान्त, जो निज़ाम हैदराबाद का था।

से निकाल कर बाहर करने के लिए निज़ाम अंग्रेजों के साथ मेल-जोल करने की योजना बना रहा है। उसने फ़ौरन आक्रमण कर दिया और हैदराबाद के समीप, चारमाल में अपने को मजबूती से जमा लिया। सलाबत ने समझौता कर लिया और अंग्रेजों के दोस्ती के प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।

१७५७. निज़ाम ने बुसी को फिर उत्तरी सरकार की तरफ़ भेज दिया। किन्तु जल्दी ही उसे उसको वापिस बुलाना पड़ा; लौटने पर—

१७५७—में, बुसी ने देखा कि हैदराबाद के इर्द-गिर्द, निज़ाम के दो बड़े भाइयों, अर्थात्, बसालतजंग और निज़ाम अली के नेतृत्व में चार विरोधी सेनाएं जमा हो गयी हैं। इसके अलावा, निज़ाम अली के साथ सलावतजंग का वज़ीर भी मिल गया था। बुसी ने उसे इस तरह मरवा डाला कि लगा कि वह किसी आकस्मिक लड़ाई में मारा गया है। इस पर निज़ाम अली रणक्षेत्र छोड़ कर भाग गया और बसालतजंग को दौलताबाद का क़िला देकर मिला लिया गया।

१७५८. बुसी अब पूरे दक्षिण का तानाशाह बन गया; ठीक उसी समय लुई १५वें के ईर्षालु कुंद-ज़हन वाले साथी-संगियों ने उसे हटा दिया, और उसके स्थान पर दुस्साहसी आयरलैण्डवासी लैली को नियुक्त कर दिया जो सिपाही तो अच्छा था किन्तु जनरल किसी काम का न था।

१ मई, १७५८. लैली सेन्ट डेविड के क़िले के समीप जहाज से उतरा। बुसी को उसने फ़ौरन ही आर्डर दिया कि अपने मातहत तमाम फ़्रान्सीसी सैनिकों को लेकर वह दक्षिण की ओर कूच कर दे। बुसी ने आज्ञा पालन की। लैली ने सेन्ट डेविड के क़िले पर अधिकार कर लिया, और मद्रास पर चढ़ाई करने ही वाला था कि पाँडिचेरी के फ़्रान्सीसी व्यापारियों ने उसे ज़रा-सी भी आर्थिक सहायता देने से इन्कार कर दिया। इसलिए उसने तंजोर को "लूटने" का फ़ैसला किया। तंजोर के बारे में मशहूर था कि वह बहुत सम्पन्न है। लैली ने उसे अच्छी तरह से घेर लिया। तजोर के राजा ने अंग्रेज़ों से अपील की। उन्होंने मद्रास से अपने बेड़े को कारीकल भेज दिया, फ़्रान्सीसी रसद के रास्तों को काट दिया और एक सेना उतार दी जिसने लैली के हमले की समानान्तर दिशाओं में चारों तरफ़ से उसे घेरना शुरू कर दिया। फ़्रान्सीसी घेरा टूट गया और, आज्ञा के बिलकुल खिलाफ़, फ़्रान्सीसी एडमिरल बेड़े को लेकर और लैली को उसकी क़िस्मत के आसरे छोड़कर मारीशस के लिए रवाना हो गया।—लैली ने अर्काट

को ग्रनह् कर लिया, वहाँ बुसी आकर उसमे मिल गया। बुसी ने उसे सलाह दी कि फ्रान्सीसी शक्ति को सगठित करन के लिए तथा अंग्रेज़ों की सदर छावनी पर अन्तिम धावा करने के लिए आवश्यक धन जमा करने के लिए वह वहीं अर्काट मे टिका रहे, लेकिन "जिद्दी" लैली ने अपनी ही योजना पर ज़ोर दिया और—

१२ दिसम्बर, १७५८—को, मद्रास के ऊपर चढ़ाई कर दी। वहाँ के गेरीसन (रक्षक सैन्यदल) ने लारेंस के नतृत्व मे दो महीने तक उसका सामना किया। १४ दिसम्बर को फ्रान्सीसियों ने "काले नगर" पर कब्ज़ा कर लिया और किले के इर्द-गिर्द समानान्तर रेखाओं म जम गये।

१६ फरवरी, १७५९ सडकों पर एक ब्रिटिश बेड़ा आ पहुँचा,[1] उसने घेरे को तोड दिया। लैली भाग खडा हुआ, अपने पीछे वह ५० तोपें छोडता गया। कर्नल कूट, जो सेना को लेकर आया था, बिना किसी रोक-टोक के मद्रास पहुँच गया, गरीसन को लेकर वहाँ से निकल पडा, वाडवाश पर उसने क़ब्ज़ा कर लिया और लैली की सेना के उसने टुकडे-टुकडे कर दिय। उसे उसने खदेड कर पाडिचेरी भगा दिया।

१७६०. पाडिचेरी मे लैली पडा हुआ फ्रान्स से मदद पाने की व्यर्थ प्रतीक्षा कर रहा था, तनखा के लिए उसके सिपाही विद्रोह कर रहे थे, १७६० के अन्त मे, कूट ने पाडिचेरी को घेर लिया।

१४ जनवरी, १७६१ गेरीसन ने पाडिचेरी को खाली कर दिया; कूट ने क़िले को एकदम ध्वस्त कर दिया और, इस तरह, भारत मे फ्रान्सीसी सत्ता के अन्तिम चिन्ह को भी पूर्णतया मिटा दिया। लैली के साथ पेरिस में बहुत बुरा व्यवहार किया गया और अन्तमे उसे फाँसी दे दी गयी। लाबूर्दोने जेल मे मर गया। डूप्ले नितान्त गरीबी मे पडा रहा और बुसी भारत मे तब तक बना रहा जब तक कि उसे लोगो ने बिलकुल भुला नहीं दिया।

(३) बगाल की घटनाएँ, १७५५-१७७३

१७४०. सूबेदार शुजाउद्दीन की मृत्यु के बाद, अलीवर्दी खाँ ने अपने नीचे बगाल, बिहार और उडीसा क तीनों प्रान्तों को मिला कर एक कर लिया (पृष्ठ ८५[1])। मराठा पेशवा, बाजीराव की उसने मृत्यु होते देखी।

---

[1] इस सस्करण का पृष्ठ ६९।

(बाजीराव की सेनाओं का संचालन पँवार, होल्कर, सिन्धिया और एक शक्तिशाली जांबाज, रघुजी भोंसले ने किया था।) बाजीराव पेशवा की मृत्यु के बाद रघुजी भोंसले की ताक़त इतनी बढ़ गयी कि उसको कुचलने के लिये दूसरे नेताओं ने आपस में एक गुप-चुप समझौता कर लिया; [उन्होंने] उसको एक अभियान पर कर्नाटक भिजवा दिया। पेशवा (बाजीराव) तीन बेटे छोड़ कर मरा था : बालाजी राव, जो उसका उत्तराधिकारी बना था, रघुनाथ राव (जो बाद में राघोवा के नाम से मशहूर हुआ था), तथा शमशेर बहादुर, जो बुन्देलखण्ड में राज्य कर रहा था। नये पेशवा, बालाजी राव को जो ज़मीनें मिली थीं उनकी वजह से उसकी भोंसले से सीधी-सीधी टक्कर हो गयी थी। भोंसले ने बंगाल पर चढ़ाई कर दी, लेकिन वहाँ शाही सेनाओं ने उसे हरा दिया। स्वयं उसके प्रदेश में होने वाली इन कार्रवाइयों से अलीवर्दी खाँ दोनों दलों के मराठों से अपनी रक्षा करने के लिये मजबूर हो गया; शाही सेनाओं ने उसकी मदद की; बालाजी राव के एक अफ़सर, भास्कर ने सफलता के साथ उसका मुक़ाबला किया, उससे लड़ता हुआ वह कोठा तक चला गया, हुगली तक बढ़ गया, और मुर्शिदाबाद में स्थित एक फैक्टरी को उसने लूट लिया।

१७४४ में, अलीवर्दी खाँ ने भास्कर की हत्या कर दी, फिर १७५१ में उसने ले-दे कर मराठों को अपनी तरफ़ मिला लिया।

१७५५. यह देख कर कि बालाजी राव, पेशवा की ताक़त बढ़ती जा रही थी और महान् मुग़ल कमज़ोर हो रहा था, अंग्रेज़ों ने बालाजी राव के साथ मित्रता कर ली।

८ अप्रैल, १७५६, अलीवर्दी खाँ की मृत्यु हो गयी, सूबेदार की हैसियत से उसका वारिस उसका पोता सिराजुद्दौला बना; [उसने] कलकत्ता के गवर्नर, मिस्टर ड्रेक को फ़ौरन पैग़ाम भेजा कि तमाम ब्रिटिश क़िलेबन्दियों को तोड़ कर गिरा दे। ड्रेक के इन्कार कर देने पर सेना लेकर वह खुद कलकत्ते आ पहुँचा। क़िले के गेरीसन (रक्षक सैन्यदल) में चूंकि केवल १२० ही अंग्रेज तोपें चलाने वाले, आदि थे और रसद सामग्री का अभाव था, इसलिए वहाँ के निवासियों को ड्रेक ने आर्डर दिया—" Sauve qui peut "[1]!

---

[1] जो अपने को बचा सके बचा ले।

२१ जून, १७५६ को शाम—मुन्शी-मुहर्रिर अपना माल-मता लेकर भाग गये; रात मे हौलवेल ने "जलती हुई फॅक्टियो की रोशनी की मदद से" किले की रक्षा की, किले मे सेना घुस आयी, गेरीसन को कैद कर लिया गया, सिराज ने आदेश दिया कि सुबह तक तमाम बन्दियों को अच्छी तरह रखा जाय, लेकिन (ऐसा लगता है कि दुर्घटनावश) १४६ आदमी २० वर्ग फुट के एक कमरे मे, जिसमे केवल एक छोटी खिडकी थी, भर दिये गये थे, अगले दिन सुबह (जैसा कि हौलवेल ने स्वयम् बताया है), केवल २३ लोग जिन्दा बचे, उन्हे नाव से हुगली के रास्ते चले जाने की इजाज़त दे दी गयी। यही वह "कलकत्ते की काल-कोठरी" का काण्ड था जिसे लेकर पाखण्डी अंग्रेज आज तक इतनी झूठी-मूठी बदनामी कर रहे हैं। सिराजुद्दौला मुरादाबाद लौट गया, बगाल मे अंग्रेज हस्तक्षेपकारियों को पूर्णतया और अच्छी तरह से निकाल बाहर कर दिया गया।

२ जनवरी, १७५७ क्लाइव ने, जिसे एडमिरल वाटसन की कमान मे एक जहाजी बेडे के साथ मद्रास से ऊपर भेजा गया था, फोर्ट विलियम पर पुन अधिकार कर लिया। सूबेदार ने कलकत्ते पर चढाई कर दी, क्लाइव ने हमला किया। कई घन्टे तक अनिर्णीत घमासान लडाई होती रही। ३ जनवरी को सिराजुद्दौला ने कम्पनी को उसके पुराने विशेषाधिकार फिर दे दिये और [उसे] मुआवजा भी [दिया]—क्लाइव ने चन्द्रनगर की फ्रान्सीसी बस्ती को नष्ट कर दिया। सूबेदार ने प्लासी मे, कलकत्ते के समीप, हुगली के किनारे अपना पडाव डाल दिया। मुगल सेना के कमान्डर-इन चीफ (प्रधान सेनापति), मीर जाफ़र ने क्लाइव को चिट्ठी लिखकर उसमे यह कहा कि अगर सिराजुद्दौला के स्थान पर बगाल, बिहार और उडीसा का सूबेदार बना दिया जाय तो लडाई के किसी भी दिन गद्दारी करके वह अंग्रेज़ो की तरफ़ आ जायगा। क्लाइव ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया।

२३ जून, १७५७ प्लासी का युद्ध। सम्पूर्ण मुगल सेना पराजित हुई, सूबेदार भाग खडा हुआ, मीर जाफ़र ने लडाई लडना बन्द कर दिया, [गद्दारी करके] वह क्लाइव की तरफ़ चला गया।

२६ जून, १७५७ [अंग्रेज़] सेना मुरादाबाद वापिस लौट आयी, वहाँ पर क्लाइव ने गद्दार को बगाल, बिहार, और उडीसा का इस शर्त पर पूरी रस्म के साथ सूबेदार बना दिया कि वह युद्ध का खर्चा भरेगा और हुगली

के किनारे स्थित कम्पनी की सम्पत्ति की हिफ़ाजत करेगा; दुर्लभराय मीरजाफ़र का वित्तमंत्री बन गया और राम नारायण पटना का गवर्नर।

३० जून, मीरजाफ़र के एक बेटे ने सिराजुद्दौला को एक दरवेश के रूप में घूमता हुआ देख लिया, और मार डाला।

प्लासी के युद्ध के फ़ौरन बाद, क्लाइव को कलकत्ते का गवर्नर बना दिया गया; इस प्रकार, अब वह बंगाल में अंग्रेज़ों का नागरिक और फौजी कमान्डर बन गया।

मीरजाफ़र के विरुद्ध—मिदनापुर, पूर्णिया और विहार में—तीन विद्रोह हुए जिन्हें कुचल दिया गया।

१७५७ का अन्त. मीर जाफ़र के पास से ८ लाख पौण्ड के खजाने से भरा एक जहाज़ आया; इससे कलकत्ते के "मूढ़-मति लोग" आनन्द-विभोर हो गये।

१७५८. क्लाइव द्वारा अभियान पर भेजे गये कर्नल फोर्ड ने कांफ्लोन्स के नेतृत्व में काम करने वाली फ्रान्सीसी फौजों को विजगापट्टम में हरा दिया और मछलीपट्टम पर कब्जा कर लिया।

१७५६. शाहज़ादा (शाही राजकुमार) अलीगौहर ने, जो महान् मुग़ल आलमगीर द्वितीय का सबसे बड़ा बेटा था, अपने पिता के विरुद्ध विद्रोह कर दिया; अवध का सूबेदार उसके साथ हो गया, फिर उन्होंने पटना पर, जिसकी रामनारायण हिफ़ाज़त कर रहा था, चढ़ाई कर दी। क्लाइव ने रामनारायण की मदद की, शाहज़ादे को खदेड़ कर भगा दिया, और इसके एवज में मीरजाफ़र से एक जागीर प्राप्त की जिससे उसे ३० हज़ार पौण्ड साल की आमदनी होने लगी।—इसके कुछ ही समय बाद, बटाविया में स्थित अपनी बस्तियों से [आकर] एक डच जहाज़ी बेड़ा हुगली में पहुँच गया; और कुछ सिपाहियों को उसने वहाँ उतार दिया। रात में क्लाइव ने कर्नल फोर्ड से उनके ऊपर हमला करवा दिया और उन्हें खदेड़ कर उनकी नावों पर वापिस भेज दिया; सारा खर्चा भरने का वादा करके डच कमाण्डर वहाँ से वापिस चला गया।

२५ फरवरी, १७६०. क्लाइव योरप के लिए रवाना हो गया।—मीरजाफ़र ने अपने वित्तमंत्री, दुर्लभराय की हत्या कर दी।—इसी दर्म्यान महान् मुग़ल, आलमगीर द्वितीय को भी उसके वज़ीर, ग़ाज़िउद्दीन ने हत्या कर दी; शाहज़ादे ने अपने को शाहंशाह घोषित कर दिया, पटने पर चढ़ाई कर दी, और रामनारायण को हरा दिया; रामनारायण नगर में—

२० फरवरी, १८६०—तक उस समय तक जमा रहा जिस समय तक कि ब्रिटिश सैन्य शक्ति को लेकर कर्नल कैलाड वहाँ नहीं आ गया, कर्नल कैलाड ने नय शाहशाह (अली गौहर) को पराजित कर दिया, मुग़ल ने बंगाल में घूमकर मुर्शिदाबाद पर चढ़ाई करने की कोशिश की उसने देखा कि अंग्रेज वहाँ भी तैयार खड़े थे, तब वह पटना वापिस चला गया। कैलाड ने उस नगर की मदद करने के लिए कैप्टन नौक्स को भेजा, २०० योरोपियन सिपाहियों की एक बटेलियन तथा घुड़सवारों के एक छोटे स्क्वैडरन को लेकर नौक्स वहाँ पहुँच गया। नौक्स ने मुगल सेनाओं को हरा दिया और पटना में अपना पड़ाव डाल दिया, किन्तु तभी गंगा के दूसरे तट पर ३० हजार सैनिकों और १०० से अधिक तोपों को लेकर पूर्णिया का नवाब आ पहुँचा।

२० मई, १७६० नौक्स की विजय हुई, अपने मित्र, राजपूत राजा सिताबराय के साथ उसने हमला करने के लिए नदी पार की, मुगल सेना को खदेड़ भगाया, नौक्स और राजपूत ने अपने केवल ३०० बचे सैनिकों को लेकर पटना में प्रवेश किया।

६ जनवरी, १७६१ पानीपत की लड़ाई (देखिए, पृष्ठ ५८[1])— युद्ध में एक तरफ सदाशिव भाऊ के नेतृत्व में मराठे थे और दूसरी तरफ अहमद खाँ अब्दाली के नेतृत्व में दुर्रानी, अथवा अब्दाली (अफगान क़बीला)। भारत में मुगल साम्राज्य एकदम परास्त हो गया; मराठों की शक्ति छिन्न भिन्न हो गयी, और अहमद खाँ की ताकत इतनी कमज़ोर हो गयी कि उसे अफ़गानिस्तान लौट जाना पड़ा।

१७५७ राघोबा (जिसे आलमगीर द्वितीय के वज़ीर गाज़ीउद्दीन ने बुला भेजा था) ने दिल्ली को अहमद खाँ से छीन लिया। पंजाब में अहमद खाँ के बेटे, शाहजादा तैमूर को हरा कर, मराठे दक्षिण लौट गये। पूना लौटने के बाद, राघोबा ने पेशवा के चचेरे भाई सदाशिव (अथवा सदाशिव भाऊ) के साथ झगड़ा कर लिया और सेना की कमान से हटा दिया गया, उसके स्थान पर सदाशिव की नियुक्ति कर दी गयी।

१७५९ अहमद खाँ ने चौथी बार भारत पर आक्रमण कर दिया और ठीक उसी समय जिस समय कि गाज़ीउद्दीन ने आलमगीर द्वितीय की हत्या कर दी थी और जिस समय एक अफ़गान सेनानायक नजीबुद्दौला ने मराठा

[1] इस संस्करण का पृष्ठ ६१–६७।

नेताओं, मल्हार राव होल्कर तथा दत्ता जी सिंधिया को खदेड़ कर गंगा के पार भगा दिया था, उसने लाहौर पर अधिकार कर लिया। इसे देखकर—

१७६०—के आरम्भ में, अहमद खां एक सेना लेकर दिल्ली के सामने [आ पहुँचा]। विशाल सेना लेकर भाऊ (सदाशिव) ने उसके ऊपर चढ़ाई कर दी, और पानीपत में अन्तिम निर्णय हो गया।

१७६०. क्लाइव के स्थान पर वान्सिटार्ट को बंगाल का गवर्नर बना दिया गया; मद्रास के एक शहरी अधिकारी के रूप में बंगाल के अफ़सर उसे "नापसन्द करते" थे। वान्सिटार्ट ने मीरजाफ़र को हटा दिया और उसके दामाद मीरक़ासिम को सूबेदार बना दिया; यह आदमी कलकत्ते में रहता था, अंग्रेज़ों को २ लाख पौंड की आर्थिक सहायता वह सावधानी से चुकाता जाता था; उसने अपने इलाके के एक-तिहाई भागको, अर्थात्, मिदनापुर, वर्दवान तथा चटगाँव के जिलों को कम्पनी को हमेशा के लिए दे दिया। लेकिन बाद में, वान्सिटार्ट की दख़लन्दाज़ियों से नाराज़ होकर, उसने अपनी सेना बढ़ाना और उसे अनुशासित करना शुरू कर दिया।—इसी दर्म्यान, अलीगोहर ने शाहंशाह शाहआलम के नाम से, दिल्ली पर फिर से क़ब्ज़ा करने में असमर्थ होकर बिहार को लूट-पाट डाला; अन्त में, उसने अंग्रेज़ों के साथ समझौता कर लिया; उन्होंने उसे पटना में मान्यता प्रदान कर दी; और उसने उन तमाम नियुक्तियों की पुष्टि कर दी जो अंग्रेज़ों ने की थीं।

१७६२. मीरक़ासिम ने रामनारायण को क़ैद करवा लिया, मालगुज़ारी वसूल करने वाले अपने आदमियों से रैयत को उसने तकलीफ़ें दिलानी शुरू कर दीं, किन्तु कम्पनी ने उसकी जिस चीज को अपराध माना वह यह थी: (१) गर्व जैसे महान् मुग़ल, फ़र्रुख़शियर (देखिए, पृष्ठ ५६[1]) ने १७१५ में एक सामूहिक संस्था के रूपमें कम्पनी को दस्तक (यानी बाहर से लाये जाने वाले माल पर टैक्सों की छूट) प्रदान कर दी थी, किन्तु इस अधिकार को तमाम (अंग्रेज) निजी व्यापारियों ने अपना हक़ मान लिया था। "क्लर्कों" (कलमनवीसों) की इस जबर्दस्ती के मीरक़ासिम ख़िलाफ़ था; उसके टैक्स वसूल करने वाले आदमियों ने उसकी आज्ञाओं को पालन करने की कोशिश की। उन्होंने उन मालों को रोक दिया जिन पर

---

[1] इस संस्करण का पृष्ठ ५५।

कर नहीं चुकाया गया था, इस पर कम्पनी के नौकरों ने उनका अपमान किया। वान्सिटार्ट ने प्राइवेट तौर से वादा किया कि [कम्पनी के नौकर] मीरकासिम को ६ प्रतिशत कर दिया करेंगे, किन्तु कम्पनी की कौंसिल ने इस वादे को नामज़ूर कर दिया और बाकायदा आर्डर दे दिया कि मीरकासिम के अफ़सर अगर कर वसूल करने की कोशिश करें तो उन्हें पकड़ लिया जाय और जेल मे डाल दिया जाय। इसके जवाब में, मीरक़ासिम ने बन्दरगाह के तमाम मुग़ल व्यापारियों को एक फ़र्मान के द्वारा यह छूट प्रदान कर दी कि अपने माल को बिना कोई शुल्क दिये वे ले आयें, इस फर्मान के द्वारा उसने उन्हें "अंग्रेज़ क्लर्कों" (क़लमनवीसों) की बराबरी के स्तर पर रख दिया। —एलिस ने, जो पटना में अंग्रेज़ों की फैक्टरी का प्रधान था, खुलेआम लड़ाई की तैयारियाँ शुरू कर दी। कम्पनी के अधिकारों पर ज़ोर देने के लिए कलकत्ते से जो दो आदमी, हे और एमियट मुंगेर भेजे गये थे उन्हें मीरकासिम के हुक्म से पकड़ लिया गया, हे को इस बात की ज़मानत के रूप में रोक लिया गया कि एलिस उचित व्यवहार करे, एमियट को मीरकासिम के एक लिखित विरोध के साथ कलकत्ता वापिस भेज दिया गया। एलिस ने फौरन ही पटना के शहर और क़िले पर अधिकार कर लिया। मीरक़ासिम ने अपने अफ़सरों को हुक्म दिया कि रास्ते में जो भी अंग्रेज़ मिले उसे वे पकड़ लें, कलकत्ते के रास्ते में एमियट मुग़ल पुलिस को अपनी तलवार सौंपने के लिए तैयार नहीं था, इसलिए उसने उन पर गोली चला दी। लड़ाई में वह ख़ुद मारा गया।

१७६३, मीरकासिम ने अपनी सेना बढ़ा ली और मदद के लिए महान् मुग़ल (अलीगौहर) तथा अवध के सूबेदार से अपील की, अंग्रेज़ों ने घोषित कर दिया कि उसे गद्दी से हटा दिया गया है, उन्होंने उसकी जगह पर फिर मीरजाफ़र को नियुक्त कर दिया।

१६ जुलाई, १७६३ अंग्रेज़ विजयी हुए (यह लड़ाई की शुरुआत ही थी), २४ जुलाई को भी ऐसा ही हुआ, २ अगस्त को मुर्शिदाबाद पर कब्ज़ा करने के बाद घेरिया में अंग्रेज़ विजयी हुए। मीरक़ासिम ने तमाम अंग्रेज़ बन्दियों को मरवा डाला, उसने सेठों, मुर्शिदाबाद के धन्नासेठ बैंकरों, तथा रामनारायण को भी मरवा डाला।

नवम्बर, १७६३, अंग्रेज़ों ने उदयनाला में मीरकासिम के सैन्य शिविर पर कब्ज़ा कर लिया मुग़ल [मीरकासिम] भागकर पटना चला गया, वहाँ महान् मुग़ल, शाहआलम और अवध का सूबेदार बड़ी सैन्य शक्ति लेकर

उसके साथ आ मिले; किन्तु अंग्रेज़ों ने पटने पर हमला करके उस पर अधिकार कर लिया।

१७६४. पटना में, तनख़ाहों के न मिलने की वजह से, सिपाहियों ने अंग्रेज़ों के खिलाफ़ बग़ावत कर दी; दुश्मन से मिलने के लिए सिपाही मार्च करके शहर से चले गये; मेजर मुनरो ने उन पर आक्रमण करके उन्हें हरा दिया और उन्हें मार्च कराकर पटना वापिस ले आया। पटना में उनके नेताओं को तोपों के मुंह पर रखकर उड़ा दिया गया (इस प्रकार इस परोपकारी तरीक़े का इस्तेमाल उस प्रथम सिपाही-विद्रोह के ज़माने से ही किया जाने लगा था!)

२२ अक्टूबर, १७६४. मीरक़ासिम पर बक्सर के उसके क़िलेबन्द सैन्य-शिविर में मुनरो ने हमला कर दिया; वह हार गया और जान बचाने के लिए अवध भाग गया।

१७६४. बक्सर (पटना के उत्तर-पश्चिम में) की इस विजय से, गंगा का पूरा तट अंग्रेज़ों के हाथों में [पहुँच गया]: अंग्रेज़ हिन्दुस्तान के वास्तविक मालिक बन गये। वान्सिटार्ट ने फ़ौरन शुजाउद्दौला को अवध का नवाब मान लिया; मीरजाफ़र को उसने बंगाल, बिहार और उड़ीसा का नवाब मान लिया (मीरजाफ़र को ५३ लाख का हर्जाना देना पड़ा था); और शाह आलम को उसने महान् मुग़ल मान लिया, उसके रहने का स्थान इलाहाबाद तै हुआ।

१७६५. मीरजाफ़र की मृत्यु हो गयी; उसके बेटे नजमुद्दौला को उसका वारिस मान लिया गया।— वान्सिटार्ट का कार्यकाल भी इसी वर्ष समाप्त हो गया; क्लाइव, जो लार्ड बना दिया गया था, उसका उत्तराधिकारी नियुक्त हुआ; अन्तरिम काल के लिए, स्पेन्सर को [कम्पनी की कलकत्ता कौन्सिल का] प्रेसीडेन्ट नियुक्त कर दिया गया।

१७६५-१७६७. क्लाइव का द्वितीय प्रशासन-काल (क्लाइव ने लन्दन में ईस्ट इन्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों से लड़ाई कर ली; फलस्वरूप, उन्होंने कलकत्ता फ़ौरन यह आर्डर भेज दिया कि उसकी जागीर पर उसे लगान के रूप में जो रुपया दिया जाता था वह बन्द कर दिया जाय।)

३ मई, १७६५. बंगाल के गवर्नर, कौंसिल के प्रेसीडेन्ट, और कमान्डर-इन-चीफ़ की संयुक्त सत्ताओं से लैस होकर लार्ड क्लाइवक लकत्ता पहुँचा।

कलकत्ते, आदि में क्लाइव ने भ्रष्टाचार देखा (पृष्ठ १०३)। क्लाइव की सहायता के लिए चार व्यक्तियों की जो एक कमेटी बनायी गयी

थी उसमें जनरल कार्नेक, मिस्टर वर्लस्ट, मिस्टर सुमनर और मिस्टर साइक्स थे।—क्लाइव ने बंगाल, उड़ीसा और बिहार के नवाब, व्यभिचारी नजमुद्दौला को ५३ लाख रुपया सालाना देने का वादा करके गद्दी छोड़ने के लिए राज़ी कर लिया। उसने अपनी सारी सत्ता ईस्ट इण्डिया कम्पनी को सौंप दी। उन तीन ज़िलों में अपने तमाम क्षेत्रीय अधिकारों को अपनी मर्ज़ी से छोड़ देने के एवज़ में क्लाइव ने महान् मुग़ल को २६ लाख रुपये सालाना की एक और रक़म दे दी और कड़ा तथा इलाहाबाद की आमदनी को कम्पनी के लिए हासिल कर लिया। इसके अलावा, महान् मुग़ल ने ईस्ट इण्डिया कम्पनी द्वारा प्राप्त किये गये तमाम इलाक़े के हुकूमत सम्बन्धी तमाम अधिकार भी कम्पनी को सौंप दिये। इस प्रकार, अंग्रेज़ सरकार को दीवानी[1] और निज़ामत[2] दोनों प्राप्त हो गये। इसी साल क्लाइव ने अदालत की व्यवस्था[3] को वैधानिक करार दे दिया (देखिए, पृष्ठ १०४, १०५)। इस तरह ईस्ट इण्डिया कम्पनी को ढाई करोड़ आदमियों के ऊपर हुकूमत करने का पूर्ण अधिकार प्राप्त हो गया और उसे चार करोड़ रुपये सालाना की आमदनी होने लगी। (पूरे प्रशासन को अंग्रेज़ अफ़सरों के हाथ में दे देने का अधिकार वारेन हेस्टिंग्ज़ को १७७२ से पहले नहीं मिला था)।

१ जनवरी, १७६६ क्लाइव ने आदेश जारी किया कि उस दिन से दुगुना भत्ता बन्द कर दिया जाय ("भत्ता" वह अतिरिक्त वेतन होता था जो अंग्रेज़ अफ़सरों को उस वक़्त मिलता था जिस वक़्त वे मोर्चे पर होते थे, हाल के युद्ध के समय इसे दुगना कर दिया गया था)। इस आदेश की वजह से बंगाल के अफ़सरों ने बग़ावत कर दी; उन्होंने एक साथ अपने इस्तीफ़े भेज दिये। यह चीज़ इसलिए और भी अधिक दुर्भाग्यपूर्ण लगी कि ठीक उसी समय यह ख़बर आयी थी कि ५० हज़ार मराठों ने बिहार पर चढ़ाई कर दी है। क्लाइव ने सारे इस्तीफ़े मंज़ूर कर लिए, मुजरिमों को कोर्ट-मार्शल के लिए भेज दिया, और उनकी जगह लेने के लिए मद्रास से तमाम कैडेटों और अफ़सरों को बुलवा लिया। अंग्रेज़ सिपाही भी अपने अफ़सरों के उदाहरण का अनुकरण करना चाहते थे, किन्तु उन्हें वफ़ादार सिपाहियों ने ऐसा करने से रोक दिया। कलकत्ते के कमान्डर-इन-चीफ़, सर रौबर्ट

---

[1] वित्त विभाग।

[2] युद्ध विभाग।

[3] देशी प्रशासन के माध्यम से सरकारी हुकूमत करने की व्यवस्था।

प्लेचर को फ़ौरन डिसमिस कर दिया गया; सही या ग़लत, उसके खिलाफ़ यह अभियोग लगाया गया कि षडयंत्र के साथ उसकी भी सहानुभूति थी।

देश के अन्दर के व्यापार के सम्बन्ध में झगड़े। ईस्ट इण्डिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने [क्लाइव की अनुपस्थित में] अपने नौकरों को देश के अन्दर के नमक और सुपारी के व्यापार पर अपनी इजारेदारी क़ायम करने की अनुमति दे दी थी। फलस्वरूप, कम्पनी के सारे नौकर सट्टेबाजी में लग गये थे; रैयत को वे बुरी तरह लूट रहे थे। देशी लोगों में असंतोष था। क्लाइव ने देश के अन्दर के व्यापार को बढ़ाने के लिए एक सोसाइटी क़ायम करके नौकरों के व्यापार को ख़त्म (!?) कर दिया। इसकी वजह से कम्पनी को तो बरावर मुनाफ़ा होने लगा, किन्तु देशी लोगों को लूट कर अलग-अलग जो लोग रुपया कमाते थे वह रुक गया। दो साल बाद, इंगलैण्ड में स्थित बोर्ड के आदेश से इस सोसाइटी को ख़त्म कर दिया गया और उसकी जगह एक बाक़ायदा कमीशन क़ायम कर दिया गया।

१७६७. बीमारी की वजह से लार्ड क्लाइव का इस्तीफ़ा। इंगलैण्ड लौटकर जाने के बाद, कम्पनी के डायरेक्टरों ने उसके ऊपर बहुत जुर्म किया।

नवम्बर, १७७४, क्लाइव की आत्म-हत्या !

१७६७-६९. वर्लस्ट, कलकत्ते में [कौन्सिल का] प्रेसीडेन्ट, बंगाल का गवर्नर था; १७७२-१७८५, वारेन हेस्टिंग्ज़। वह बंगाल का एक सिविलियन अफ़सर था, उसका जन्म १७३२ में हुआ था, १७५० में एक क्लर्क के रूप में उसे कलकत्ते भेजा गया था, १६६० में कलकत्ता कौंसिल का वह मेम्बर हो गया।

१७६९. पानीपत की हार का बदला लेने के लिए पेशवा माधोराव ने ३,००,००० मराठों को उत्तर की तरफ़ रवाना कर दिया। [उन्होंने] राजपूताना को लूट-पाट कर तबाह कर दिया, जाटों को कर देने के लिए मजबूर कर दिया, और दिल्ली की ओर बढ़ गये। दिल्ली में रुहेले नजीबुद्दौला के बेटे, ज़ाबिता ख़ाँ का अच्छा शासन था; उसे वहाँ अहमद ख़ाँ ने १७५६ में तैनात किया था। उन्होंने [मराठों ने] शाहआलम के सामने प्रस्ताव रखा कि अगर वह अपने को पूरेतौर से मराठों के संरक्षण में छोड़ने को तैयार हो तो वे उसे फिर दिल्ली की गद्दी पर विजयी रूप में बैठा देंगे। शाह आलम ने इसे स्वीकार कर लिया।

२५ दिसम्बर, १७७१. उस आदमी को [शाहआलम को] पेशवा ने मुग़ल शाहंशाह के रूप में दिल्ली की गद्दी पर बैठा दिया।

१७७२. मराठो ने पूरे रुहेलखण्ड पर कब्ज़ा कर लिया, दोआब को अपने अधीन कर लिया, पूरे सूबे को तबाह कर दिया, ज़ाबिताख़ाँ को उन्होंने कैद कर लिया, और उसकी सम्पत्ति को ज़ब्त कर लिया।

१७७२ की शरद ऋतु। [मराठो ने] रुहेलो और अवध के नवाब वज़ीर शुजा-उद्दौला के साथ सन्धि कर ली, उसके यह वादा करने पर कि वह ४० लाख रुपये देगा वे वहाँ से वापिस लौट गये, इस वादे को उसने पूरा नही किया।

१७७३ मराठे अवध को लूटने पर तुले हुए थे, हाफ़िज़ रहमत के नेतृत्व में रुहेले उनके ख़िलाफ़ अवध के नवाब के साथ मिल गये। बेअक्ल शाहआलम ने मराठों पर हमला कर दिया, वह बुरी तरह हार गया, विजेताओ ने कड़ा और इलाहाबाद के जिलों को देने के लिए उसे मजबूर कर दिया, किन्तु इन जिलो मे बगाल के ब्रिटिश इलाक़े का एक भाग भी शामिल था। अंग्रेज़ "जागलू लोगो" की किस्मत अच्छी थी, क्योकि तमाम मराठो को पूना से पेशवा ने दक्षिण पर चढाई करने के लिए वापिस दक्खिन बुला लिया।

इंगलैण्ड की परिस्थिति। वहाँ पर कम्पनी के नौकरो ने जो विशाल सम्पदा बटोर ली थी उससे लोगो मे बडी ईर्षा थी, इसके अलावा, उन लोगों का ऐयाशी से भरा जीवन था। इस धन सम्पदा को देशी राजाओ को सब तरफ़ गद्दी से उतार कर, उत्पीडन और लूट-खसोट की शर्मनाक व्यवस्था क़ायम करके, बटोरा गया था— कम्पनी की पूरी व्यवस्था की ही तरह, इस सबकी भी पार्लामेन्ट के अन्दर तीव्र भर्त्सना की गयी। इस नियमावली के अन्तर्गत कि जिसके पास पाँच सौ पौंड का स्टाक होता या मालिकों के मण्डल की बैठको मे उसे एक वोट प्राप्त होता था— नये डायरेक्टरों के वार्षिक चुनाव मे जबर्दस्त रिश्वतख़ोरी और भ्रष्टाचार चलता था। एक बार, मिस्टर सुलीवन को केवल डायरेक्टर मण्डल मे चुनवाने के लिए लार्ड शैलबोर्न ने १ लाख पौंड ख़र्च किये थे। इंडिया हाउस अभिसधियो और घूसख़ोरी का बराबर अड्डा बना रहता था।

१७७१. पार्लामेन्ट ने हस्तक्षेप किया, कलकत्ता जाकर कम्पनी के काम-काज के तमाम तरीकों की जाँच करने और उनमे सुधार करने के लिए उसने तीन व्यक्तियों की एक कमेटी नियुक्त कर दी। ये तीनों—ईश्वर की ऐसी कृपा थी!— यानी वान्सिटार्ट, स्क्रैफ़्टन और कर्नल फोर्ड उत्तमाशा अन्तरीप के समीप जहाज़ के डूब जाने से मर गये।

इसके बाद ही, भारत में अंग्रेज़ों की अमलदारियों के वास्तविक स्वामित्व के प्रश्न को लेकर ईस्ट इंडिया कम्पनी और ब्रिटिश सरकार के बीच लड़ाई छिड़ गयी।

इन झगड़ों के बीच पता चला कि : कम्पनी अस्थायी तौर से दीवालिया हो गयी है; भारत में उसे १० लाख पौंड देने थे और इंगलैण्ड में १५ लाख पौंड। डायरेक्टरों ने पार्लमिन्ट से प्रार्थना की कि उन्हें सार्वजनिक ऋण उठाने की अनुमति दे दी जाय; भारतकी धन-सम्पदा अक्षय है—इसके सम्बन्ध में जो भ्रम थे उन पर घातक प्रहार हुआ !

१७७२. प्रवर समिति नियुक्त की गयी, धोखा-धड़ी, हिंसा, ज़ोर-ज़बर्दस्ती की उस पूरी व्यवस्था को, जिसके द्वारा कुछ व्यक्तियों ने अपनी तिजोरियाँ भर ली थीं, खोलकर सामने रख दिया गया। पार्लमिन्ट में बहुत गरमा-गरम बहस हुई; भारतीय मामलों के सम्बन्ध में लार्ड क्लाइव की प्रसिद्ध स्पीच हुई।

१७७३. [ईस्ट इंडिया कम्पनी के सम्बन्ध में] दोनों सदनों से पुनर्निर्माण क़ानून पास हो गया; एक वोट के लिए स्टाक (शेयर पूँजी) की जितनी मात्रा आवश्यक थी उसे ५०० पौंड से बढ़ाकर १,००० पौंड कर दिया गया। यह भी तै कर दिया गया कि मालिकों के मंडल में कोई भी मालिक चार से अधिक वोट नहीं रख सकता। कलकत्ते के गवर्नर का पुनर्नामकरण करके उसे "गवर्नर जनरल" बना दिया गया ; तमाम प्रेसीडेन्सियों पर उसकी सर्वोच्च सत्ता स्थापित कर दी गयी; उसकी नामज़दगी हर पाँचवें साल पार्लमिन्ट ख़ुद करेगी—यह तै हुआ। अदालतों का नया विधान बना (पृष्ठ १०६–११०)।—वारेन हेस्टिंग्ज़ की आंशिक रूप से स्वीकार कर ली गयी योजना के अन्तर्गत, देशी लोगों के लिए स्वयम् उनके क़ानूनों के अनुसार शासन करने की उनकी व्यवस्था क़ायम कर दी गयी (१७८० में, गवर्नर जनरल की कौंसिल को पार्लमिन्ट से नये-नये हासिल हुए देशों के लिए क़ायदे और क़ानून बनाने का अधिकार प्राप्त हो गया था। उस समय वारेन हेस्टिंग्ज के तेइसवें नियम को निर्विरोध कानून बना दिया गया। २७वें खण्ड में कहा गया कि मुसलमानों के लिए क़ुरान को क़ानून का आधार माना जाना चाहिए; और हिन्दुओं के लिए वेदों अथवा धर्मशास्त्रों को); वारेन हेस्टिंग्ज़ के तेइसवें नियम के अनुसार हर अदालत में मौलवियों (मुसलमानों के क़ानून के व्याख्याकारों) तथा

पंडितों (हिन्दू कानून के टीकाकारों) को नियुक्त किया गया और उनसे कहा गया कि वे नियमित रूप से वहाँ उपस्थित रहा करें।

(४) मद्रास और बम्बई की हालत
१७६१-१७७०

१७६१ दक्षिण के सूबेदार, सलाबतजंग को उसके भाई निज़ाम अली ने पकड़ कर क़ैद कर दिया और अपने आपको निज़ाम घोषित कर दिया। मद्रास के प्रेसीडेन्ट ने मुहम्मद अली, (कर्नाटकके) "कम्पनी के नवाब" से "अंग्रेज़ फ़ौजों" को रखने के लिए ५० लाख रुपये की माँग की। इस रुपये की उसे गारंटी दी गयी थी। मुहम्मद ने उनसे [अंग्रेज़ों से] कहा कि इस रकम को वे तंजोर को लूट कर वसूल कर लें। मद्रास के प्रेसीडेन्ट ने तंजोर के राजा को धमकी दी कि अगर वह रुपया न देगा तो उसकी अमलदारी को "ज़ब्त" कर लिया जायगा। वह राज़ी हो गया। कर्नाटक की फ़ौज के ख़र्चे को इसी तरह से पूरा किया गया था।

१७६३ "पेरिस की शान्ति-संधि" ने मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब और सलाबतजंग को दक्षिण का सूबेदार मान लिया। इस पर उसके भाई निज़ाम अली ने उसका काम तमाम कर दिया। अब सूबेदार बन जाने पर, उसने अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी और मुहम्मद अली को कर्नाटक का नवाब मानने से इन्कार कर दिया। कुछ अंग्रेज़ी रेजीमेन्टों को देखकर वह ख़ामोश हो गया। इसी समय दिल्ली के कठपुतले शाहंशाह के पास से एक फ़र्मान आया जिसमें कम्पनी के मित्र, कर्नाटक के नवाब को दक्षिण के वर्तमान अथवा किसी भविष्य के सूबेदार की अधीनता से मुक्त कर दिया गया। इस प्रकार, कर्नाटक एक पूर्णरूप से स्वतन्त्र राज्य बन गया।

१२ अगस्त, १७६५ क्लाइव ने कठपुतली बादशाह को इस बात के लिए राज़ी कर लिया कि उत्तरी सरकार के इलाक़ों को वह अंग्रेज़ों को दे दे, निज़ाम ने इस [समझौते] को मानने से इन्कार कर दिया और मद्रास के प्रेसीडेन्ट के नाम यह कहते हुए धमकी-भरा सन्देश भेजा कि ये इलाक़े फ़्रान्सीसियों को दे दिये गये थे (जो सच था); मद्रास के प्रेसीडेन्ट ने कर्नल कैलाड को हैदराबाद भेजा। वहाँ—

१२ नवम्बर, १७६६—को निज़ाम के साथ पहली सन्धि [की गयी]; इसकी शर्तों के अनुसार, उत्तरी सरकार के इलाक़े निज़ाम के हाथ से निकल कर अंग्रेज़ों के पास चले गये; तै हुआ कि कम्पनी उसे ८ लाख रुपये साल की वार्षिक सहायता देगी और ज़िले की रक्षा के लिए पैदल सेना की दो बटालियनें और ६ तोपें वहाँ तैनात करेगी।

१७६१. हैदरअली मैसूर का राजा बन गया; १७६३ में उसने बेदनूर पर, और १७६४ में दक्षिण कनारा पर कब्ज़ा कर लिया।

हैदर अली का जन्म १७०२ में हुआ था; वह फ़तह मुहम्मद नाम के एक मुग़ल अफ़सर का बेटा था; यह अफ़सर एक छोटी-सी सैनिक टुकड़ी की कमान करता हुआ पंजाब में मर गया था। मरते वक़्त अपने बेटे को वह अपने २०० सैनिकों का नायक बना गया था (मुग़ल सेना का नायक= फ़्रान्सीसी सेना का कैप्टन; अब देशी सेना में कारपोरल—जमादार—को नायक कहा जाता है)। हैदर अली अपने दो सौ आदमियों को लेकर १७५० में मैसूर की सेना में शामिल हो गया। उस समय मैसूर के राजा ने अपना सारा काम-काज अपने वज़ीर नन्दराज पर छोड़ रखा था। १७५५ में, हैदर अली को डिंडीगल के क़िले का कमाण्डर बना दिया गया; उसे यह हुक्म दिया गया था कि वह एक सेना तैयार करे और उसको रखने का ख़र्चा उठाये। यह काम उसने लूट-मार करके और पास-पड़ोस के तमाम अपराधियों और डाकुओं-लुटेरों को अपने क़िले के अन्दर बुला कर किया। वे भारी संख्या में उसके पास पहुँच गये। इसलिए, १७५७ में, जब पेशवा ने मैसूर पर हमला किया तब हैदर के पास १० हज़ार सैनिक, अनेक तोपें और काफ़ी गोला-बारूद था। इनाम के रूप में उसे एक भारी जागीर मिल गयी। मराठों को मिलाने के लिए जो रक़में दी गयी थीं उनकी वजह से मैसूर का ख़ज़ाना ख़ाली हो गया था, इसलिए तनख़ा न पाने वाले सिपाही बग़ावत कर रहे थे। इन बग़ावतों को दबाने में हैदर ने बहुत मदद दी थी। १७५९ में, हैदर को मैसूर का कमाण्डर-इन-चीफ़ (प्रधान सेनापति) बना दिया गया। उसे भेंट के रूप में और ज़मीन मिली। इस प्रकार उसके अधिकार में आधा राज्य आ गया। डर कर नन्दराज ने इस्तीफ़ा दे दिया और हैदर राजा का ज़िम्मेदार मन्त्री बन गया। खांडेराव ने उस पर हमला किया, नन्दराज को कुछ समय के लिए फिर वज़ीर बन जाने के लिए उसने राज़ी कर लिया, सेना के पास गया, खांडेराव को हरा कर उसने बन्दी बना लिया। फिर उसे उसने—दूसरे लुई

ग्यारहवें की तरह—एक तोते की भाँति लोहे के एक पिंजड़े में बन्द कर दिया और आज्ञा दी कि उसका मजाक बनाने के लिए उसे बचे-खुचे चावलों और बीजों का भोजन दिया जाय। फलस्वरूप, चिड़िया की जल्दी ही मृत्यु हो गयी, और फिर, १७६१ में, हैदर ने नन्दराज और राजा को इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि सत्ता उसको सौंप कर वे हट जायें।

१७६५ पेशवा माधोराव ने हैदर अली के खिलाफ़ रघुजी भोंसले (जो उस समय बरार का राजा था) और पेशवा के भाई राघोबा के मातहत एक सेना भेज दी। दो बार हार जाने के बाद, हैदर ने ३२ लाख रुपया और उन तमाम इलाक़ों को उन्हें देकर जो उसने मैसूर की सीमाओं के बाहर जीते थे मराठों को खरीद लिया।

१७६६ हैदर अली ने फिर हमला शुरू कर दिया, और कालीकट तथा मलबार पर क़ब्ज़ा कर लिया। पेशवा ने हैदर के विरुद्ध निज़ाम तथा अंग्रेज़ों के साथ एक जोरदार समझौता कर लिया।

१७६७ प्रथम मैसूर युद्ध। जनवरी, १७६७ में, पेशवा ने कृष्णा नदी को पार कर लिया, और उसके मराठों ने उत्तरी मैसूर को लूट लिया। भारी रकम देकर हैदर ने उसे इस बात के लिए राजी कर लिया कि अपनी फौजों को वह पुनः बुला ले।—निज़ाम हैदर से मिल गया। (नन्दराज के विरुद्ध निज़ाम का विश्वासघात, देखिए पृष्ठ ११४)। इस प्रकार, कर्नल स्मिथ के अधीन अंग्रेजों को वहाँ से हटना पड़ा। सितम्बर, १७६७ में, चंगामा में (मद्रास प्रेसीडेन्सी के दक्षिण अर्काट में) मैसूर और हैदराबाद की फौजों ने मिलकर स्मिथ पर हमला कर दिया, उसने उन्हें हरा दिया और अच्छी हालत में वापिस मद्रास लौट गया।

१७६८ हैदराबाद के नजदीक एक जगह अंग्रेज़ों ने प्रदर्शन किया, भयभीत होकर निज़ाम ने समझौता कर लिया।

निज़ाम के साथ दूसरी (अंग्रेज़ों की) शान्ति-सन्धि (यह बहुत ही कमुपपूर्ण थी और ईस्ट इंडिया कम्पनी के कारनामों की प्रतिनिधि थी!)। इसकी शर्तों के अनुसार यह फैसला हुआ कि उत्तरी सरकार के इलाक़ों के लिए निज़ाम को अंग्रेज़ "भेंट देंगे"। "गुन्टूर सरकार" के ऊपर उस समय निज़ाम के भाई बसालत जंग का अधिकार था; तै हुआ कि बसालत जंग की मृत्यु से पहले उस पर कम्पनी का कोई अधिकार नहीं होगा। यह भी तै हुआ कि अंग्रेज मराठों को चौथ (जबर्दस्ती ली जाने वाली रकम) देंगे। (यह

आस-पास के केवल छोटे राज्य इसलिए उनको देते थे जिससे कि ये लुटेरे उनकी रियासतों में घुसने की कोशिश न करें। ये लुटेरे उसी तरह लूट-पाट के काम करते थे जिस तरह स्काटलैण्ड के उच्च भूमि के क़बीले पुराने ज़माने में किया करते थे!) इस चौथ को देने के लिए—voila le couronnement de l'oeuvre[1] —अंग्रेजों ने वादा किया कि वे कर्नाटक के बालाघाट को हैदरअली से लड़कर छीन लेंगे और उसको अपने इलाके में मिलाने से उन्हें जो आमदनी होगी उससे चौथ अदा करेंगे!

१७६८. की शरद ऋतु। बम्बई से किये गये हमले के फलस्वरूप मंगलोर और ओनूर को जीत लिया गया; एक-दो महीने के बाद हैदर ने उन्हें फिर अंग्रेजों से छीन लिया। किन्तु जिस समय इस प्रकार वह पश्चिमी तट पर फँसा हुआ था, उसी समय कर्नल स्मिथ ने पूर्व की ओर से मैसूर पर चढ़ाई कर दी। उसके लगभग आधे भाग पर उसने क़ब्ज़ा कर लिया और बंगलौर के चारों तरफ़ घेरा डाल दिया। मैसूरवासियों ने उसे वहाँ से भगाते-भगाते कोलार तक खदेड़ दिया।

१७६९. कोलार में कई महीने तक अंग्रेजों ने कुछ नहीं किया। इसी बीच हैदर ने कर्नाटक, त्रिचनापल्ली, मदुरा तथा तिन्नेवली को लूटकर तबाह कर दिया; १७६९ के अन्त तक हैदर ने अपने तमाम इलाकों को फिर से प्राप्त कर लिया और अपनी सेना को और बढ़ा लिया। कर्नल स्मिथ ने उसके खिलाफ़ मैसूर पर हमला कर दिया, किन्तु बाजू से मार्च करके हैदर उससे बचकर निकल गया और अचानक मद्रास के सामने जाकर प्रकट हो गया। 'दफ़्तरी छोकरों'-के अन्दर घबड़ाहट फैल गयी।

१७६९. उन्होंने हैदर के साथ आक्रामक और सुरक्षात्मक सन्धि करली, और उनकी आज्ञा पर, कर्नल स्मिथ इस बात के लिए मजबूर हो गया कि बिना किसी प्रकार की छेड़छाड किये हुए हैदर को वह अपने पड़ाव के पास से मैसूर लौट जाने दे।

१७७०. अब हैदरअली ने अपना रुख मराठों के खिलाफ किया, पश्चिम में माधोराव ने उसको परास्त कर दिया। मुआवज़े के तौर-पर उसने हैदर से एक करोड़ रुपये की माँग की; हैदर ने देने से इनकार कर दिया; मराठे फिर आगे बढ़ने लगे। हैदर ने रात शराब पीते हुये बितायी, पश्चिमी घाट में वह फँस गया और उसकी सेना के पूरे तौर से पैर उखड़ गये

---

[1] यह उनका सबसे बड़ा काम था।

(देखिये, पृष्ठ ११६)।हैदर भाग कर श्रीरंगपट्टम् पहुँचा, वहाँ (१७६६) की सन्धि के अंतर्गत उसने अंग्रेजों से सहायता माँगी, किन्तु सर जौन लिंडसे ने, जिन्हें पार्लमेंट ने मद्रास के हालचाल को ठीक करने के लिए भेजा था, इस बात पर ज़ोर दिया कि मराठों के साथ सन्धि कर ली जाय और हैदरअली को अपनी मौत मरने के लिए छोड दिया जाय। "इस जानबूझ कर किये गये विश्वासघात" से क्रुद्ध होकर हैदरअली और उसके बेटे टीपू साहेब ने क़ुरान उठाकर क़सम खायी कि अंग्रेजों से वे हमेशा नफ़रत करेंगे और उन्हें कुचल देंगे। मराठों को ३६ लाख रुपये तुरन्त देकर और एक ऐसे इलाक़े को देकर जिससे १४ लाख रुपया सालाना की आमदनी होती थी, हैदर ने मराठों के साथ सन्धि कर ली।

. . . .

[५] वारेन हेस्टिंग्ज़ का प्रशासन, १७७२-१७८५

१३ अप्रैल, १७७२. बंगाल के नियुक्त किये गये गवर्नर की हैसियत से वारेन हेस्टिंग्ज़ ने कार्य करना शुरू कर दिया; [पार्लमिन्ट ने] कौंसिल के निम्न सदस्य नियुक्त किये · जनरल क्लेवरिंग, कर्नल मौन्सन, मिस्टर बारवेल, मिस्टर फ्रान्सिस, [हेस्टिंग्ज़ ने] राजस्व विभाग के केन्द्रीय दफ़्तर को मुर्शिदाबाद से कलकत्ता मँगवा लिया; क्लाइव (१७६५) द्वारा स्थापित की गयी अदालतों मे उसने कुछ परिवर्तन कर दिये, किन्तु आमदनी को बाँटने की उस व्यवस्था का अन्त उसने नहीं किया जो रैयतों के लिए विनाशकारी थी।

१७७३. पुनर्निर्माण क़ानून पास हो गया, इससे हेस्टिंग्ज़ पहला गवर्नर-जनरल बन गया। साथ ही साथ, तेरहवें जौर्ज तृतीय द्वारा कलकत्ते के सर्वोच्च न्यायालय की स्थापना कर दी गयी। १७७३ के अन्तिम भाग मे जज आ गये —ये लोग हिन्दू रीति-रिवाजों के सम्बन्ध में कुछ नहीं जानते थे और अपने को [भारत मे] पूरी सरकार के प्रधान समझते थे। इसी साल वह कुप्रसिद्ध रुहेला युद्ध हुआ था। अवध के नवाब, शुजाउद्दौला ने वारेन हेस्टिंग्ज़ को इत्तला दी कि रुहेले उसे ४० लाख की वह भेंट नहीं दे रहे थे जिसे देने का मराठों के-दक्षिण की ओर

लौटते समय (१७७३) उन्होंने वादा किया था; [उसने कहा] अगर अंग्रेज़ रुहेलों को हराने में उसकी मदद करेंगे तो यह रक़म वह उन्हीं को दे देगा। [कलकत्ते की] कौंसिल की सलाह पर हेस्टिंग्ज़ ने इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया और नवाब के साथ सन्धि कर ली कि युद्ध अगर सफल होगा तो कड़ा और इलाहाबाद के ज़िलों को—जो कम्पनी को बहुत मंहगे पड़ रहे थे और जिनसे उसे कोई मुनाफ़ा नहीं होता था—५० लाख रुपये में उसे ख़रीद लेने दिया जायगा। रुहेलों के बहादुर सरदार हाफ़िज़ रहमत ने अवध के नवाब से कहा कि मराठा युद्ध में उसने जितना ख़र्च किया था वह सब वह भर देगा; किन्तु अवध के नवाब ने उससे २०० लाख की विशाल धनराशि की माँग की। इतनी बड़ी रक़म देने से रुहेलों ने साफ़ इन्कार कर दिया।

२३ अप्रैल १७७४. अवध के नवाब और अंग्रेज़ों की संयुक्त सेनाओं ने रुहेलखण्ड में प्रवेश किया, लड़ाई हुई, इसमें बहादुर रुहेले लगभग नष्ट हो गये और हाफ़िज़ रहमत मारा गया। लुटेरों ने रुहेलखण्ड को बिलकुल वीरान करके छोड़ दिया।

१७७४-१७७५. कलकत्ते में उपद्रव; हेस्टिंग्ज़ के विरुद्ध कौंसिल के अधिकांश सदस्यों की (जिनमें फ्रांसिस सबसे आगे था) और जजों तथा लन्दन-स्थित [कम्पनी के] डायरेक्टरमंडल की दुरभिसंधियाँ।

१७७५. अवध के नवाब के साथ हेस्टिंग्ज़ ने जो एक रेज़ीडेन्ट (आवासी प्रतिनिधि) रखा था उसकी जगह मिस्टर ब्रिस्टोव (डायरेक्टरों द्वारा नियुक्त किये गये व्यक्ति) को भेज दिया गया। इस व्यक्ति ने माँग की—यही उसका पहला काम था—कि नवाब के ऊपर कम्पनी का जो बक़ाया था उस सबको वह १४ दिन के अन्दर चुका दे। इस दुर्नीतिपूर्ण क़दम की हेस्टिंग्ज ने भर्त्सना की। उसी ब्रिस्टोव ने अंग्रेज सैनिकों को हुक्म दे दिया कि रुहेलखण्ड को छोड़ कर वे फ़ौरन चले जांय; हेस्टिंग्ज़ ने विरोध किया; ब्रिस्टोव ने उसे वे गुप्त आदेश दिखाये जो लन्दन के डायरेक्टरों से उसे मिले थे। ऐसे आदेश केवल गवर्नर जनरल के ज़रिए ही दिये जा सकते थे; हेस्टिंग्ज़ ने लिखकर इस काम का सख़्त विरोध किया।

उसी साल, अवध के नवाब शुजाउद्दौला की मृत्यु हो गयी। उसके बेटे आसफुद्दौला ने कलकत्ता लिखकर कम्पनी की सहायता की [प्रार्थना की।] कौंसिल में फ्रान्सिस का बहुमत था, इस बहुमत के ज़रिए उसने

हेस्टिंग्ज ने मजबूर कर दिया था कि आसफुद्दौला को वह यह लिखकर भेज दे कि अवध के साथ तमाम सम्बन्ध खत्म हो गये और अब आसफ़ के उत्तराधिकारी की हैसियत से गद्दी पर बैठने की बात कम्पनी के साथ एक नयी सन्धि के आधार पर ही तै हो सकती है, इस सन्धि के अन्तर्गत भारत के सबसे पवित्र नगर बनारस को पूर्णतया [कम्पनी को] दे दिया जाना चाहिए (देखिए, टिप्पणी, पृष्ठ १२०)। विरोध करते हुए भी नवाब को इस शर्त को स्वीकार करना पड़ा।

अवध की बेगमें। उसके अन्त्येष्टि सस्कार के बाद नवाब के ज़नाने (हरम) की तलाशी ली गयी, वहाँ २० लाख पौंड की कीमत के रुपये निकले, नये नवाब ने यह कह कर उन्हें ले लिया कि वे सार्वजनिक सम्पत्ति हैं, किन्तु ब्रिस्टोव ने तै किया कि वह बेगमों को दे दी जाय जो उसे अपनी निजी विरासत कहती थी। इसकी वजह से नवाब अपने सैनिकों की बाकी तनख्वाहें न चुका सका। भयकर बग़ावत हुई, कहा जाता है कि इसमें २० हजार सैनिकों की जानें गयीं।

कलकत्ते की कौंसिल के अन्दर (क्लेवरिंग और मौन्सन् के साथ मिलकर) फ्रान्सिस ने हेस्टिंग्ज़ का मजाक बनाने और उसे खिझाने की पूरी कोशिश की, यहाँ तक कि इस काम मे मदद देने के लिए उसने देशी लोगों से भी अपील की। इगलैंड से डायरेक्टर गण उसे इस काम के लिए उत्साहित कर रहे थे, उन्होंने हेस्टिंग्ज के विरुद्ध तमाम छिछोरे अभियोगों की एक सूची तैयार कर रखी थी। एक बड़ा अभियोग उसके खिलाफ़ यह था— जिसके बारे में भारत मे किसी को ज़रा भी ख़बर नहीं थी—कि उसने ननकुमार (नन्दकुमार-अनु०) ब्राह्मण को जालसाज़ी के जुर्म में फासी पर चढ़वा दिया था। (किन्तु यह कारगुज़ारी तो सर्वोच्च न्यायालय की थी, अपनी मूर्खता की रौ मे उसने अग्रेजी कानून का इस्तेमाल किया था जिसकी वजह से एक जुर्म जो हिन्दू कानून मे मामूली गलती माना जाता था, मृत्यु-दण्ड के योग्य अपराध बन गया था)। फ्रासिस ने हेस्टिंग्ज़ पर यह कह कर आरोप लगाया कि वह नन्दकुमार को अपने रास्ते से हटा देना चाहता था क्योंकि उसने उसके (हेस्टिंग्ज़ के) ख़िलाफ़ गबन करने का अभियोग लगाया था। बाद में पता चला कि नन्दकुमार का अभियोग झूठ मूठ गढ़ लिया गया था, जिस पत्र के आधार पर उसे प्रमाणित किया गया था वह खुद जालसाज़ी से तैयार किया गया था।

१७७६. लन्दन में अपने एजेन्ट (प्रतिनिधि) के नाम भेजे गये अपने एक निजी पत्र में, **हेस्टिंग्ज़** ने इस्तीफ़ा देने के अपने इरादे का जिक्र किया; एजेन्ट ने इस बात को ज़ाहिर कर दिया; किन्तु **कर्नल मौन्सन की मृत्यु हो गयी** जिसकी वजह से **कौन्सिल में** हेस्टिंग्ज़ को **निर्णायक मत** प्राप्त हो गया; इसलिए लन्दन के अपने एजेन्ट को उसने लिखा कि वह नौकरी नहीं छोड़ेगा; किन्तु, **डायरेक्टरों** ने एलान कर दिया कि **वह तो इस्तीफ़ा दे चुका है।**

१७७७. डायरेक्टरों के इस मनमाने कार्य से उत्साहित होकर कौन्सिल के वरिष्ठ सदस्य की हैसियत से **जनरल क्लेवरिंग** ने सत्ता के अधिकार-चिन्ह पर अधिकार कर लेने की कोशिश की। हेस्टिंग्ज़ ने उसके साथ अनुचित अधिकार-हरण करने वाले की तरह व्यवहार किया, फ़ोर्ट विलियम के फाटकों को उसने बन्द करवा दिया, सर्वोच्च न्यायालय ने हेस्टिंग्ज़ के पक्ष में फ़ैसला दिया, क्लेवरिंग क्रोध से जल गया। बारवेल के प्रस्तावित त्यागपत्र के मार्ग में बाधा न पड़े, इसलिए फ्रान्सिस ने हेस्टिंग्ज़ से वादा किया कि उसके त्यागपत्र की वजह से कौन्सिल में उसका जो बहुमत हो जायेगा उसका वह बेजा इस्तेमाल नहीं करेगा; ज्योंही बारवेल हट गया त्योंही फ्रांसिस ने अपने वादे के बिलकुल ख़िलाफ़ काम किया। हेस्टिंग्ज़ ने उसके ऊपर धोखेबाज़ी का आरोप लगाया; दोनों के बीच डुएल (द्वन्द्व-युद्ध) हुआ जिसमें फ्रांसिस घायल हो गया। इसके बाद ही वह इंगलैण्ड वापिस चला गया और हेस्टिंग्ज़ को थोड़े समय के लिए शान्ति मिली; किन्तु इससे पहले——

१७७२-१७७५—के मराठों के हाल-चाल। १७७२, माधोराव पेशवा की मृत्यु हो गयी। उसका भाई **नारायण राव** उत्तराधिकारी बना, **राघोबा** ने तुरन्त उसकी हत्या कर दी।

१७७३. राघोबा ने गद्दी पर कब्ज़ा कर लिया; निज़ाम के ख़िलाफ़ उसने युद्ध छेड़ दिया। निज़ाम ने २० लाख रुपये देकर शान्ति ख़रीदी। दो राजनीतिज्ञों, **नाना फड़नवीस** तथा **सखाराम बापू** ने जनाने से लेकर एक बालक को **माधोराव द्वितीय** के नाम से गद्दी पर बैठा दिया, यह बालक माधोराव की मृत्यु के बाद पैदा हुआ उसका बच्चा समझा जाता था। रीजेन्टों (प्रतिसंरक्षकों) के रूप में राज्य की सत्ता पर इन दोनों आदमियों ने अधिकार कर लिया।

१७७४. राघोबा ने रीजेन्टों को बुरी तरह हरा दिया; किन्तु **पूना** पर चढ़ाई

करने के बजाय वह बुरहानपुर की तरफ और फिर वहाँ से गुजरात की तरफ अपने देशवासी, गायकवाड से मदद माँगने के लिए चला गया।

गुजरात के गायकवाड का राजवंश पुरखा पिलाजी गायकवाड था (जो पेशवा के प्रति वफ़ादार था)—१७३२ मे उसकी मृत्यु हो गयी थी। उसकी जगह उसका बेटा दमाजी गायकवाड गद्दी पर बैठा, उसने अपनी अमलदारी का विस्तार किया, अपने को पेशवा स उसने स्वतंत्र कर लिया, १७६८ मे उसकी मृत्यु हो गयी। मृत्यु के बाद उसके तीन बेटे थे गोविन्दराव, सायाजी और फते सिंह। गोविन्दराव और फते सिंह मे गद्दी के लिए झगडा हुआ, राघोबा ने फते सिंह का साथ दिया, इसमे बडे मराठा सरदारो, होल्कर और सिन्धिया ने भी उसका समर्थन किया।

१७७५. साजिशें करके नाना फडनवीस ने होल्कर और सिन्धिया को इस गुट से तोड लिया, वे लोग उससे अलग हो गय। अब राघोबा ने बम्बई मे स्थित अंग्रेज़ो के पास समझौते के लिए संदेश भेजे, बम्बई की सरकार ने स्वयम् उसे फसाने की नियत से राघोबा के साथ—

६ मार्च, १७७५— के दिन सूरत की संधि कर ली। इसमे तै हुआ कि: (१) पेशवा की गद्दी फिर हासिल करने म अंग्रेज राघोबा की सहायता करेंगे, (२) राघोबा व्यापारिक कामो के लिए अंग्रेजो को सालसेट (का द्वीप) और बेसिन (बम्बई के समीप का अत्युत्तम बन्दरगाह) दे देगा, और बम्बई सरकार को सालाना ३७ लाख रुपया देगा।— यह सन्धि अवैधानिक थी. १७७३ के नियामक क़ानून मे कहा गया था कि 'संधियाँ करने और कर लगाने, फौजो की भर्ती करने और उन्हे नौकर रखने के कामों के सम्बन्ध मे" खासतौर से, और नागरिक तथा सैनिक प्रशासन स सम्बन्धित तमाम मामलो के विषय मे, आमतौर से" "अधीन प्रेसीडेंसियाँ' (बम्बई तथा फोर्ट सेंट जॉर्ज की, अर्थात् मद्रास की प्रेसीडेन्सियाँ) "बंगाल के गवर्नर जनरल के मातहत रहेंगी।" इस भाँति, हेस्टिंग्ज़ तथा कलकत्ते की कौंसिल [से अधिकार प्राप्त किये] बिना बम्बई की सरकार यह सन्धि नहीं कर सकती थी, जो आर्थिक सहायता राघोबा देने वाला था वह भी बम्बई सरकार को नहीं, जैसा कि तै हुआ था, बल्कि पूरी कम्पनी को ही दी जा सकती थी। इन कारणो के आधार पर, फ्रान्सिस ने हेस्टिंग्ज़ को उक्त सन्धियो को रद्द करने के लिए मजबूर कर दिया और इस तरह अंग्रेज़ो को ज़बर्दस्त मुसीबतो मे गढे मे ढकेल दिया।

१७७५ प्रथम मराठा युद्ध। कर्नल कीटिंग को आर्डर दिया गया कि बम्बई

की अंग्रेज सेना को लेकर राघोबा के साथ वह सम्बन्ध स्थापित करे, रीजेन्ट की सेना ने उसके ऊपर माही नदी के किनारे हमला कर दिया। बड़ौदा के पास–अर्रास में उसकी पूर्ण विजय हुई; मराठा फौजें नर्बदा नदी की तरफ़ भाग गयीं; गुजरात से कूच करके फतेसिंह ने कौटिंग के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लिया। सफलता पूर्ण हो गयी।— किन्तु हेस्टिंग्ज़ को नीचा दिखाने के लिए, सूरत की सन्धि को कौन्सिल के बहुमत ने अवैध घोषित कर दिया और बम्बई सरकार के विरुद्ध देशी रजवाड़ों के नाम (!) एक गश्ती-पत्र जारी कर दिया गया ! तब पूना की गद्दी के संरक्षकों (रीजेन्टों) ने माँग की कि सालसेट और बेसिन को उन्हें वापिस दे दिया जाय। कम्पनी की तरफ़ से, कर्नल अप्टन ने ऐसा करने से [यह कहकर] इन्कार कर दिया कि क़ानून की दृष्टि में पेशवा राघोबा है। बम्बई सरकार की तरफ़ से, अप्टन ने मराठों के खिलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी। इस पर रीजेन्टों ने सन्धि का प्रस्ताव रखा; तब उसी अप्टन ने जिसने अभी-अभी राघोबा को वैधानिक पेशवा घोषित किया था, मराठा राज्य के प्रतिनिधियों की हैसियत से नाना फड़नवीस तथा सखाराम बापू के साथ सन्धि कर ली।

१ मार्च, १७७६—पुरन्दर (पूना के समीप) **की सन्धि हुई** : इस शर्त पर कि सालसेट उनके पास रहेगा और अन्य उन तमाम इलाक़ों को जो पहले मराठों के थे वे छोड़ देंगे; ब्रिटिश फौजें मोर्चे से हट जायेंगी; यह भी तै हुआ कि अंग्रेज़ों को, जब तक वे माधोराव द्वितीय को पेशवा मानते रहेंगे, १२ लाख रुपया सालाना तथा भड़ौच [ज़िले की] आमदनी मिलती रहेगी। राघोबा को धता बता दी गयी, उससे कहा गया कि अगर वह गोदावरी के उस पार बना रहेगा तो उसे मराठों से ३ लाख रुपया साल मिलता रहेगा। किन्तु बम्बई सरकार ने सूरत सन्धि पर ज़ोर दिया, पुरन्दर की सन्धि को उसने तोड़ दिया; राघोबा को सूरत में उसने पनाह दे दी और भड़ौच पर चढ़ाई कर दी। गद्दी के प्रतिसंरक्षकों ने युद्ध का एलान कर दिया; अंग्रेज़ों ने बम्बई में राघोबा का प्रदर्शन किया। इसके थोड़े ही समय बाद बम्बई सरकार को देश से (इंगलैण्ड से-अनु०) डायरेक्टर मण्डल का सन्देश मिला जिसमें पुरन्दर की सन्धि को नामन्ज़ूर कर दिया गया था और सूरत की सन्धि को स्वीकृति दे दी गयी थी।

१७७८. माड़ोबा फड़नवीस ने—रीजेंट नाना फड़नवीस के चचेरे भाई ने — सखाराम बापू (जो गुप-चुप ढंग से राघोबा के पक्ष में षडयन्त्र कर रहा था) के साथ समझौता करके, होल्कर के साथ मिलकर, राज दरबार में

अपना एक दल बना लिया। इस दल ने बम्बई सरकार से अपील की, उसने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और कलकत्ते चिट्ठी लिखी। हेस्टिंग्ज ने मञ्जूरी दे दी क्योंकि नाना फड़नवीस फ्रांसीसियों के पक्ष में था और क्योंकि सूरत की संधि के अन्तर्गत कम्पनी राघोबा के अधिकार को स्वीकार करती थी। — नाना फड़नवीस लौटकर पुरन्दर चला गया, उसने होल्कर को घूस देकर उक्त गुट से अलग करा दिया, माधोराव की ओर से उसने एक सेना इकट्ठा की, माडोबा और सखाराम को हरा दिया। माडोबा को उसने मार दिया और सखाराम को पूना में, जहाँ विजय के बाद वह स्वयम् चला गया था, उसने कैद कर लिया। बम्बई सरकार ने उसके विरुद्ध युद्ध [की घोषणा] कर दी। इसका आधार राघोबा के साथ उसकी सन्धि थी।

१७७६ द्वितीय मराठा अभियान। कर्नल एगरटन को पूना पर हमला करने के लिए भेजा गया, किन्तु असैनिक विभाग के कर्मचारियों (सिविलियनों) ने (जिनका प्रधान जनरल कार्नक था) इस काम में बाधा डाली। पूना के सामने पहुँचने पर, सिविल कमिश्नर डर गये और राघोबा तथा कर्नल एगरटन की आज्ञा के विरुद्ध, उन्होंने फौज को वापिस लौटने का हुक्म दे दिया। रीजेन्ट की घुड़सवार सेना ने तुरन्त उन पर हमला कर दिया, बहादुर कैप्टन हार्टले ने लड़कर उसे रोकने की कोशिश की, किन्तु आगे के सिविलियन अधिकारी 'सिर पर पैर रख कर भाग खड़े हुए"। रात में उनकी सेना ने बड़गाँव में पड़ाव डाला, उनके पड़ाव पर बम्बारी हुई, भयभीत कमिश्नरों ने सिन्धिया से, जो दुश्मन फौजों का नेतृत्व कर रहा था, हाथ जोड़कर प्रार्थना की कि वह उनकी जिन्दगियाँ बख्श दे, और उन्हें छोड़ दे, यानी उन्हें पीछे भाग जाने दे।

जनवरी १७७९. बड़गाँव का ठहराव, बम्बई सेना को वापिस चला जाने दिया गया, राघोबा को उस सेना ने मराठों के हवाले कर दिया (इस चाल को समझ कर कि कमिश्नर लोग इसी तरह की कायरता दिखाएँगे राघोबा ने अपने आप सिन्धिया के सामने आत्म समर्पण कर दिया था), और पिछले ५ वर्षों में जितने इलाके पर उसने कब्जा किया था उसको छोड़ दिया। इस समाचार से सर्वोच्च सरकार आग-बबूला हो उठी, उसने नयी सन्धि का प्रस्ताव रखा। इसी दर्म्यान, राघोबा सूरत भाग गया जहाँ कि कर्नल गौडर्ड सेना का प्रधान था। नाना फड़नवीस ने माँग की कि राघोबा को उसके हवाले कर दिया जाय, गौडर्ड ने इन्कार कर दिया, नया युद्ध।

१७७९. तीसरा अभियान। गौडर्ड गुजरात [गया], वहाँ फतेसिंह और राघोबा आकर उससे मिल गये, [उन्होंने] अहमदाबाद पर अधिकार कर लिया; वहाँ होल्कर और सिंधिया के नेतृत्व में मराठों ने उनका विरोध किया, वे पराजित हुए और वर्षा के दिनों में उन्होंने नर्वदा के किनारे पड़ाव डाल दिये।

१७८०. हेस्टिंग्ज़ ने आर्डर दिया कि आगरा के समीप सिंधिया की अमलदारियों के ऊपर हमला करने के लिए मेजर पौफम के नेतृत्व में एक छोटी-सी सेना तैयार की जाय। पौफम ने ग्वालियर पर, उसके क़िले पर—जो कि लगभग एक सीधी खड़ी चट्टान के ऊपर अत्यन्त ऊँचाई पर स्थित था—अधिकार कर लिया। फिर पौफम की छोटी-सी सैन्य शक्ति को और बड़ा बनाया गया और फिर जनरल कार्नक की कमान में उसने मराठों की छावनी पर रात में सफलतापूर्वक हमला किया। अपने तमाम भंडारों को छोड़कर, सिन्धिया भाग गया।

१७८० का उत्तरार्ध। भारत से अंग्रेज़ों को निकाल भगाने के लिए मराठों और मैसूर वालों का महासंघ। तै हुआ कि होल्कर, सिंधिया तथा पेशवा (अर्थात्, वास्तव में, नाना फड़नवीस) बम्बई पर हमला करेंगे, हैदरअली मद्रास पर चढ़ाई करेगा और नागपुर (बरार) का राजा मुधोजी भोंसले कलकत्ते पर आक्रमण करेगा। इसका नतीजा (देखिए, पृष्ठ १२८-१२९)—

१७ मई, १७८२—सालबाई (ग्वालियर में) की सन्धि के रूप में सामने आया : इसमें तै हुआ कि अंग्रेज़ उस तमाम इलाके को जिस पर उन्होंने पुरन्दर की सन्धि (१७७६) के बाद से क़ब्ज़ा किया था वापिस दे देंगे, राघोबा लड़ाई की तमाम कार्रवाइयों को बन्द कर देगा, उसे सालाना तीन लाख रुपया दिया जायगा और अपने रहने के लिए वह स्वयम् कोई स्थान चुन लेगा; हैदरअली ६ महीने के अंदर तमाम अंग्रेज़ बन्दियों को रिहा कर देगा और जिन अमलदारियों को उसने जीता था उन्हें मुक्त कर देगा; अगर वह ऐसा नहीं करेगा तो मराठे उस पर आक्रमण करेंगे।

हैदरअली। १७७० में, उसने घूस देकर मराठों को मिला लिया था; उसके बाद वह शान्ति-पूर्वक रहता रहा था। १७७२ में, राघोबा द्वारा नारायण राव की हत्या कर देने तथा उसके बाद होने वाले उपद्रवों के बाद, उसने कुर्ग को अनावश्यक निर्दयता के साथ अपने अधीन कर लिया; १७७४ तक उसने उन तमाम ज़िलों को फिर से जीत लिया जिन्हें मराठों ने उससे ज़बर्दस्ती छीन लिया था। १७७५ में, बसालतजंग (निज़ाम के

भाई) से उसने बिलारी को छीन लिया और १७७६ मे उसने (धारवार के समीप, बम्बई प्रेसीडेन्सी मे) मराठा सरदार, मुरारी राव के राज्य सवानूर को तहस-नहस कर दिया। पूना के रीजेन्टों ने (बालक राजा के प्रतिसरक्षकों ने) उसे कुचलने की व्यर्थ चेष्टा की।

१७७८ मैसूर राज्य का कृष्णा नदी तक विस्तार कर लिया गया।

१७७९ इगलैण्ड और फ्रान्स के बीच युद्ध छिड गया, हैदर ने घोषित किया कि वह फ्रान्स की तरफ है। अग्रेजों ने लडकर फ्रान्सीसियों से पांडिचेरी तथा माही को जीत लिया।

१७८० हैदरअली महा-सघ मे शामिल हो गया, उसने मद्रास पर हमला करने की तैयारी शुरू कर दी।

१७८०. द्वितीय मैसूर युद्ध। २० जुलाई को, हैदर ने चगामा के दर्रे से कर्नाटक पर चढ़ाई कर दी, उसे उसने नष्ट-भ्रष्ट कर दिया। भयकर अत्याचार किये, जलते हुए गाँवों का धुआ मद्रास तक से दिखलाई देता था। — अग्रेज सेना मे केवल आठ हजार सैनिक थे, तीन डिवीज़नो मे बँटे हुए ये एक दूसरे से काफी दूर-दूर के फासले पर थे। कर्नल बेली ने जब कमाण्डर इन-चीफ सर हेक्टर मुनरो के साथ गुन्टूर मे मिलने की कोशिश की तो उस पर मराठो की एक बडी घुडसवार सेना लेकर टीपू साहेब ने रास्ते मे ही हमला कर दिया, बेली न बडी मुश्किल से उसे पीछे भगाया और आगे बढता गया, किन्तु तभी उसके और मुनरो के बीच हैदर घुस आया—

६ सितम्बर, १७८०—के दिन उसने बेली की फौज को घेर लिया और पोलीलोर के छोटे-से गाँव के समीप उसके क़रीब-क़रीब एक-एक सैनिक को उसने मौत के घाट उतार दिया।—१७८० के आख़िरी भाग में, हैदर ने अर्काट पर कब्ज़ा कर लिया।

जनवरी, १७८१ सहायक कुमुक लेकर समुद्र के रास्ते कलकत्ते से सर आयर कूट वहाँ आ गया, कुड्डलूर के नजदीक पोर्टोनोवो पर उसने हैदर पर हमला किया, उसे ज़बदस्त जीत हासिल हुई।

जुलाई, १७८१ कर्नल पीयर्स के नेतृत्व में बगाल का सैन्य दल नागपुर के राजा की मदद से, उडीसा के अन्दर से कूच करता हुआ, पुलीकट पहुँच गया, वहाँ वह कूट के साथ मिल गया, और उन्होंने मिलकर पोलीलोर के छोटे-से गाँव के समीप (पुलीकट के पास) हैदर के साथ युद्ध किया जो अनिर्णायक रहा।

२७ सितम्बर। शालिगढ़ के पास (मद्रास प्रेसीडेन्सी के अंदर, उत्तरी अर्काट में) कूट की निर्णायिक विजय हुई, बाद में वर्षा ऋतु में वह मद्रास की छावनी में चला गया।

१७८१ का आख़िरी भाग। (सर टौमस रमबोल्ड के स्थान पर) लार्ड मेकार्टने मद्रास का प्रेसीडेन्ट बना। उसका पहला काम था नेगापट्टम के डच क़िले पर चढ़ाई करके उसे ज़मींदोज़ करना और वहां पर स्थित डच फैक्टरियों को नष्ट करना; यह काम उसने डायरेक्टरों के, जो दक्षिण में डचों के बढ़ते हुए व्यापार से जलते थे, गुप्त आदेशों पर किया था। तेलीचेरी में भी अंग्रेज़ों को थोड़ी-सी सफलता मिली। मलबार तट पर आक्रमण करने की गरज़ से हैदरअली ने कर्नाटक पर चढ़ाई करने की कोशिशें बन्द कर दीं।

१७८२. फ्रान्सीसी बेड़े की मुलाक़ात एक स्थान पर, जो पोर्टोनोवो से अधिक दूर नहीं था, अंग्रेज़ों के एक बेड़े से हो गयी। अंग्रेज़ों का यह बेड़ा लंका में त्रिन्कोमालीके डच बन्दरगाह को जीत कर लौट रहा था। सामुद्रिक लड़ाई में कोई फ़ैसला न हो सका। एक छोटी-सी सैन्य-शक्ति लेकर फ्रान्सीसी पांडिचेरी पहुंच गये और हैदरअली के साथ मिल गये।

जूलाई, १७८२. दो नौसैनिक लड़ाइयां हुई। जिस स्थान पर ये लड़ाइयां हुई वह नेगापट्टम से बहुत दूर नहीं था। दोनों में ही कोई फ़ैसला न हो सका।—एक फ्रान्सीसी सैन्यदल प्वाइंट दगाल (लंका) में उतरा; वहां से मार्च करके वह त्रिन्कोमाली गया, मगर पर फिर उसने क़ब्ज़ा कर लिया, और वहां के (अंग्रेज़) गेरीसन को नष्ट कर दिया। लंका के पास एडमिरल ह्यूस ने फ्रांस के जहाजी बेड़े को हराने की कोशिश की जो बेकार हुई, ह्यूस (बेड़े को लेकर) बम्बई चला गया। फ्रान्सीसी समुद्र के मालिक हो गये।

१७८२ के आख़िरी दिनों में, टीपू साहेब ने पालघाट (कोयम्बटूर के समीप) स्थित अंग्रेज़ों की पक्की छावनी पर हमला कर दिया; उस पर क़ब्ज़ा करने की पहली कोशिश में वह फेल हो गया तो उसने छावनी के रास्ते काट दिये और ७ दिसम्बर तक वहीं पड़ा रहा; तभी उसे हैदरअली की अचानक मृत्यु की ख़बर मिली और वह अपनी तमाम सेनाओं को लेकर मैसूर लौट गया।

६ दिसम्बर, १७८२. हैदरअली की मृत्यु, वह तब ८० वर्ष का था। उसके

मंत्री, प्रसिद्ध राजस्वविद् पूर्णिया ने टीपू के आ जाने तक उसकी मृत्यु के समाचार को छिपाये रखा।

. . . .

दिसम्बर, १७८२ टीपू साहेब का राज्याभिषेक, [उसको] एक लाख आदमियों की एक बढ़िया फौज और रुपये पैसे तथा हीरे-जवाहरात की विशाल सम्पदा मिली।

१ मार्च, १७८३ टीपू, जिसने पहले अपनी ताक़त को चुपचाप सुदृढ़ बना लिया था, मंगलौर के खिलाफ़ कारवाई करने के लिए पश्चिमी तट की तरफ़ गया।

१७८३ जून के आरम्भ में। बुसी जो अब उत्तमाशा अन्तरीप के पूर्व स्थित तमाम फ्रान्सीसी सेनाओं का सेनाध्यक्ष था, एक फ्रांसीसी सैन्यदल लेकर कुड्डलूर पहुँच गया, वहाँ उसने देखा कि टीपू पश्चिमी तट की तरफ़ गया हुआ था और हैदरअली मर चुका था, उस पर फ़ौरन (सर आयरकूट के उत्तर प्राधिकारी) जनरल स्टुअर्ट ने हमला कर दिया।

७ जून, १७८३ अंग्रेजों ने कुड्डलूर की एक चौकी पर अधिकार कर लिया, इसमें उन्हें भारी नुकसान उठाना पड़ा।—उसी दिन एक स्थान पर जो कुड्डलूर से दूर नहीं था, नौ सैनिक टक्कर हो गई जिसमें एडमिरल ह्यूग्स हार गया और अपनी शक्ति को फिर से संगठित करने के लिए मद्रास वापिस चला गया, फ्रांसीसी विजेता-सूफ्रां ने २४०० नाविकों और मल्लाहों को तट पर उतार दिया, इनका एक ब्रिगेड बन गया जो बुसी की सेना के साथ जोड़ दिया गया।

१८ जून फ्रान्सीसियों ने तेजी से हमला किया (सार्जेन्ट वर्नाडोट, जो बाद में स्वीडन का बादशाह बना था, मौजूद था) हमले को असफल कर दिया गया, तभी इंगलैण्ड और फ्रांस के बीच शान्ति हो जाने की खबर आयी, जनरल स्टुअर्ट उसे सुनकर मद्रास लौट गया, बुसी ने अपनी स्थिति और मजबूत कर ली। इसी दरम्यान बम्बई सरकार ने एक सैन्य दल भेजा था जिसने बदनूर तथा मलबार तट के अनेक अन्य स्थानों पर कब्ज़ा कर लिया था। टीपू फिर उनकी तरफ़ बढ़ा, बेदनूर पर उसने पुनः अधिकार कर लिया, गैरीसन को (रक्षक सैन्यदल को) उसने बन्दी बना लिया, और फिर १ लाख सैनिकों तथा सौ तोपों को लेकर उसने मंगलौर (१८०० सैनिक) पर घेरा डाल दिया, नौ महीने तक

डटे रहने के बाद उसे आत्म-समर्पण करना पड़ा।—इसी समय कर्नल फुलर्टन ने मद्रास से मैसूर पर चढ़ाई कर दी, कोयम्बटूर पर कब्जा कर लिया, और जब वह श्रीरंगपट्टम की ओर जा रहा था तभी लार्ड मेकार्टने ने उसे वापिस बुला लिया। लार्ड मेकार्टने मूर्खतावश (देखिये, पृष्ठ १३३) शान्ति की बातचीत शुरू कर दी।—पहले प्रस्तावों में *यह कहा गया था कि एक दूसरे के विरुद्ध लड़ाई की कार्रवाइयाँ* बन्द कर दी जायें। मेकार्टने ने अंग्रेज़ी फौजों को वापिस बुला लिया; टीपू ने आस-पास के प्रदेश की लूट-पाट को जारी रखा; कमिश्नरों के साथ [उसने] बदसलूकी की और उनसे कहा कि जब तक उसके आदेशानुसार मंगलौर की सन्धि पर वे दस्तखत न कर दें तब तक वहाँ से न जायें। मंगलौर की सन्धि का आधार यह था कि उन इलाकों को वापिस कर दिया जाय जो उन्होंने एक दूसरे से जीते थे।

१७७०-१७७५. मद्रास के प्रेसीडेन्ट मिस्टर विन्च बने। तंजोर का घृणित काण्ड[1] (पृष्ठ-१३४)।

१७७५-१७७७. लार्ड पिगोट मद्रास के प्रेसीडेण्ट थे। इस "बूढ़े" आदमी ने (डाइरेक्टरों के आर्डर से) न सिर्फ तंजौर के राजा को उसका वह राज्य फिर दे दिया जिसे (कर्नाटक के) "कम्पनी के नवाब", मुहम्मदअली ने १७७६ में उससे छीन लिया था, बल्कि उसने सार्वजनिक सेवा की विभिन्न शाखाओं में चलनेवाले भ्रष्टाचार तथा धनापहरण को भी रोकने की जुर्रत की; फिर, खास तौर से, उसने एक किसी पालबेनफील्ड के खिलाफ़ जाँच करने की गल्ती की क्योंकि उस "कुत्ते" ने तंजोर की आमदनी के एक भाग को पाने का अधिकारी होने का झूठा दावा किया था। कौन्सिल ने, जो प्रेसीडेन्ट के हमेशा खिलाफ़ रहती थी, उसकी बुरी तरह बेइज़्ज़ती कर दी; उसने उस संस्था के दो सदस्यों को पदच्युत कर दिया, बहुमत ख़ामोश हो गया। पिगोट को जेल में डाल दिया गया, वहाँ तब तक सख़्ती से बन्द करके उसको

---

[1] विन्च के प्रशासन काल में तंजोर पर अधिकार कर लिया गया था और उसे बुरी तरह से लूटा गया था।—नाम के लिए यह काण्ड कम्पनी के सैनिकों की मदद से कर्नाटक के नवाब ने किया था, लेकिन वास्तव में उसे कम्पनी और अंग्रेज सूदखोरों ने ही किया था। लूट के माल का सबसे बड़ा हिस्सा नवाब के निजी "लेनदारों" के हाथों में गया था। इस चीज पर कम्पनी के लन्दन-स्थित डायरेक्टर-मण्डल ने बहुत आपत्ति की थी।

रखा गया जब तक कि उसकी मृत्यु नहीं हो गई! इसके लिए—प्रेसीडेंट की हत्या करने के लिए—किसी को सज़ा नहीं दी गयी!

१७७७–१७८० सर टौमस रमबोल्ड मद्रास के प्रेसीडेन्ट बने। उनके खिलाफ़ षडयन्त्र रचे गये (पृष्ठ १३५ १३८), उनकी जगह पर लार्ड मेकार्टने की नियुक्ति हुई व १७८१ के आख़िरी दिनों म आये।

१७८३–१७८५ वारेन हेस्टिंग्ज के प्रशासन का अन्त। चारों तरफ से उत्पीडित होकर, हेस्टिंग्ज ने ज़बर्दस्त क्रोध का प्रदर्शन किया। सर्वोच्च *न्यायालय का रुख बहुत ख़राब था, वह अपने को प्रशासन के तमाम* विभागा का सर्वेसर्वा समझता था, उसने यह दिखाने की कोशिश की कि उसका काम सरकार के कृत्यों के "दोषों को देखना" था। सरकार ने कानून बनाकर यह तै कर दिया था कि ज़मींदारों के साथ केवल मालगुज़ारी वसूल करने वालों जैसा व्यवहार किया जाय, अगर वे रुपया न चुकायें तो उन्हें गिरफ़्तार किया जा सकता था और सज़ा दी जा सकती थी, अंग्रेज जज इस क़ानून पर अत्यन्त उग्रता से अमल करते थे, *शक्तिशाली, तथाकथित ज़मींदार राजाओं को अक्सर वे गिरफ्तार* करवाकर जेलों मे डलवा देते थे और थोडे-से भी गबन के लिए उनके साथ साधारण अपराधियों जैसा व्यवहार करते थे। इस तरह ज़मींदारो की प्रतिष्ठा मिट्टी म मिला दी गयी थी, रैयत अक्सर उन्हें लगान देने से इनकार कर देती थी, फलस्वरूप, ज़मींदार लोग रैयत के ऊपर और भी अधिक मनमाने ढग से दमन करते थे और उससे ज़बरदस्ती रुपया वसूलते थे!

जौर्ज प्रथम (१७२६) तथा जौर्ज तृतीय (१७७३) की उस सनद के अनुसार, जिसम सर्वोच्च न्यायालय की नियुक्ति की गयी थी, अब भारत में इंगलैण्ड का सम्पूर्ण सामान्य क़ानून लागू कर दिया गया था, कुंद खोपडीवाले अंग्रेज उस पर सख़्ती से अमल करते थे, और इसका नतीजा यह था कि देशी लोगों को (देखिए, पृष्ठ १३९) ऐसे जुर्मों के लिए—जो उनके *अपने क़ानून के अन्तर्गत कुछ भी महत्व नहीं रखते थे—फाँसी पर लटका दिया जाता था!*

कोसीजुरा कांड इसलिए हुआ था कि अंग्रेज़ों की न्याय प्रणाली के अनुसार अभियुक्तों से उनके मुक़दमे के लिये ज़मानत माँगी गयी थी, इस केस मे कोसीजुरा के राजा (अर्थात् ज़मींदार) के खिलाफ़ मालगुज़ारी का एक मुक़दमा सर्वोच्च न्यायालय म (पृष्ठ १३९-१४०) लाया गया था (इस

केस में कुर्क अमीन राजा के जनाने के भीतरी कक्ष में घुस गये थे और, अदालत में उनकी हाजिरी की जमानत के रूप में, उनके गृह देवता को उठा ले गये थे)। हेस्टिंग्ज़ ने चूँकि कोसीजुरा को बचाने की कोशिश की और यह आदेश जारी कर दिया कि देशी लोगों को दीवानी के मामलों में — अगर वे ख़ुद उसके न्याय को अपनी मर्जी से न चाहें— सर्वोच्च न्यायालय के मातहत नहीं मानना चाहिए। इसलिए सर्वोच्च न्यायालय ने कौंसिल और गवर्नर जनरल को "अदालत का अपमान करने के जुर्म" में अपने सामने तलब कर लिया। हेस्टिंग्ज़ ने उसकी ज़रा भर भी परवाह न की।

मालगुज़ारी के प्रशासन को नये ढंग से संगठित किया गया और "वारेन हेस्टिंग्ज़ की संहिता" का निर्माण हुआ (पृष्ठ १४०)। (अन्य चीज़ों को करने के साथ-साथ, हेस्टिंग्ज़ ने मालगुज़ारी के काम को नागरिक प्रशासन के काम से अलग कर दिया, पहले काम को "अस्थायी" की संज्ञा उसने दी और दूसरे को, "जिला" अदालतों की। इन दोनों के ऊपर, अपील की अदालत के रूप में, "सदर दीवानी अदालत"[1] की स्थापना उसने कर दी। इस अदालत के लिए उसने सर एलीजा इम्पी को चीफ़ जस्टिस (प्रधान न्यायाधीश) नियुक्त किया।)

१७८४. चेतसिंह का मुक़दमा, हेस्टिंग्ज़ ने उसे बनारस का राजा बना दिया था (१४०–१४१।)

फ़ैजुल्ला खाँ का मुक़दमा। अवध के नवाब आसफ़ुद्दौला के साथ एक सन्धि की गयी थी जिसके अन्तर्गत अवध में स्थित अंग्रेज़ फौज का ख़र्च वह भरता था; [इस फौज की] संख्या कम कर दी गयी और आपस में तै कर लिया गया कि किसके क्या अधिकार होंगे; सन्धि की तीसरी धारा में हाफ़िज़ रहमत (रुहेले) के भतीजे फ़ैजुल्ला खाँ का उल्लेख था; यह तै हुआ था कि जब वह रुहेलों का सरदार बन जायगा तब कम्पनी की सेना की संख्या मे वृद्धि करने के लिए वह तीन हज़ार आदमी जमा करेगा; पिछले कुछ दिनों से हेस्टिंग्ज उससे माँग कर रहा था कि वह पाँच हज़ार आदमी दे, फ़ैज़ुल्ला खाँ ने साफ़-साफ़ कह दिया कि इतने आदमी वह नहीं दे सकता। अवध के साथ अपनी सन्धि की धारा तीन में हेस्टिंग्ज़ ने कहा कि चूँकि रुहेलखण्ड फ़ैज़ुल्ला के "सामन्ती स्वामी," अवध

[1] दीवानी के मुक़दमों की अपील का सर्वोच्च न्यायालय।

के नवाब की केवल जागीर थी, इसलिए उसे [अवध के नवाब को] ले लेना चाहिए, बाद मे १५ लाख रुपये देकर उसने [फ़ैजुल्ला खाँ ने] *उसे वापिस प्राप्त कर लिया, इसके बाद हेस्टिंग्ज़ कलकत्ता लौट गया।*

१७८५. कलकत्ते के अपने पद से त्याग पत्र देकर [हेस्टिंग्ज] इगलैण्ड [वापिस लौट गया]। इगलैण्ड मे उसकी मुसीबतें, पिट उसका दुश्मन; इसलिए बर्क (पिट के आदमी) ने उसके खिलाफ जोरदार भाषण दिये (देखिए, पृष्ठ १४२-१४३) । १८१८ मे (८६ वर्ष की अवस्था मे) हेस्टिंग्ज की मृत्यु हो गयी। (दूसरे राज्यों को हड़पने की नीति के अलावा, हेस्टिंग्ज़ का एक और बड़ा अपराध, जिसे पिट नापसन्द करता था, यह *था कि भारत मे स्थित कम्पनी के नौकरों की तनख़ाहें* को उसने इस लिए बढ़ा दिया था जिससे कि उन "नीच लोगो" की लूट-खसोट को बन्द कर दिया जाय, जो अपनी तनखा के ज़रिए नही, बल्कि हिन्दुओ से ज़बर्दस्ती वसूल किये गये रुपयों के द्वारा अपनी तिजोरियाँ भर लेना चाहते थे।)

. . . .

[ब्रिटेन में ईस्ट इंडिया कम्पनी के हाल-चाल]

मार्च, १७८० ईस्ट इंडिया कम्पनी के एकान्तिक विशेषाधिकार, जिनकी मियाद को हर तीन वर्ष बाद बढाया जाता था, समाप्त हो गये, पार्लामेन्ट ने कानून बना कर उनकी अवधि को १७८३ तक बढ़ा दिया, सरकार द्वारा दिये गये कर्ज़ों के एवज मे—बकाये को आंशिक रूप से चुकता करने के लिए—कम्पनी को ४ लाख पौंड सार्वजनिक कोष मे देने थे। हैदर अली के साथ किये गये युद्ध की पूरी जाँच करने के लिए एक गुप्त (पार्लामेन्टरी) कमेटी नियुक्त कर दी गयी, एक दूसरी कमेटी इस बात के लिए बना दी गयी कि कलकत्ते की सर्वोच्च कौंसिल के हिंसापूर्ण कार्यों के विरुद्ध देशी बगालियो ने जो अर्ज़ियाँ दी थी उनकी वह जाँच पड़ताल करे।

६ अप्रैल, १७८२ ईस्ट इंडिया डायरेक्टर मंडल के सदस्य, मिस्टर हेनरी डुडांस ने भारत मे जिस तरह काम हो रहा था उसकी अत्यन्त उग्रता से भर्त्सना की (इस गदे आदमी पर, जो बाद मे, १८०६ मे, मेलविल का अर्ल हो गया था, भ्रष्टाचार के आरोप पर पार्लामेन्ट मे मुकदमा चलाया गया था, पहले वह नार्थ और फौक्स का आदमी था, बाद मे

वह पिट का आदमी हो गया था); मई १७८२ में उसने प्रस्ताव रखा कि वारेन हेस्टिंग्ज को वापिस बुला लिया जाय। पार्लामेन्ट ने इस प्रस्ताव को पास कर दिया, किन्तु मालिकों के मण्डल ने अपनी एक आम सभा करके डायरेक्टरों को वापिस बुलाने के लिए आर्डर भेजने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया।

१७८२. लार्ड नौर्थ का मंत्रिमंडल गिर गया था; उसके बाद सैलबोर्न का मंत्रिमंडल क़ायम हुआ था; अप्रैल, १७८३ में फौक्स और नौर्थ के संयुक्त मंत्रिमण्डल ने इसे भी गिरा दिया।

१७८३. (नौर्थ और फौक्स का संयुक्त मंत्रिमण्डल।) फौक्स का "इंडिया बिल" पेश हुआ। कम्पनी ने एक और कर्ज़े के लिए अर्ज़ी दी (पहला ऋण पार्लामेंट ने १७७२ में उसे दिया था); दरिद्रता के इस दूसरे एलान को लेकर देश में भारी शोर उठ खड़ा हुआ। अपने बिल में, फौक्स ने निम्न प्रस्ताव रखा था : कम्पनी के पट्टे को ४ साल के लिए निलम्बित कर दिया जाय; इस बीच भारत की सरकार का काम पार्लामेन्ट द्वारा नामज़द किये गये सात कमिश्नर चलायें; व्यापार सम्बन्धी तमाम कामों की देख भाल मालिक मंडल द्वारा नामज़द किये गये, ६ सहायक कमिश्नर करें; ज़मींदारों को पुश्तैनी भूस्वामी मान लिया जाय; युद्ध और सन्धियों से सम्बंध रखने वाले तमाम प्रश्नों के विषय में भारत सरकार इंगलैण्ड में स्थित एक नियंत्रण मंडल के अधीन रहे। (यह आख़िरी [व्यवस्था] बाद में पिट के बिल में शामिल कर ली गयी थी। जब तक भारत में लार्ड वेलेज़ली का प्रशासन था, उसने इस धारा की रत्ती भर भी परवाह नहीं की थी।) फौक्स का बिल नीचे के सदन में पास हो गया; जौर्ज तृतीय ने लार्ड लोगों को आर्डर दिया कि वे इस बिल को रद्द कर दें, इसके बाद—

जनवरी, १७८४—जौर्ज तृतीय ने फौक्स और उसके सहयोगियों को डिसमिस कर दिया; नये मंत्रिमंडल का प्रधान पिट बन गया; कम्पनी के प्रति उसका रुख मित्रतापूर्ण था और उसके व्यापार में उसने तरह-तरह से मदद दी।

१३ अगस्त, १७८४—पिट का "इण्डिया बिल"; राजस्व सम्बंधी मामलों का नियंत्रण करने के लिए प्रिवी कौन्सिल के छै सदस्यों को एक कमेटी कमिश्नर मंडल के रूप में काम करने के लिए नियुक्त कर दी गयी और इस मंडल के आदेशों को प्राप्त करके उन्हें कार्यान्वित करने के लिए तीन डायरेक्टरों की गुप्त कार्यो को एक समिति बना दी गयी। मालिकों के

मंडल के हाथ में सरदार सम्बन्धी कोई अधिकार नहीं रह गये। तै हो गया कि युद्ध सम्बन्धी तमाम काम-काज तथा सन्धियाँ कमिश्नर मंडल के आदेशों के अनुसार और उसी की आज्ञा से की जायेंगी। राज्यों को हड़प लेने की नीति खत्म कर दी जायगी। भारत सरकार के मातहत काम करने वाले प्रत्येक अफ़सर को इंगलैण्ड लौटने पर अपनी सम्पत्ति की पूरी सूचना देनी पड़ेगी और उसमें उसे यह भी बताना पड़ेगा कि उस सम्पत्ति को उसने किस प्रकार प्राप्त किया था। विशाल बहुमत से १७८४ में यह बिल पास हो गया, इसके बाद से कमिश्नर मंडल का अध्यक्ष ही भारत का निरंकुश गवर्नर बन गया। इस पद पर सबसे पहले धूर्त डुन्डास (मेलविल) की नियुक्ति हुई थी।

इस धूर्त डुन्डास के सामने जो पहला मामला पेश हुआ वह अर्काट के नवाब (उर्फ़ कर्नाटक के मुहम्मद अली) के क़र्ज़ का था। यह मुहम्मद अली एक ज़बर्दस्त ऐयाश, गुलछर्रे उड़ाने वाला व्यभिचारी था, उसने लोगों से व्यक्तिगत तौर पर बड़ी बड़ी रक़में उधार ले ली थीं। इन्हें वापिस करने के लिये वह उन्हें ज़मीन के काफ़ी बड़े-बड़े इलाक़ों की आमदनी वसूल करने का अधिकार सौंप देता था। कर्ज़दार (अर्थात धोखेबाज अंग्रेज सूदखोर) इस चीज को "बहुत लाभदायक" पाते थे। इस स्थिति ने "नीच लोगों' को आनन फ़ानन बड़े-बड़े भूस्वामियों में बदल दिया और रैयत के उत्पीडन से भारी सम्पदा बटोरने का मौक़ा दे दिया; इसलिये नये-नये योरोपीय (अर्थात अंग्रेज) ज़मींदार देशी किसानों के प्रति जुर्म—वह भी सबसे घृणित किस्म के—करते थे। उन्होंने और नवाब ने पूरे कर्नाटक को तबाह कर दिया।

१७८५ लुटेरे डुन्डास तथा कमिश्नर मंडल ने (जिसका वह अध्यक्ष था) इस सवाल को अपने हाथ में लिया और खून चूसनेवाले बदजात अंग्रेज़ों के अधिकतम हित में उसे तै कर दिया। देश (कर्नाटक) को महाजनों के शिकन्जे से मुक्त कराने के बहाने, उन्होंने यह प्रस्ताव रखा कि नवाब के कर्जों को चुकाने के लिए ४ लाख ८० हज़ार पौंड हस्तगत कर लिए जायें, जिससे कि ईस्ट इंडिया कम्पनी से— जिसने उसकी बहुत मदद की थी—पहले उन व्यक्तिगत सूदखोरों का क़र्ज़ा चुकवा दिया जाय जिन्होंने नवाब को बर्बाद कर दिया था। कामन्स सभा में दुष्ट डुन्डास को बताया गया कि उस योजना से बेनफील्ड तथा उन अन्य लोगों को विशाल धनराशियाँ प्राप्त हो जायेंगी जिन्होंने बेईमानों का एक पूरा गुट बना

लिया था और कर्नाटक की वैध आमदनी को छल-कपट के द्वारा खूब लूटा था। पिट के घृणित मन्त्रि मंडल ने—इसके बावजूद !—इस बिल को सदन में पास कर दिया। इसकी वजह से केवल पौलबेनफ़ील्ड को कर्नाटक की आमदनी में से ६ लाख पौंड मिल गये ! (यह उसी डुन्डाज़ मेलविल की कारगुज़ारी थी जो बाद में, १८०६[1] के उस गन्दे काण्ड में जाकर मरा था)। भ्रष्टाचार के पुतले, डुन्डाज़ ने क़र्ज़ों को तीन वर्गों में बाँट दिया। इसमें सबसे बड़ा भाग १७७७ का संघनित ऋण था। वारेन हेस्टिंग्ज़ ने जो योजना रखी थी उसमें इस क़र्ज़ को १५ लाख देकर चुका दिया जाता, किन्तु डुन्डाज़ की योजना की वजह से उसे चुकाने के लिए ५० लाख देने पड़े ! और २० वर्ष बाद (१८०५ में) जब कि पुराने क़र्ज़ों के आख़िरी हिस्सों को भी चुका दिया गया था, जैसी कि उम्मीद की जा सकती थी, पता चला कि इस बीच मुहम्मद अली ने ३ करोड़ के नये क़र्ज़ ले डाले थे। उसके बाद एक नयी जाँच बैठायी गयी। यह जाँच ५० वर्ष तक चलती रही, उस पर १० लाख पौंड खर्च हुआ। इसके बाद ही नवाब के मामले अन्तिम रूप से तै किये जा सके। ग़रीब भारतीय जनता के साथ ब्रिटिश सरकार—क्योंकि पिट के बिल के पास हो जाने के बाद से [भारत में] कम्पनी का नहीं, बल्कि उसी का दौर-दौरा था—इसी तरह व्यवहार करती थी !

. . . .

[६] लार्ड कार्नवालिस का प्रशासन, १७८५-१७९३

१७८५-१७८६. वारेन हेस्टिंग्ज़ के रिटायर (कार्यनिवृत्ति) हो जाने के बाद कलकत्ते की कौन्सिल के वरिष्ठ सदस्य, सर जौन मैकफर्सन फ़िलहाल गवर्नर जनरल बन गये। वित्तीय सुधार के द्वारा उन्होंने सरकारी कर

---

1 १८०६ में, लार्ड्स सभा में डुन्डाज़ (मेलविल) के ऊपर सरकार की भारी रक़मों का ग़बन कर लेने के अपराध में मुकदमा चलाया गया था। ये रकमें उसने (१८०४-१८०५ में) नौसेना के हिसाब में से उस समय उड़ा ली थीं जिस समय कि वह "नौवाहन विभाग का प्रधान" (एडमिरल्टी का प्रथम लार्ड) था।

में १० लाख पौंड की कमी कर दी। लार्ड मेकार्टने गवर्नर जनरल नामज़द होने वाला था, किन्तु पार्लमिन्ट में डुन्डास का विरोध होने की वजह से यह प्रस्ताव तुरन्त खत्म कर दिया गया।

१७८६. कार्नवालिस कलकत्ते पहुँचे।—अवध के नवाब, आसफुद्दौला ने उससे प्रार्थना की कि उसकी अमलदारी में ब्रिटिश सेना के रख-रखाव के लिए उससे जो खर्चा लिया जाता था उसमें कमी कर दी जाय, कार्नवालिस ने, रेज़ीडेन्ट की सलाह के विरुद्ध, उक्त रक़म को घटाकर ७४ लाख से ५० लाख कर दिया। रेज़ीडेन्ट का कहना था कि ऐसा न किया जाय क्योंकि जो रुपया बचेगा उसे आसफ रंडियों और शिकार में उड़ा देगा।—नाना फड़नवीस ने निज़ाम के साथ सुलह कर ली और टीपू के खिलाफ खुले आम लड़ाई की तैयारियाँ करने लगा। टीपू ने उसे ४५ लाख देकर तुष्ट कर दिया।

१७८८ ब्रिटिश फौजों ने गुन्टूर के सरकार इलाक़े को हड़प लिया। सच बात यह है कि १७६८ की सन्धि में, निज़ाम ने कम्पनी से वादा किया था कि इस प्रान्त के गवर्नर, बसालत जंग की मृत्यु के बाद गुन्टूर सरकार के इलाक़े को वह उसे दे देगा। १७८२ में बसालत जंग की मृत्यु हो गयी। अब निज़ाम ने अंग्रेज़ों से माँग की कि वे सन्धि के दूसरे अंश को भी पूरा करें, अर्थात हैदर अली के वंश से कर्नाटक के बालाघाट को भी उसके लिए जीत दें, जिसमें कि उसकी आमदनी से वह मराठों को चौथ चुका सके! किन्तु एक के बाद एक दो सन्धियों में अंग्रेज़ खुद ही हैदर और टीपू को कर्नाटक के बालाघाट का राजा स्वीकार कर चुके थे! कार्नवालिस ने—

१७८८—में, निज़ाम से वादा किया कि किसी भी सत्ता के विरुद्ध—जिसका इंगलैण्ड के साथ कोई समझौता नहीं है—ब्रिटिश फौजें उसकी मदद करेंगी; उसने यह भी वादा किया कि कर्नाटक का बालाघाट ज्योंही अंग्रेज़ों का हो जाता है त्योंही वह उसके नाम स्थानान्तरित कर दिया जायगा! कार्नवालिस की "इस धोखेबाज़ी पर" टीपू सुल्तान आग-बबूला हो उठा।

— ईस्ट इंडिया कम्पनी के सहयोगी, त्रावन्कोर के राजा ने कोचीन में डच लोगों से दो शहर खरीद लिए थे और उनकी क़िलेबन्द कर दिया था। कोचीन के सरदार ने, जो टीपू का गुमाश्ता था, उसके आदेश पर घोषणा कर दी कि वे दोनों शहर उसके थे। राजा ने अंग्रेज़ों से मदद की अपील की, और कोचीन के सरदार ने टीपू से। टीपू ने त्रावन्कोर की रक्षापंक्ति

पर हमला किया, किन्तु राजा ने उसे हरा दिया। —टीपू और अंग्रेजों के बीच युद्ध की घोषणा हो गयी।

१७९०. कार्नवालिस की "त्रिदलीय सन्धि", अर्थात् नाना फड़नवीस और निज़ाम के साथ उसका आक्रमणात्मक तथा रक्षात्मक समझौता।

१७९०-१७९२. मैसूर का तृतीय युद्ध (१७९१ में, कार्नवालिस स्वयम् सेना की कमान कर रहा था)। श्रीरंगपट्टम के बाहरी प्राचीरों के ध्वस्त हो जाने के बाद (फरवरी, १७९२), टीपू ने हार मान ली; उसे अपना आधा देश देना पड़ा; मित्रों के गुट को ३० लाख पौण्ड युद्ध के ख़र्च की मद में देने पड़े, ज़मानत के तौर पर उसे अपने दो बेटे अंग्रेज़ों के पास रखने पड़े और ३० लाख रुपये मराठों को देने पड़े। कम्पनी ने अपने लिए डिन्डीगल और बड़ा महल को उनके आसपास के इलाक़ों के साथ ले लिया; बम्बई के पास भी उसने कुछ ज़मीन ले ली। टीपू के राज्य के बाक़ी भाग का एक-तिहाई हिस्सा (जिसमें कर्नाटक का बालाघाट भी शामिल था) पेशवा को मिला और दूसरा एक-तिहाई भाग निज़ाम ने पाया। कामन्स सभा में राज्यों को हड़पने की उसकी नीति को लेकर कार्नवालिस पर अभियोग लगाया गया, वह पास न हो सका। उल्टे, उसे मारक्विस की उपाधि दे दी गयी।

सितम्बर, १७९३. फ्रान्सीसियों की अन्तिम तथा सबसे महत्वपूर्ण सम्पत्ति, पांडिचेरी को कर्नल ब्रैथवेट ने छीन लिया……कार्नवालिस इंगलैण्ड लौट गया।—उसके न्याय-सम्बन्धी सुधार आये (पृष्ठ १५६-१५८)।

१७८४-१७९४. सिंधिया की सफलता। सालबाई (ग्वालियर में) की १७८२ की सन्धि के द्वारा दक्षिण भारत में उसे विशाल शक्ति प्राप्त हो गयी थी (देखिये पृष्ठ ९३)[1]।

१७८४. सिंधिया दिल्ली गया, कठपुतली बादशाह शाहआलम (आलमगीर द्वितीय का बेटा और एक ज़माने का बाँका रसिया शाहज़ादा) से मिला। उसे "साम्राज्य के प्रधान कार्य-संचालक" की उपाधि उसने दी तथा शाही सेनाओं का उसे प्रमुख सेनाध्यक्ष बना दिया और आगरा तथा दिल्ली के प्रान्त उसे भेंट में दे दिये। —[उसने] राजपूतों पर हमला कर दिया, बुरी तरह पराजित हुआ; उसकी सारी "शाही" सेनाएँ उसे छोड़कर दुश्मन से जा मिलीं।

---

[1] इस संस्करण का पृष्ठ ९९।

१७८७. सिंधिया पर इस्माइल बेग (भूतपूर्व प्रधान कार्य-संचालक, मुहम्मद बेग के भतीजे) ने हमला कर दिया, इस्माइल ने आगरे पर अधिकार कर लिया, उसकी सहायता के लिए गुलाम कादिर (जाबिता खाँ के बेटे) के नेतृत्व में रुहेलों का एक मजबूत दल आकर मिल गया। सिंधिया दिल्ली से चल पड़ा उसने मित्र-गुट पर हमला किया, हार गया, रुहेलों ने उत्तर की ओर चढ़ाई कर दी, सिंधिया ने इस्माइल बेग की छोटी सी सेना को हरा दिया। किन्तु इसी बीच बर्बर लुटेरे—रुहेलों ने दिल्ली पर क़ब्ज़ा करके उसे लूट डाला था, दो महीने तक वे उसे नष्ट करते और लूटते रहे थे। अन्त में, आलमशाह की, जिसे *उन्होंने कैद कर लिया था, आँखें उन्होंने फोड़ दी। इस्माइल बेग अब* सिंधिया की तरफ हो गया।

१७८८ इन दोनों सहयोगियों ने संयुक्त रूप से दिल्ली पर क़ब्ज़ा कर लिया, आलमशाह को फिर गद्दी पर बैठा दिया गया। गुलाम क़ादिर को यातनाएँ देकर मार डाला गया, इस्माइल बेग को बहुमूल्य जागीर देकर टाल दिया गया। सिंधिया ने—जो एक तरह से दिल्ली का शासक बन गया था— फ्रान्सीसी, अंग्रेज, और आयरलैण्ड के कुछ अफ्सरों की देख रेख में सिपाहियों की बढ़िया सेना सगठित की, उसने लोहे के ढलाई के बड़े बड़े कारखाने स्थापित किये, अनेक तोपें, आदि, आदि, ढलवायीं।

१७९१ सिन्धिया ने राजपूतों के खिलाफ़ सफल अभियान चलाया।—मुगल साम्राज्य को मराठों के कब्ज़े में ले लेने के लिए—

१७९२. में, उसने शाहआलम से पुश्तैनी प्रतिनिधि का अधिकार अपने और अपने वारिसों के नाम लिखवा लिया और पेशवा को वकीले मुतलक (साम्राज्य का प्रतिसरक्षक) बनवा दिया। वह खुद पूना गया, पेशवा को यह सम्मान उसने अपने हाथ से सौंपा। पेशवा ने स्वयम् अपने दरबार में उसे अपने वजीर, नाना फड़नवीस के समकक्ष सम्मान दिया। इसके बाद से इस युग के सबसे "कुशल राजनीतिज्ञ" तथा सिन्धिया और उसके *वंशजों के बीच जो अभिसन्धियाँ चली मराठों का आगे का इतिहास उन्हीं के* इर्द-गिर्द चक्कर काटता रहा।

१७९३. होल्कर को, जो मराठा सरदारों के बीच सत्ता की दृष्टि से दूसरा स्थान रखता था, युद्ध में सिन्धिया ने हरा दिया; अब सिंधिया हिन्दुस्तान का एकछत्र स्वामी बन गया।

१७९४. महाद जी सिन्धिया की अचानक मृत्यु हो गयी; उसकी तमाम उपाधियाँ तथा पद उसके भतीजे के लड़के दौलतराव सिंधिया को प्राप्त हुए।

. . . .

१७८६-१७९३. पार्लमिन्ट की कार्यवाहियाँ : १७८६, बिल पास हो गया जिसमें गवर्नर जनरल को यह अधिकार दे दिया गया कि अपनी कौंसिल की सलाह लिए बिना वह ख़ुद क़ानून बना दे; वेलेज़ली ने, जो बाद में गवर्नर जनरल बन गया था, देखा कि "सब कुछ ठीक था;" क़ानून इसलिए पास किया गया था कि आइन्दा से [गवर्नर जनरल] उन सब विघ्न-बाधाओं से छुटकारा पा जाय जिन्होंने वारेन हेस्टिंग्ज़ को हलाकान कर डाला था।

१७८८. कम्पनी के डायरेक्टर मंडल तथा ताज के प्रतिनिधि कमिश्नर मण्डल में झगड़े के कारण घोषणात्मक क़ानून पास किया गया। मंत्रिमंडल ने आर्डर दिया कि भारत में विशिष्ट सेवा-कार्य के लिए चार नये रेजीमेंट भर्ती किये जायँ, कम्पनी ने उनके पोतारोहण तथा रख-रखाव के ख़र्चे को देने से इन्कार कर दिया। कमिश्नर मंडल ने कम्पनी को आदेश दिया कि वह आवश्यक कोष प्रस्तुत करे। डायरेक्टरों ने कहा कि वित्तीय मामलों के सम्बन्ध में फ़ैसला करने का मुख्य अधिकार उन्हीं को था। पिट ने बहुत पहले, १७८४ में ही घोषणा कर दी थी (और अब उसने इस बात को फिर दोहराया) कि मंत्रिमंडल का इरादा यह है कि भविष्य में किसी समय कम्पनी भारत की समस्त शासकीय सत्ता को राष्ट्र के हाथों में सौंप दे। सदन में अत्यन्त कोलाहलमयी बहसें हुईं। घोषणात्मक क़ानून केवल १७८४ के क़ानून को लागू करता था; उसने राज्य सम्बन्धी समस्त मामलों में कम्पनी के कामकाज को निर्धारित करने की सत्ता कमिश्नर मंडल को सौंप दी थी। १७९३ में, कम्पनी के विशेषाधिकारों की मियाद एक नये पट्टे के द्वारा २० वर्ष के लिए और बढ़ा दी गयी।

. . . .

[ज़मींदारों के पक्ष में रैयतों की ज़मीन को ज़ब्त कर लिया गया, १७९३][1]

---

[1] इस उप-शीर्षक के नीचे जो अंश—यहाँ से लेकर पृष्ठ ११८ की बिन्दुकित रेखा तक—दिया गया है वह मार्क्स की उसी नोट बुक (पेज ६८ और ७०) के "(ई) ब्रिटिश शासन तथा भारत की सार्वजनिक सम्पत्ति पर उसका प्रभाव" नाम के उपभाग से लिया गया है।

१७९३— बंगाल के गवर्नर जनरल, लार्ड कार्नवालिस (उनका प्रशासन, १७८६-१७९३) के आर्डर पर भूमि की मालगुजारी ठहराने के लिए किये गये प्रथम सर्वेक्षण के दौरान बंगाल की ज़मीन को जमींदारों की निजी सम्पत्ति मान लिया गया था। (१७६५ में अंग्रेज़ों ने देखा कि "सार्वजनिक राजस्व को इकट्ठा करने वाले"—ज़मींदार यह दावा करने लगे थे कि वे ज़मींदार राजा हैं—यह अधिकार धीरे-धीरे उन्होंने मुग़ल साम्राज्य के क्षय के काल में हथिया लिया था।) (उनके अधिकार-काल का स्वरूप पुश्तैनी इसलिए हो गया था कि जब तक उन्हें उनका सालाना टैक्स मिलता जाता था तब तक महान् मुग़ल इस बात की परवाह नहीं करते थे कि अधिकार का ढंग क्या था, सालाना टैक्स एक निश्चित रकम होती थी—ज़िले की अपनी आवश्यकताओं के बाद जो कुछ बचता था उसी को सालाना पैदावार माना जाता था। इसके ऊपर ज़मींदार जो कुछ हासिल कर लेता था वह उसकी अपनी सम्पत्ति होती थी, इस लिए वह रैयत को खूब लूटता था।) राजा माने जाने का दावा वे [ज़मींदार] इसलिए करने लगे थे कि लूट-खसोट के द्वारा उन्होंने भूमि तथा द्रव्य के रूप में भारी सम्पदाएँ इकट्ठा कर ली थीं, वे फौजों का खर्च देते थे और उन्होंने राजकीय अधिकार अख्तियार कर लिए थे। अंग्रेज सरकार (१७६५ [में])उनके साथ टैक्स इकट्ठा करने वाले केवल अधीनस्थ कर्मचारियों जैसा व्यवहार करती थी, उनके काम को उसने कानूनी बंधनों से बाँध दिया था और इस बात की व्यवस्था कर दी थी कि नियमित रूप से रुपया देने में अगर वे ज़रा भी गड़बड़ी करें तो उन्हें जेल तक में डाला जा सकेगा या उनके पद से हटा दिया जायगा। दूसरी तरफ़, रैयत की हालत में कोई सुधार नहीं किया गया था, वास्तव में उसे और भी अधिक हीनता तथा उत्पीड़न की स्थिति में पहुँचा दिया गया था, और मालगुज़ारी की पूरी व्यवस्था को अस्त-व्यस्त कर दिया गया था।

१७८६ डायरेक्टरों ने, नीति के रूप में, आज्ञा दी कि ज़मींदारों के साथ एक नया समझौता किया जाय जिसमें इस बात को बिल्कुल साफ़ कर दिया जाय कि उन्हें जो भी विशेषाधिकार हासिल हैं वे उनके अपने अधिकार नहीं हैं, बल्कि गवर्नर और उसकी कौन्सिल की कृपा से मिले हुए अधिकार हैं। ज़मींदारों की हालत की जाँच-पड़ताल करने और उसके सम्बन्ध में रिपोर्ट देने के लिए एक कमीशन नियुक्त किया गया, रैयत ने, ज़मींदारों

द्वारा बदला लिए जाने के डर से, उसके सामने गवाही देने से इन्कार कर दिया; ज़मींदारों ने तमाम प्रश्नों का उत्तर देने में टाल-मटोल की, फलस्वरूप कमिश्नरों का काम ठप हो गया।

१७९३. लार्ड कार्नवालिस ने कमीशन को खत्म कर दिया और बिना किसी पूर्व चेतावनी के, अचानक कौन्सिल में यह प्रस्ताव पास कर दिया कि अभी से जिस [इलाके पर] ज़मींदार अपने अधिकार का दावा करते थे उस सबके वे स्वामी समझे जाएंगे। ज़िले की तमाम ज़मीन के वे पुश्तैनी मालिक समझे जाएँगे, हर साल सरकार को वे सरकार के लिए इकट्ठा किये जाने वाले सार्वजनिक टैक्सों का कोटा नहीं, बल्कि राज्य के कोष को एक प्रकार की भेंट दिया करेंगे।

मिस्टर शोर ने, जो बाद में सर जॉन शोर हो गया था, यानी उस धूर्त ने जो कार्नवालिस के पद पर उसका उत्तराधिकारी बना था, कौन्सिल में भारतीय परम्परा को पूर्णरूप से नष्ट करने के विरुद्ध एक ज़बर्दस्त भाषण दिया; और जब उसने देखा कि कौन्सिल का बहुमत तै कर चुका था कि (लगातार क़ानून के बोझ से तथा हिन्दुओं की हैसियत के सम्बन्ध में बराबर होते रहने वाले झगड़ों से छुटकारा पाने के लिए) ज़मींदारों को ज़मीन का मालिक घोषित कर दिया जाय, तब उसने यह प्रस्ताव रखा कि हर दस वर्ष पर पैमाइश की जाय, किन्तु कौन्सिल ने स्थायी पैमाइश के पक्ष में ही फ़ैसला किया। कमिश्नर मण्डल ने उसके प्रस्ताव की प्रशंसा की और—

१७९३—में, पिट के प्रधान मंत्रीत्व के काल में, "भारत के ज़मींदारों को स्थायी तौर से "पुश्तैनी मूस्वामी" बनाने का बिल पास कर दिया। मार्च, १७९३ में यह फ़ैसला कलकत्ते में लागू कर दिया गया। आश्चर्य-चकित ज़मींदार खुशी से फूले नहीं समाये। यह क़ानून जितना अचानक और अनपेक्षित था, उतना ही अवैध था, क्योंकि अंग्रेज़ों का काम हिन्दू जाति की ओर से क़ानून बनाना तथा, जहाँ तक सम्भव हो, उनके ऊपर स्वयं उनके क़ानूनों को लागू करना था। साथ-साथ अंग्रेज सरकार ने कई ऐसे क़ानून पास किये जिनसे कि ज़मींदारों के खिलाफ़ दीवानी की अदालत में जाकर राहत पाने का अधिकार रैयत को मिल गया तथा उसके लिए इस बात की सुरक्षा हो गयी कि लगान नहीं बढ़ाया जायेगा। देश की अवस्था को देखते हुए ये [क़ानून] निरर्थक मृत-पत्र जैसे थे, क्योंकि रैयत इस तरह से पूर्णतया ज़मींदारों की कृपा पर निर्भर करती थी कि अपनी आत्मरक्षा

के निमित्त कुछ भी करने की विरले ही उसकी हिम्मत होती थी।—ऊपर जिन कानूनों का जिक्र किया गया है उनमें से एक के द्वारा ज़मीन के लगान को हमेशा के लिए निश्चित कर दिया गया था। उसमें कहा गया था कि रैयत को एक लिखित पट्टा दिया जाय। इस दस्तावेज़ में लिखा रहना चाहिए कि उसके अधिकार की क्या शर्तें हैं और लगान की कितनी रकम उसे हर साल देनी होगी। इस कानून में ज़मींदार को इस बात की छूट थी कि नयी ज़मीनों को जोत कर वह अपनी अमलदारी के मूल्य को बढ़ा ले और जिन खेतों पर ऊँची क़ीमत वाले गल्ले की बोआई होती हो उनके लगान को बढ़ा दे।

१७६३ इस प्रकार कार्नवालिस और पिट ने बंगाल की ग्रामीण आबादी की सम्पत्ति को चालाकी से छीन लिया। (पृष्ठ १६१)।

१७८४ पार्लामेन्ट ने "ईस्ट इंडिया कम्पनी के मामलों" तथा "भारत में" ब्रिटिश "सम्पत्ति" को ठीक करने के लिए निर्णायक ढंग से हस्तक्षेप किया। इसी उद्देश्य से जौर्ज तृतीय का २४ वाँ क़ानून, अध्याय २५ पास किया गया। फिर यही क़ानून ब्रिटिश भारत के विधान का आधार बना। इस क़ानून ने भारत के मामलात की देख भाल के लिए कमिश्नरों का एक बोर्ड कायम किया। आमतौर से इसे नियंत्रण बोर्ड कहा जाता था। इसका काम था कि अपने अधिकारों के राजनीतिक भाग का इस्तेमाल करते हुए वह ईस्ट इंडिया कम्पनी की देख-भाल और उसका नियंत्रण करे। कानून की २९ वीं धारा के अन्तर्गत, कम्पनी को इस बात का आदेश दिया गया था कि ब्रिटिश भारत में विभिन्न राजाओं, ज़मींदारों, पोलीगरों तथा अन्य भूपतियों के ऊपर किए गये जुल्मों के सम्बन्ध में जो कुछ शिकायतें थी उनकी सच्चाई की जाँच-पड़ताल करे, और, "भारत के विधान तथा क़ानूनों के अनुसार, नरमी तथा न्याय के सिद्धान्तों के आधार पर" ज़मीन की मालगुज़ारी वसूलने के सम्बन्ध में भविष्य के लिए स्थायी नियम बना दे।

१७८६ मारक्विस कार्नवालिस गवर्नर जनरल के रूप में भारत [आया]; डायरेक्टर मंडल तथा नियंत्रण बोर्ड के आदेश के अनुसार (जिसे इंगलैण्ड से वह अपने साथ लेता आया था), इस आदमी ने फौरन—

१७८७ में—नागरिक न्याय और पुलिस दण्ड सम्बन्धी अधिकारों को वित्तीय प्रबन्ध के अधिकारों के साथ फिर से मिला दिया और उन्हें कलक्टर को सौंप दिया, ऐसा करने के लिए, उसने कलक्टर को प्रान्तीय दीवानी

अदालत (मुफ़स्सिल दीवानी अदालत) का मजिस्ट्रेट और जज दोनों बना दिया; किन्तु राजस्व सम्बन्धी मुक़दमों के जज (न्यायाधीश) की हैसियत से कलक्टर की ख़ास अदालत उस दीवानी[1] अदालत से अलग बनी रही जिसका वह प्रधान था। दीवानी अदालत की अपील सदर दीवानी अदालत में होती थी, किन्तु उसकी [कलक्टर की] राजस्व सम्बन्धी अदालत की अपीलें कलकत्ते में स्थित रेवन्यू बोर्ड के पास ही जा सकती थीं।

१७९३. बंगाल, बिहार और उड़ीसा के तीन प्रान्तों में कार्नवालिस ने इस्तमरारी (स्थायी) बन्दोबस्त कर दिया था। यहाँ पर पिछली वसूलियों के औसत के आधार पर हमेशा के लिए तै कर दिया गया था कि ये तीनों प्रान्त ज़मीन का कितना लगान देंगे। कार्नवालिस के इस बन्दोबस्त में यह व्यवस्था की गयी थी कि अगर मालगुज़ारी की रक़म न चुकायी जाय तो उसकी क़ीमत की ज़मीन को बेचकर उसे पूरा कर दिया जाय; किन्तु ज़मींदार "लगान पर लेने वाले किसान से अपने बक़ायों को केवल क़ानूनी कारवाई करके ही वसूल कर सकता था"। ज़मींदारों ने शिकायत की कि इस प्रकार के क़ानून से उन्हें निम्न वर्ग के असामियों की दया पर छोड़ दिया गया है। उनका कहना था कि सरकार तो उनसे सालाना वसूली करती थी, इसे न देने पर उनकी ज़मीन के बिक जाने का ख़तरा रहता था, किन्तु जिस रक़म को सरकार उनसे इस तरह ले लेती थी उसे अपने असामियों से वे कानून की एक लम्बी क्रिया के द्वारा ही वसूल कर सकते थे। इसलिए नये नियम बनाये गये। इनके अन्तर्गत, किन्हीं ख़ास मामलों में और अत्यन्त सावधानी से निर्धारित किये गये रूपों में, ज़मींदार को इस बात का अधिकार दे दिया गया कि अपने काश्तकारों से पैसा वसूलने के लिये वह उन्हें गिरफ़्तार कर ले। इसी प्रकार, जमींदारों के सम्बन्ध में यही अधिकार कलक्टर को दे दिया गया। यह १८१२[2] में [किया गया था]।

"बन्दोबस्त" के नतीजे : रैयत की "सामुदायिक तथा निजी सम्पत्ति" की इस लूट का पहला फल यह निकला कि "भूस्वामियों" [जो वे बना]

---

1 सिविल कोर्ट।

2 देखिये : हैरिंगटन की रचना : "बंगाल के कानूनों और नियमों का साधारण विश्लेषण"; और कोलब्रुक की, "बंगाल के कानूनों और नियमों के सार-संग्रह का परिशिष्ट"—लेखक की टिप्पणी।

दिये गये थे] के खिलाफ रैयत ने स्थायी पैमाने पर जगह-जगह अनेक विद्रोह कर दिये; कहीं-कहीं तो ज़मींदारों को निकाल बाहर किया गया और उनके स्थान पर ईस्ट इंडिया कम्पनी को मालिक बना कर बैठा दिया गया। अन्य स्थानों पर ज़मींदार निर्धन हो गये और राजस्व के बक़ायों तथा निजी कर्ज़ों को चुकाने के लिये उनकी ज़मींदारियों को ज़ब्त कर लिया गया या उनकी मर्ज़ी से ले लिया गया। फलस्वरूप, प्रान्त की जोतों का अधिकतर भाग तेज़ी से शहर के कुछ थोड़े से उन पूंजी-पतियों के हाथ में पहुँच गया जिनके पास अतिरिक्त पूँजी थी और जो उसे ज़मीन में लगाने के लिए आसानी से तैयार हो गये।[1]

. . . .

[७] सर जौन शोर का प्रशासन, १७९३-१७९८

(कार्नवालिस के अवकाश ग्रहण के समय कौंसिल के वरिष्ठ सदस्य की हैसियत से अन्तरिम काल के लिए उसे नियुक्त कर दिया गया था, बाद में कमिश्नर मंडल ने ५ साल के लिए उसे गवर्नर जनरल बना दिया।)

१७९३ गवर्नर जनरल के कहने पर, (टीपू साहेब के विरुद्ध) १७९० की त्रिदलीय सन्धि के हस्ताक्षर-कर्त्ताओं ने एक गारंटी सन्धिपर भी दस्तख़त किये। इस सन्धि के परिशिष्ट में यह स्पष्ट कर दिया गया कि अगर तीनों शक्तियों में से कोई एक किसी अवैध उद्देश्य के लिए टीपू सुल्तान के ख़िलाफ़ लड़ाई छेड़ देती है, तो दूसरी शक्तियाँ फिर इस सन्धि से बँधी नहीं मानी जाएँगी। नाना फड़नवीस ने इस पर हस्ताक्षर करने से इन्कार कर दिया, किन्तु निज़ाम ने उसे स्वीकार कर लिया।

१७९४. पेशवा, और आम मराठों ने, निज़ाम के ख़िलाफ़ लूट-खसोट की लड़ाई छेड़ दी। त्रिदलीय सन्धि के आधार पर निज़ाम ने सर जौन शोर से [मदद देने के लिए] कहा, विशाल मराठा फौज से डर कर, सर जौन शोर ने मदद देने से इन्कार कर दिया। तब निज़ाम ने फ्रान्सीसियों से सहायता माँगी। उन्होंने उसकी मदद के लिए दो बटालियनें भेज दी,

---

[1] यह पैरा कोवालेव्स्की की पुस्तक का जो सारांश मार्क्स ने तैयार किया था उसमें लिया गया है। यह सारांश मार्क्स की कालानुसारी टिप्पणियों के फ़ौरन बाद आता है।

इसके अलावा, फ्रांसीसी दुस्साहसिकों के नेतृत्व में [उसने] १८,००० सिपाहियों की एक फ़ौज संगठित की।

नवम्बर, १७९४. पेशवा यानी नौजवान माधोराव द्वितीय के नेतृत्व में १५० तोपें और १ लाख ३० हज़ार आदमियों की सेना लेकर मराठों ने मध्य भारत पर चढ़ाई कर दी। (इस सेना के लिए जनरल द-ब्वॉय के नेतृत्व में २५ हज़ार सैनिक दौलतराव सिंधिया ने दिये थे; १५ हज़ार बरार के राजा ने; १० हज़ार होल्कर ने; १० हज़ार पिंडारियों ने; ५ हज़ार गायकवाड़ गोविन्द राव ने; और ६५ हज़ार पेशवा ने।) खर्दा में फ़ौजों का सामना हुआ।

नवम्बर, १७९४. *निज़ाम अली की ज़बर्दस्त हार हुई, उसने हथियार डाल दिये* तथा वादा किया कि ३० लाख पौंड तो वह फ़ौरन देगा और ३५ हज़ार पौंड आमदनी के मूल्य की वह ज़मीनें दे देगा। अपने योग्यतम मंत्री को ज़मानत के तौर पर उसने मराठों के हाथ में सौंप दिया—अंग्रेज़ों की "अनुत्तरदायी तटस्थता" से सही-सही नाराज़ होकर, निज़ाम ने उन तमाम ब्रिटिश सैनिकों को निकाल दिया जिन्हें वह तनखा देता था, [कुछ] और फ़्रान्सीसी बटालियनों को भर्ती किया, रेमों को उसने बटालियनों का प्रधान बना दिया, हैदराबाद में जो एक फ़्रान्सीसी सेना रहने वाली थी उसके खर्चे के एवज़ में उसने कुरपा के सम्पन्न प्रान्त को फ़्रान्सीसियों को दे दिया। ज़मीन के एक टुकड़े को लेकर जो कम्पनी के इलाक़े की सीमा पर स्थित था शोर ने हस्तक्षेप किया। कुछ छिट-पुट वारदातों के बाद मामला वहीं रुक गया।

अक्टूबर, १७९५. माधोराव द्वितीय ने आत्म-हत्या कर ली ; उसकी जगह उसका चचेरा भाई, चालाक और धूर्त बाजीराव (राघोबा का बेटा) पदासीन हुआ। —बाजीराव, नाना फड़नवीस तथा सिंधिया (दौलतराव) की साज़िशों के फलस्वरूप, (देखिए पृष्ठ १६४-१६८)—

४ दिसम्बर, १७९६—कुछ समय के लिए बाजीराव की जगह उसको हटा कर उसका भाई चिमाजी गद्दी पर बैठ गया ; बाद में निज़ाम, फड़नवीस, आदि की मदद से पूना में उसे फिर गद्दी पर बैठा दिया गया; अब उसने नाना फड़नवीस को डिसमिस कर दिया और अपने महल की सबसे गहरी काल कोठरी में बन्द कर दिया। अब उसके सामने सिंधिया को हटाने का काम था। सार्वजनिक रूप से उसने सिंधिया को वह जागीर देने से मना कर दिया जिसका उसने वादा किया था ; सरजीराव घटके

(सिंधिया के धोखेबाज़ अफसर) की मदद से पूना में सिंधिया की सेनाओं से उसने एक भयंकर विद्रोह करवा दिया (सिंधिया इसके बारे में कुछ नहीं जानता था।) इस प्रकार, पूना की जनता को उसने सिंधिया के विरुद्ध कर दिया और उसे वापिस उत्तर की ओर भेज दिया।

१७९६ कलकत्ते में कम्पनी के अफसरों ने (शाही ब्रिटिश ने नहीं) विद्रोह कर दिया। उन्हें कम्पनी के सिविल अफसरों से कम तनखा दी जाती थी, उन्होंने तनखा में वृद्धि, आदि की माँग की (देखिए, पृष्ठ १६८)। इस चीज़ को सर रोबर्ट एबरक्रोम्बी (कानपुर के कमांडर) के हस्तक्षेप से खत्म कर दिया गया। (क्लाइव के काल में १७६६ में जो सैन्य-द्रोह हुआ था उसके बाद उस तरह की यह दूसरी घटना थी।)

१७९७ मद्रास की मेयर की अदालत को (जिसे जौर्ज प्रथम ने १७२६ में स्थापित किया था) जौर्ज तृतीय के ३६वें कानून के द्वारा खत्म कर दिया गया। *उसके स्थान पर सम्बद्ध शहर की क्वार्टर सेशन अदालत के* नमूने पर रिकौर्डर्स (दण्डाधिकारी) अदालत की स्थापना कर दी गयी। (इसमें मेयर का नाम का, असली न्यायाधीश रिकौर्डर ही होता था।) (देखिए पृष्ठ १६६, टिप्पणी १)

१७९७ अवध के नवाब, आसफुद्दौला की (निठल्लेपन और ऐयाशी की ज़िन्दगी के बाद) मृत्यु हो गयी। उसके एक ख्यातिप्राप्त बेटे को, जिसका नाम वज़ीर अली था, अंग्रेज़ों ने गद्दी पर बैठा दिया। बाद में स्वयम् अंग्रेज़ों ने उसे गद्दी से उतार कर उसकी जगह आसफ के भाई सआदत अली को सिंहासन पर बैठा दिया। सआदत अली के साथ अंग्रेज़ों ने संधि कर ली कि अवध में १० हज़ार अंग्रेज़ सैनिकों के गैरीसन को रखा जायगा, उनका सदर दफ्तर इलाहाबाद के ज़िले में होगा और उनके खर्चे के लिए [नवाब] ७६ लाख रुपया सालाना देगा तथा गवर्नर जनरल की अनुमति के बिना नवाब और कोई संधियाँ नहीं करेगा।

मार्च, १७९८ सर जौन शोर इंगलैण्ड वापिस लौट गया और लार्ड टेंगिनमाउथ बना दिया गया।

[८] लार्ड वेलेज़ली का प्रशासन, १७९८-१८०५

जिस समय वह कलकत्ते पहुंचा टीपू साहेब बदले के लिए बेचैन हो रहे थे; निज़ाम के पास हैदराबाद में रेमों के नेतृत्व में १४,००० फ़्रान्सीसियों की एक सेना थी, और ३६ तोपें थीं; दिल्ली में ४०,००० सिपाहियों की फौज की मदद से, जिसके अफ़सर द ब्वॉय के नेतृत्व में फ़्रान्सीसी लोग थे, सिन्धिया शासन करता था। ४६० तोपें भी उसके पास थीं, खज़ाना खाली था।

१७९९. चौथा और अंतिम मैसूर युद्ध। (टीपू साहेब ने मारीशस से फ़्रान्सीसी सेना को बुलाया था और वह उन्हें मिल भी गयी थी। इस पर वेलेज़ली ने युद्ध की घोषणा कर दी।) वेलेज़ली ने निज़ाम के साथ यह समझौता कर लिया कि हैदराबाद के फ़्रान्सीसी सैनिकों को हटाकर उनकी जगह अंग्रेज़ सैनिक रख लिए जाएँ। पेशवा और निज़ाम दोनों ने सन्धि की शर्तें पूरी कर दीं। सिन्धिया और नागपुर के राजा ने वेलेज़ली को मदद देने से और उसके साथ मित्रता करने से इन्कार कर दिया। अंग्रेज़ कमिश्नर मंडल ने टीपू के खिलाफ़ युद्ध करने की अनुमति दे दी।

५ फरवरी, १७९९. वेलेज़ली ने २०,००० अंग्रेज़ सैनिकों, १०० तोपों, २०,००० सिपाहियों और देशी घुड़सवार सेना को लेकर चढ़ाई कर दी; हैरिस कमान्डर-इन-चीफ़ (प्रधान सेनापति) था।—मलावली (मैसूर में) की लड़ाई में, जहाँ टीपू की पराजय हुई थी, कर्नल वेलेज़ली ने (जो बाद में ड्यूक आफ वेलिंगटन हो गया था) पहली बार भारतीय भूमि पर पैर रखा था।

३ मई,[1] १७९९. श्रीरंगपट्टम् पर अधिकार कर लिया गया। टीपू साहेब की लाश (उसके सिर में गोली मार दी गयी थी, इत्यादि) खाई के पास मिली। (वेलेज़ली को मारक्विस बना दिया गया।) वेलेज़ली ने मैसूर को पाँच वर्ष के बच्चे को दे दिया। यह मैसूर के पुराने हिन्दू राजवंश (जिसे टीपू ने सिंहासन-च्युत कर दिया था) से सम्बन्ध

[1] विल्क्स की पुस्तक, "मैसूर का पता लगाने की कोशिश के रूप में दक्षिण भारत के ऐतिहासिक रेखा-चित्र", खण्ड ३, लन्दन १८१७ के अनुसार—४ मई।

रखता था, पूर्णिया को उसका मन्त्री बना दिया गया था। (*यह बालक* १८६८ तक जीवित रहा, फिर उसकी जगह उसका गोद लिया हुआ बेटा गद्दी पर बैठा। वह चार वर्ष का था।) पूर्णिया के साथ जो संधि की गयी थी उसने मैसूर को एक प्रकार से अंग्रेज़ों के अधीन बना दिया। मैसूर को अंग्रेज़ों के अनुशासन और आदेशों के अनुसार एक सैन्यदल रखना था *और राज्य को उनका एक उपहार समझना था। प्रशासन में गड़बड़ी* होने पर अथवा सैन्यदल के लिए वार्षिक सहायता न देने पर, कम्पनी को यह अधिकार था कि सहायता की रकम को पूरा करने के लिए जितना इलाक़ा ज़रूरी समझे उस पर वह अधिकार कर ले, [मैसूर को] कम्पनी को हर साल ३ लाख १० हज़ार पौंड देना था। इसमें से कम्पनी ६६ हज़ार पौंड हर साल *टीपू के वारिसों को देती थी और* [*मैसूर द्वारा*] निज़ाम को [दिये जाने वाले] २ लाख ४० हज़ार पौंड के सालियाने में से २८ हज़ार पौंड मैसूर के प्रधान कमान्डर को देते थे (क्योंकि इस आदमी ने बिना किसी शर्त के आत्म समर्पण कर दिया था) और ६२ हज़ार पौंड पेशवा को देने थे। पेशवा ने उसे लेने से इन्कार कर दिया। इसलिए ज़मीन को निज़ाम और कम्पनी के बीच बाँट लिया गया। बाद में मैसूर में केवल एक ही गम्भीर क़िस्म का विद्रोह हुआ [था]—धूंडिया वाग का विद्रोह, इसे कुछ महीने बाद कुचल दिया गया था और वह स्वयम् मारा गया था।—निज़ाम ने माँग की कि और भी अधिक अंग्रेज सैनिक हैदराबाद भेजे जायँ, उनके ख़र्च के लिए उसने कुछ और ज़िले दे दिये जिन्हें अभी तक 'दे दिये गये ज़िले" कहा जाता है।

१७९९ तंजौर को हड़प लिया गया (देखिए पृष्ठ १७५)। उसकी स्थापना १२० वर्ष पहले शिवाजी के भाई वेंकोजी ने की थी। कर्नाटक को हड़प लिया गया (पृष्ठ १७६, १७७)—१७९५ में दुर्बलि मुहम्मद अली, "कम्पनी के नवाब' की मृत्यु हो गई, १७९९ में उसके उत्तराधिकारी और बेटे, अपव्ययी उमदतुल उमरा की मृत्यु हो गयी, वेलेज़ली ने उसके भतीजे, अज़ीमुल उमरा को नवाब बना दिया, कर्नाटक को उसने कम्पनी को इस आश्वासन पर हड़प कर लेने दिया कि उसके अपने ख़र्चे के लिए कर्नाटक की आमदनी का पाँचवाँ भाग हर साल कम्पनी उसे देती रहेगी।

१७९९-१८०१. अवध के एक भाग को बेशर्मी से हड़प लिया गया।

१८०० वेलेज़ली ने अवध के नवाब, सआदत अली को हुक्म दिया कि अपनी फ़ौजों को वह तोड़ दे, उनकी जगह अंग्रेज़ अफ़सरों के नेतृत्व में अंग्रेज़

सैनिकों या सिपाहियों को रखे और इन ब्रिटिश सेनाओं के खर्चे के लिए रुपया दे ! मतलब था: अवध की पूरी सैनिक कमान को कम्पनी के हाथों में सौंप दो, और गुलाम बनाये जाने के लिए खुद ही तुम पैसा दो ! सआदत ने वेलेज़ली को एक पत्र में लिखा कि देश की स्वतंत्रता को इस तरह बलि चढ़ा देने के बजाय वह इस बात को अधिक पसन्द करेगा कि अपने किसी एक बेटे को गद्दी दे कर वह खुद हट जाय। इसके उत्तर में लिखे गये पत्र में, वेलेज़ली ने साफ़ झूठ बोल दिया। [उसने कहा] कि सआदत अली ने वास्तव में गद्दी छोड़ दी है, कि पूरे शाही खजाने को अब उसके हवाले कर दिया जाना चाहिए और पूरे देश को अंग्रेज़ों का घोषित कर दिया जाना चाहिए। इसके बाद से अब जो भी नवाब होगा उसे अंग्रेज़ गवर्नर जनरल के उपहार के रूप में ही गद्दी मिला करेगी। इस पर सआदत अली ने गद्दी छोड़ने की बात को, जिसे पत्र में केवल एक इरादे के रूप में लिखा गया था, वापिस ले लिया। वेलेज़ली ने फौजें भेज दीं; नवाब को उसकी बात मानने के लिए मजबूर होना पड़ा, उसने अपनी फौजों के एक बड़े भाग को ख़त्म कर दिया और उनकी जगह अंग्रेज़ों को तैनात किया।

नवम्बर, १८००. वेलेज़ली ने माँग की कि शेष देशी सैनिकों को भी हटा दिया जाय और चूँकि उनकी जगह ब्रिटिश रेजीमेन्टें रखी जायेंगी, इसलिए आर्थिक सहायता को ५५ लाख से बढ़ाकर ७६ लाख रुपया कर दिया जाय। नवाब व्यर्थ ही कहता रहा कि इतनी भारी मदद वह "नहीं दे सकता" ! इसके बाद उसने [अंग्रेज़ों को] इलाहाबाद, आजमगढ़, गोरखपुर तथा दक्षिणी दोआब और कुछ और इलाक़ों को देकर इस मदद के भार से अपने को मुक्त किया। इन सब की मिल कर सालाना आमदनी १३ लाख ५२ हज़ार ३४७ पौंड थी। हेनरी वेलेज़ली, गवर्नर जनरल के भाई (जो बाद में लार्ड काउले हो गया था) की देख-रेख में बने एक कमीशन ने देश को अच्छी तरह कब्ज़े में ले लिया।

१८००. काबुल का शासक ज़मान था (यह उस अहमद ख़ाँ अब्दाली के बेटे तैमूरशाह का लड़का था जिसने १७५७ में दिल्ली पर अधिकार कर लिया था और १७६१ में पानीपत के युद्ध के बाद, काबुल को [फिर से]

---

[1] यहाँ पर मार्क्स ने जिस पुस्तक के आधार पर यह लिखा है उसमें एक ग़लती थी : यह शहर काबुल नहीं कंधार था। जेम्स मिल जैसे अंग्रेज लेखक इसी वजह से काबुल को अहमदशाह की राजधानी मानते हैं यद्यपि उसने कंधार में राज्य किया था और वह वहीं मरा था।

जीत लिया था और वहाँ पर दुर्रानी राजवंश की [फिर] स्थापना कर दी थी), वह टीपू सुल्तान के साथ बातचीत चला रहा था और कम्पनी डर रही थी कि कहीं वह हमला न कर दे। यह मुख्य कारण था जिसमे वेलेजली ने, शत्रु के बढाव को रोकने की गरज से, अवध को हड़प लिया था। ज़मान कई बार सीमा पर अपनी सेनाएँ लाया हिन्दुस्तान के मुसलमानो से "इस्लाम के रक्षक" के रूप मे उसने अपीलें की और भिन्न-भिन्न हिन्दू राजाओ तक से उसे सहायता के आश्वासन मिले थे। उधर पूर्व मे नेपोलियन षड्यन्त्र रच रहा था। कलकत्ते के "दफ्तरी छोकरे" फ्रान्स, फ़ारस और अफ़ग़ानिस्तान के मिल जाने के खयाल से ही काँप उठे। इसीलिए फ़ारस मे कैप्टन मालकम की देख-रेख मे जो दूतावास था [उसने] बेशुमार रुपया खर्च किया। "शाह से लेकर ऊँट चलाने वाले तक" हर चीज को उसने "खरीद लिया", और निम्न सन्धि करा लेने मे कामयाब हो गया फारस का बादशाह हर फ़्रान्सीसी को फ़ारस से निकाल बाहर करेगा, भारत पर किये जाने वाले तमाम हमलों को बन्द कर देगा और, जरूरत होने पर, हथियारो से उनको रोकेगा, विदेशी व्यापार की जगह अब अग्रेज़ों के व्यापार को पूरा सरक्षण देगा। इस सन्धि पर तेहरान मे दस्तखत हुए थे।

१८०२. वेलेजली ने कमिश्नर मण्डल को त्यागपत्र दे दिया, किन्तु उसके आग्रह मे १८०५ तक [भारत मे] बना रहा। असल बात यह थी कि भारत मे निजी व्यापारियो के अधिकारो का वह विस्तार करना चाहता था और इसी चीज को लेकर कम्पनी से उसने झगडा कर लिया था।

शताब्दी का प्रारम्भ। अग्रेज़ों के अलावा [भारत मे] केवल एक और बडी शक्ति [थी]—मराठो की। ये पाँच बडे दलो मे बँटे हुए थे जो अधिकाशतया आपस मे लडते रहते थे: (१) पेशवा, मराठों का बरायनाम सर्वोच्च नेता, बाजीराव था। वह पूना मे शासन करता था। छोटे-छोटे राज्य, जिनके नाम यहाँ नहीं दिये जा रहे हैं, अर्ध स्वतत्र थे; और वंशानुगत महाराजा के रूप मे सामन्ती ढग से आधे तौर से वे पेशवा के अधीन थे। (२) दौलतराव सिंधिया, [यह] मराठा वश का सबसे शक्तिशाली प्रतिनिधि [था], यह ग्वालियर मे रहता था और दिल्ली, आदि पर अधिकार रखता था। (३) जसवन्तराव होल्कर—यह इंदौर मे था, सिंधिया का जानी दुश्मन था। (४) रघुजी भोंसले, नागपुर का राजा, जो कुछ मिलने पर किसी से भी लडने के लिए तैयार रहता था।

(५) फतेसिंह, गुजरात का गायकवाड़, जो मराठा राजनीति में मुश्किल से ही कभी भाग लेता था।

१८००. नाना फड़नवीस की जेल में मृत्यु हो गयी।—सिंधिया ने पूना का परित्याग कर दिया, क्योंकि होल्कर ने सागर नगर को (जो इन्दौर में था और सिंधिया का था) लूट डाला था और रुहेले सरदार अमीर ख़ाँ से मिलकर मालवा को, जो सिंधिया का था, तबाह कर डाला था।—**सिंधिया और होल्कर की फौजों में उज्जैन (मालवा) में मुठभेड़ हुई, सिंधिया हार गया** ; उसने सहायता के लिए पूना सन्देश भेजा और—

१८०१—में, वहाँ से सर्जीराव घटके के नेतृत्व में उसकी सहायता के लिए सैनिक आ गये; संयुक्त सेनाओं ने **१४ अक्टूबर को होल्कर को हरा दिया,** उसकी राजधानी इंदौर पर उन्होंने चढ़ाई कर दी, उसे लूट डाला ; होल्कर भागकर खान्देश चला गया, रास्ते में आस-पास के तमाम इलाके को उसने वीरान बना दिया ; वहाँ से चंदौर की तरफ़ बढ़ गया और वहाँ से उसने पेशवा के पास सन्देश भेजा कि अपनी तमाम फौज को लेकर वह आ रहा है, सिंधिया से उसकी वह रक्षा करे।

१८०२. बाजीराव ने—जिसने होल्कर के भाई नौजवान लुटेरे सरदार **विठोजी** की, जिसे उसने थोड़े ही दिन पहले पकड़ा था, अत्यन्त हिंस्र ढंग से हत्या कर दी थी—इस सन्देश को लड़ाई की खुली घोषणा को छिपाने का केवल एक बहाना समझा। पूना में स्थित ब्रिटिश रेजीडेन्ट, **कर्नल क्लोज़** के होल्कर से लड़ने के लिए **कम्पनी के हथियारों की मदद के प्रस्ताव को** पेशवा ने दृढ़तापूर्वक ठुकरा दिया। सिंधिया तेजी से आगे बढ़ा और पूना के समीप उसने अपना पड़ाव डाल दिया।

२५ **अक्टूबर, १८०२. ज़बर्दस्त लड़ाई।** होल्कर जीत गया ; पेशवा सिंगार भाग गया, जो अहमदनगर से लगभग ५० मील दूर था; वहाँ से वह बेसिन (जो कम्पनी का था) चला गया। पूना में अपने दो महीने के निवास काल में, होल्कर ने पेशवा के भाई, **अमृतराव** को गद्दी पर बैठा दिया और **सिंधिया उत्तर की ओर** [चला गया]।

१८०२. **बाजीराव और कर्नल क्लोज के बीच बेसिन की संधि : तै हुआ कि पेशवा तोपों के साथ ६,००० घुड़सवारों को अपने यहाँ** रखेगा और उनके खर्चे के लिए **दक्षिण के कुछ ऐसे ज़िले** कम्पनी को वह सौंप देगा जिनसे कम्पनी को २५ लाख[1] रुपये सालाना की आमदनी हो सके ; अपनी **नौकरी** में

[1] स्मिथ के कथनानुसार, २६ लाख, "द आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इंडिया", १९२३।

अंग्रेजों को छोड और किसी योरोपियन को वह नहीं रखेगा , निज़ाम और गायक्वाड के खिलाफ जो उसके दावे थे उन सबको गवर्नर जनरल के पास पच फैसले के लिए भेज देगा, उसकी सह स्वकृति के बिना कोई राजनीतिक परिवर्तन नहीं करेगा , दोनो फ़रीक अपने को आपस में एक सुरक्षात्मक सन्धि मे बँधा समझेंगे ।—तमाम मराठो म इस ' पूरक सन्धि" को लेकर क्रोध की लहर फैल गयी , उन्होने कहा कि यह सधि उनकी स्वतन्त्रता का अन्त कर देगी और अंग्रेज़ो को उच्चतर शक्ति मानने के लिए उन्हे मजबूर कर देगी ।—इसलिए सिंधिया ने कुछ कदम उठाये, उसने—
१८०३—मे, अंग्रेज़ो के खिलाफ़ मराठा सघ को [स्थापना की], इस सघ म सिंधिया, अमृतराव, भोंसले (नागपुर का राजा) थे, होल्कर शामिल होने के लिए राज़ी हो गया था किन्तु बाद मे उसने अपना वादा पूरा नहीं किया, गायकवाड तटस्थ बना रहा ।

महान् मराठा युद्ध,
१८०३-१८०५

१७ अप्रैल, १८०३ सिंधिया और भोसले नागपुर म मिले, फौरन अमृतराव से मिलने के लिए वे पूना रवाना हो गये ।— लार्ड वेलेज़ली ने फौजो का तैयार होने का हुक्म दे दिया, और जनरल वेलेज़ली (वेलिंगटन) न, जो फौजा का वास्तविक नेतृत्व पहली बार कर रहा था, मैसूर सेना (लगभग १२ हज़ार सैनिका) को साथ लेकर—उनसे ज़बर्दस्ती मार्च कराते हुए, पूना पर चढाई कर दी । उसका तथाकथित उद्देश्य बाजीराव को फिर से गद्दी पर बैठाना था। होल्कर चदौर वापिस चला गया, वेलेज़ली ने पूना पर अधिकार कर लिया, अमृतराव भागकर सिंधिया की छावनी में पहुँच गया ।—मित्र मराठा ने पूना पर चढाई कर दी, सम्मेलनों से कोई नतीजा नही निकला, लेकिन, इसी बीच, कुछ महीने बीत गय । तमाम आवश्यक आदश देने के बाद, जनरल वेलेज़ली ने कर्नल कौलिंस को मित्रो के शिविर से वापिस बुला लिया और युद्ध आरम्भ हो गया । जनरल वेलेज़ली के आदेश पर तै हुआ कि जनरल लेक ग्वालियर मे पेरन के कमान म खडी सिंधिया की रिज़र्व सेना पर हमला करे और अन्य दो सेनाएँ भडोच मे सिंधिया के और

कटक (बंगाल प्रेसीडेन्सी) में होल्कर के राज्य पर कब्ज़ा कर ले; हैदराबाद तथा दे दिये गये (सोडेड) ज़िलों की रक्षा के लिए लगभग ३,००० सैनिक पीछे छोड़ दिये गये; मुख्य सेना—जिसमें १७,००० सैनिक थे,—वेलेज़ली के साथ चली गयी।

अगस्त, १८०३. वेलेज़ली ने अहमदनगर पर अधिकार कर लिया; कर्नल डीन हटन ने भड़ौच पर क़ब्ज़ा कर लिया। जनरल लेक ने अलीगढ़ (दिल्ली प्रान्त) के क़िले पर हमला कर दिया और २ सितम्बर को क़िले पर अधिकार कर लिया; ४ सितम्बर को नगर ने हथियार डाल दिये।

३ सितम्बर,[1] १८०३. असई की महान् लड़ाई; मराठों को जनरल वेलेज़ली ने हरा दिया।

लगभग इसी के साथ-साथ, हारकोर्ट ने कटक पर (बंगाल की खाड़ी में) कब्ज़ा कर लिया और स्टीवेंसन ने बुरहानपुर के क़िले पर और सतपुड़ा की पहाड़ियों में स्थित असीरगढ़ पर अधिकार कर लिया; सिंधिया ने वेलेज़ली के साथ समझौता कर लिया; वेलेज़ली ने स्टीवेन्सन की भड़ौच की सेना के साथ मिलकर भोंसले के खिलाफ़ गाविलगढ़ के मजबूत क़िले पर चढ़ाई कर दी।

२८ नवम्बर,[2] १८०३. अरगांव (इलिचपुर के समीप) की लड़ाई। वेलेज़ली की जीत हुई, भोंसले भाग गया, कर्नल स्टीवेन्सन को नागपुर (बरार की राजधानी) पर चढ़ाई करने के लिए भेज दिया गया; भोंसले ने सन्धि की प्रार्थना की, इसलिए—

८ दिसम्बर,[3] १८०३ को—भोंसले और ईस्ट इंडिया कम्पनी की तरफ़ से माउन्ट स्टुआर्ट एलफिन्सटन के बीच देवगांव की सन्धि हुई : अंग्रेजों ने बरार के इलाक़ों को छोड़ दिया; राजा ने कटक कम्पनी को दे दिया; निज़ाम को कई ज़िले दे दिये; तमाम फ्रान्सीसियों और योरोपियनों को, जिनकी इंगलैण्ड से लड़ाई चल रही थी, निकाल दिया; [वादा किया कि] जो भी मतभेद होंगे उन सबको निर्णय के लिए गवर्नर जनरल के पास भेज दिया जायगा।

---

[1] दर्गेस के अनुसार, २३ सितम्बर।
[2] दर्गेस के अनुसार, २९ नवम्बर।
[3] दर्गेस के अनुसार, १७ दिसम्बर।
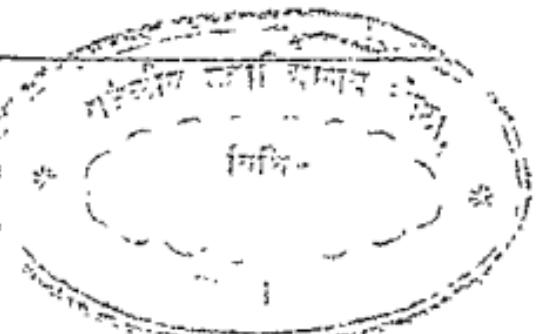
१४ सितम्बर, लेक की जो अलीगढ़ पर अधिकार करने के बाद सीधे दिल्ली की तरफ बढ़ता चला गया था—शहर से ६ मील की दूरी पर फ्रान्सीसी अफसरों के नेतृत्व में काम करने वाली सिंधिया की सेनाओं से मुठभेड़ हो गयी फ्रान्सीसियों को उसने हरा दिया, उसी दिन शाम को उसने दिल्ली पर कब्जा कर लिया और अन्धे शाह आलम को (जो ८३ वर्ष का बूढ़ा था) ब्रिटिश सरक्षण म गद्दी पर बैठा दिया।

१७ अक्टूबर, आगरा ने, जिस पर भरतपुर के राजा का अधिकार था, लेक के सामने आत्मसमर्पण कर दिया।—दुश्मन की दक्षिणी और दिल्ली की भारी सेनाओं के विरुद्ध लेक ने कूच कर दिया भयंकर लड़ाई के बाद लासवाड़ी मे (दिल्ली के दक्षिण में १२८ मील की दूरी पर स्थित एक गाव मे) लेक की विजय हुई, सिन्धिया की हालत खराब हो गयी।

४ दिसम्बर, १८०३ लेक (जो कम्पनी की तरफ से था) और सिंधिया के बीच अञ्जनगांव की सन्धि हुई, सिन्धिया न जयपुर और जोधपुर के उत्तर के अपने तमाम इलाके दे दिये; भड़ौच और अहमदनगर का भी उसन दे दिया, निजाम, पेशवा, गायकवाड़ और कम्पनी के ऊपर अपने सारे दावे उसने छोड दिये, उन राज्यों की स्वतन्त्रता उसे स्वीकार करनी पड़ी जिन्हे कम्पनी स्वतन्त्र मानती थी, तमाम विदेशियों को डिसमिस करने तथा तमाम विवादों को फैसले के लिए कम्पनी के सामने पेश करने की शर्त भी उस माननी पड़ी।—गवर्नर जनरल, वेलेज़ली ने बरार निज़ाम को दे दिया, अहमदनगर पेशवा को, और कटक को कम्पनी के लिए रख लिया, साथ ही साथ भरतपुर, जयपुर और जोधपुर के राजाओं के साथ उसने सन्धियाँ कर ली, गोहद (सिन्धिया के ग्वालियर के इलाके मे स्थित) के राजा के साथ भी उसने सन्धि कर ली—उसे उसने ग्वालियर नगर [देने का वादा किया]; सिंधिया के जनरल, अम्बाजी इंगलिया के साथ उसने संधि कर ली।

१८०४ के प्रारम्भिक भाग मे। होल्कर ने (जिसने अपने वादे के अनुसार मराठा सघ में शामिल होने के बजाय, अपने ६० हज़ार घुड़सवारों की मदद से सिंधिया की अमलदारियों को लूट-पाट डाला था) अंग्रेज़ो के मित्र, जयपुर के राजा के प्रदेश पर हमला करना शुरू कर दिया। इसलिए वेलज़ली और लेक की विजयी सेनाएँ उसके पास पहुँची, होल्कर जयपुर से पीछे हटकर चम्बल नदी के उस पार चला गया, वहाँ कर्नल मौन्सन

[1] डंकन के अनुसार, ३० दिसम्बर।

की, जिसे एक छोटे सैन्य दल के साथ उसका पीछा करने के लिए भेजा गया था, उसने ऐसी पिटाई की कि मौन्सन की तोपें, सारा सामान, छावनी का साज-सामान और डिवीज़न की रसद, आदि सब उससे छिन गयी; और उसकी पैदल सेना के लगभग पांच बटालियन काम आ गये। अन्त में, अपने कुछ बचे-खुचे अभागे लोगों को लेकर वह आगरा आया।—होल्कर ने अब—बिना किसी सफलता के—दिल्ली पर हमला किया, और आस-पास के इलाके को लूट डाला; जनरल लेक पूरी तेजी से उसके पास पहुंच गया।

१३ नवम्बर, १८०४. डीग की लड़ाई (भरतपुर के इलाक़े में); होल्कर हरा दिया गया, वह मथुरा (जमुना नदी के तट पर, आगरा के उत्तर में) भाग गया; विजय के बाद डीग के क़िले को, जो भरतपुर के राजा का था और जिसने लड़ाई के दिनों में अंग्रेज़ों पर गोलाबारी किया था, हमला करके अधिकार में ले लिया गया।

१८०५. लेक ने भरतपुर पर हमला किया, किन्तु कोई सफलता नहीं मिली; इस पर भी राजा ने अंग्रेज़ों के साथ सुलह कर ली।—होल्कर सिंधिया के साथ मिल गया; सिंधिया अब अपनी सेनाओं के साथ-साथ, होल्कर, भरतपुर के राजा और अमीर खाँ रुहेले की सेनाओं के एक नये संयुक्त दल का नेता था। वास्तविक बात यह है कि जब गवर्नर जनरल, वेलेज़ली ने गोहद के राजा को उसकी पुरानी पुश्तैनी राजधानी ग्वालियर[1] दे दी थी तो सिंधिया ने इसका विरोध किया था। उसने कहा था कि उसके जनरल अम्बाजी इंगलिया ने अंग्रेज़ों के साथ बिना उससे पूछे ही सन्धि कर ली थी और वह शहर उनको सौंप दिया था। जनरल वेलेज़ली ने कहा कि सिंधिया की बात सही है, किन्तु गवर्नर जनरल वेलेज़ली ने सिंधिया की ग्वालियर को वापिस लौटाने की मांग को मानने से इन्कार कर दिया और उसे बहुत बुरी तरह से डाँटा। इसके फलस्वरूप, सिंधिया के नेतृत्व में एक नये संघ का निर्माण हुआ। सिंधिया अपने ४० हज़ार सैनिकों को लेकर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ फिर लड़ाई में कूद पड़ा। किन्तु वेलेज़ली के उत्तराधिकारी, सर जौर्ज बार्लो ने ग्वालियर सिंधिया को वापिस लौटा दिया और उसके साथ नयी सन्धि कर ली।

1 यहाँ पर जिस पुस्तक का मार्क्स ने उपयोग किया है उसमें एक ग़लती है। वेलेज़ली ने गोहद के राजा को ग्वालियर देने का वादा तो किया था, किन्तु उसका इरादा ऐसा करने का नहीं था। उसने वहां पर एक ब्रिटिश सेना रख छोड़ी थी।

२० जुलाई, १८०५ गवर्नर जनरल वेलेजली का कार्य-काल समाप्त हो गया, इसलिए वह इगलैण्ड चला गया।

वेलेजली के प्रशासन सम्बन्धी सुधार। सदर दीवानी अदालत के स्थान पर, जिसे १७९३ म (सर्वोच्च न्यायालय की जगह) लार्ड कार्नवालिस ने स्थापित किया था और जिसकी अध्यक्षता दरवाजे बन्द करके गवर्नर जनरल तथा कौन्सिल मे सदस्य किया करते थे, वेलेज़ली ने—

१८०१—मे, एक अलग अदालत की स्थापना की जो पब्लिक के लिए खुली रहती थी और जिसकी अध्यक्षता नियमित रूप मे नियुक्त किये गये मुख्य न्यायाधीश करते थे। इनम स पहला न्यायाधीश कोलबुक था। उसी वर्ष, मद्रास म सदर दीवानी अदालत के स्थान पर एक सर्वोच्च न्यायालय [की स्थापना की गयी थी]। इसकी स्थापना उसी सिद्धान्त पर की गयी थी जो कार्नवालिस के पहले कलकत्ते म व्यवहार मे लाया जाता था। यह न्यायालय १८६२ तक कायम रहा था, उस साल उसकी जगह हाई कोर्ट ने ल ली थी। जौर्ज तृतीय द्वारा चलायी गयी रिकौर्डर की अदालत का अन्त कर दिया गया और उसके अधिकारो को नये मुख्य न्यायाधीशों तथा अन्य छोटे न्यायाधीशों ने ग्रहण कर लिया (जौर्ज तृतीय के ३९वें और ४० वें क़ानून के द्वारा, देखिए ७६। नयी अदालत को दिवालिए कर्ज़दारों के मामला मे फैसला करने का अधिकार इसी कानूनने दे दिया—य ऐसे अपराधी थे जिनकी तरफ तब तक भारत मे कोई विशेष ध्यान नही दिया गया था)। इसी कानन न भारत की प्रेसीडेन्सी वाले शहरों के मुख्य न्यायालयो को उप नाविक न्यायक्षेत्र के मुकदमो मे फैसला करने का अधिकार प्रदान कर दिया। इस तरह, नये योरोपीय (अंग्रेज़ी) तत्वो की हर जगह वृद्धि हो गयी।

लार्ड वेलेज़ली ने कलकत्ते मे एक बडे कालेज की, जिसका नाम फोर्ट विलियम का कालेज रखा गया, स्थापना की। इसका उद्देश्य यह था कि (१) इगलैण्ड से जो अनाडी नौजवान सिविलियन (नागरिक अधिकारी) भेजे जाते थे, उनके लिए शिक्षा की एक सस्था का काम करे, (२) देशी लोगों के लिए कानून और धर्म सम्बन्धी विषयो पर एक बहस भवन का का काम करे। ईस्ट इडिया कम्पनी के डायरेक्टरों ने कानज के काम की देख भाल की ज़िम्मदारी शिक्षा विभाग के हाथ मे रखी। साथ ही साथ कम्पनी ने भारत भेजने से पहले अपने लिपिकों (क्लर्कों) को शिक्षा देने के लिए इगलैण्ड म हेलबरी कालेज की स्थापना की।

[९] लार्ड कार्नवालिस का द्वितीय प्रशासन काल, १८०५

(वह ३० जूलाई को कलकत्ता पहुँचा था)

१ अगस्त, कार्नवालिस ने अपने पद के अधिकार-चिह्न को ग्रहण किया। उसने कहा कि उसका सिद्धान्त राज्यों को हड़पने का नहीं है। उसने कहा कि यमुना के पश्चिम के तमाम इलाक़ों को वह छोड़ देगा। लेक ने (जो बैरन और फिर १८०७ में, विस्काउन्ट बना दिया गया था) इसका विरोध किया।

५ अक्टूबर। बूढ़े कार्नवालिस की मृत्यु हो गयी; कौंसिल का वरिष्ठ सदस्य सर जौर्ज वार्लो, जो राज्यों को हड़पने का कट्टर विरोधी था, उसका उत्तराधिकारी बना।

....

[१०] सर जौर्ज वार्लो का प्रशासन, १८०५–१८०६

१८०५ का अन्तिम भाग। सिंधिया के साथ सन्धि : इस शर्त पर कि अंजगाँव की सन्धि पर वह क़ायम रहेगा, सिंधिया को गोहद और ग्वालियर मिल गये; वार्लो ने गारन्टी की कि बिना सिंधिया की रज़ामन्दी के राजपूत अमलदारी के उसके किसी भी सामन्ती राज्य के साथ ब्रिटिश सरकार कोई सन्धि नहीं करेगी। सिंधिया के अधीन बन जाने के बाद, होल्कर ने अपने शिविर को छोड़ दिया और अपनी आम क्रूर निर्दयता के साथ सतलज के समीप के प्रदेश को लूटना और तबाह करना शुरू कर दिया; सतलज पार के ज़बर्दस्त सरदार, रणजीत सिंह की सहायता लेकर लेक ने उसका पीछा किया; होल्कर बुरी तरह हार गया, और सुलह की प्रार्थना करता हुआ वहाँ से भाग खड़ा हुआ।

जनवरी, १८०६. लार्ड लेक ने होल्कर के साथ सन्धि पर दस्तख़त कर दिये। इस सन्धि के मातहत रामपुरा, टोंक, बूंदी, तथा बूंदी की पहाड़ियों के उत्तर की तमाम जगहों को होल्कर को छोड़ देना पड़ा। सर जौर्ज वार्लो ने इस सन्धि पर जिससे बूंदी—हड़प ली जाकर !—कम्पनी को मिल

जाती थी, दस्तख़त करने से इन्कार कर दिया। अंग्रेज सैनिकों को उसने आर्डर दिया कि चम्बल नदी के उस पार से वे वापिस लौट आएं। ऐसा होते ही होल्कर ने बूँदी के राजा के राज्य को फिर लूट डाला।—इसी तरह अंग्रेज़ों के मित्र, जयपुर के राजा को बार्लो ने मराठा सिपाहियों के हवाले कर दिया।—इस पर लार्ड लेक ने अपने तमाम नागरिक अधिकारों से त्यागपत्र देकर यह कहते हुए उन्हें बार्लो को सौंप दिया कि अगर उसने सन्धि करने के फौरन बाद ही सदर दफ्तर में उसे खत्म कर दिया जाता है तो आगे से फिर कभी कोई सन्धि वह नहीं करेगा।

होल्कर ने क्रोधावेश में अपने भाई और भतीजे की हत्या कर दी थी, इसलिए उसकी मानसिक स्थिति अस्थिर थी, १८११ में पागलपन की हालत में इंदौर में उसकी मृत्यु हो गयी।

१८०७ बार्लो को हटाकर उसके स्थान पर लार्ड मिन्टो की नियुक्ति की गयी, वह भी यह प्रतिज्ञा करके भारत आया कि देशी राज्यों के अन्दरूनी मामलों में हस्तक्षेप नहीं करेगा। मिन्टो ३१ जुलाई, १८०७ को कलकत्ता पहुँचा। बार्लो का मद्रास सरकार के यहाँ तबादला कर दिया गया।

[११] लार्ड मिन्टो का प्रशासन,
१८०७—१८१३

जुलाई, १८०७ विल्लौर (मद्रास प्रेसीडेन्सी) में बगावत, विल्लौर के क़िले में टीपू के बेटों को क़ैद [कर रखा गया था]। यह बग़ावत उन्हीं की तरफ से मैसूर के उनके नौकरों-चाकरों ने की थी। उन्होंने टीपू का झंडा गाड़ दिया। कर्नल गिलेस्पी ने अर्काट के घुड़सवार रेजीमेन्ट की मदद से उनको कुचल दिया, अनेकों को मार डाला।—किन्तु, लार्ड मिन्टो ने उनके साथ "सद्भावना का" व्यवहार किया।

१८०८. रणजीत सिंह ने—जो एक सिख, तथा सतलज के पश्चिम में सम्पूर्ण प्रदेश का राजा था (उसने लाहौर के राजा के रूप में जीवन आरम्भ किया था, लाहौर का ज़िला उसे विजयी अफ़गान, ज़मान शाह ने दिया था)—सतलज पार करके सरहिंद की अमलदारी में प्रवेश किया। यह अमलदारी ब्रिटिश संरक्षण में [थी]। फिर उसने पटियाला के राजा के प्रदेश पर

हमला कर दिया। उसका मुक़ाबला करने के लिए मिन्टो ने **कर्नल मेटकाफ़** को भेजा। उसने **रणजीत सिंह के साथ पहली सन्धि की।** रणजीत सिंह सतलज पार वापिस लौट गया, **नदी के दक्षिण के जितने इलाक़े पर उसने क़ब्ज़ा किया था उसे उसने वापिस कर दिया।** लेकिन अंग्रेज़ों को भी यह आश्वासन देना पड़ा कि **सतलज के उत्तरी तट की सिख अमलदारी** को वे कभी हाथ नहीं लगाएँगे। रणजीत सिंह ने ईमानदारी से अपने वादों को पूरा किया।

१८०६. अमीर ख़ाँ ने, जो अब **पठानों के डाका डालने वाले क़बीले** का सर्वमान्य नेता था, बरार के राजा, **भोंसले** के इलाक़ों को लूट डाला (अंग्रेज़ों का सहयोगी होने के नाते भोंसले ने मिन्टो से मदद की अपील की, लेकिन मुश्किल से भेजे गये अंग्रेज़ों के सैन्यदल के नागपुर पहुँचने से पहले ही दुश्मन को **सतपुड़ा की पहाड़ियों** की तरफ़ उसने खदेड़ कर भगा दिया।

फ़ारस में दूसरा राजदूतावास : (नेपोलियन के पाशविक डर से) धन-सम्पदा बटोरने के विरोधी सर हरफ़ोर्ड जोन्स को लन्दन से और **सर जौन मालकम को कलकत्ता से** राजदूत के रूप में तेहरान भेज दिया गया [१८०८]। उनमें कौन बड़ा है इसको लेकर झगड़ा हुआ, आदि (पृष्ठ १६४)। बाद में दोनों को हटाकर उनके स्थान पर एक आवासी राजदूत के रूप में इंगलैण्ड से **सर गोर औसले** को तेहरान भेजा गया। साथ ही साथ—

काबुल को लार्ड मिन्टो ने **तीसरा दूत-मण्डल** भेजा। उस समय **ज़मान शाह** का भाई और उत्तराधिकारी **शाहशुजा** गद्दी पर था। राजदूत का नाम **माउन्ट स्टुआर्ट एल्फिंस्टन था,** [वह] असफल हुआ, क्योंकि **शाहशुजा** को एक विद्रोह के द्वारा गद्दी से हटा दिया गया; उसके उत्तराधिकारी, **महमूद** ने **फ़्रान्सीसियों और रूसियों के संरक्षण** को स्वीकार कर लिया।

मद्रास प्रेसीडेन्सी : यहाँ भी **फ़्रान्स** की वजह से बराबर घबराहट रहती थी।—कुछ समय तक वहाँ पर एक नियम का चलन था जिसके अन्तर्गत **कमान्डिंग अफ़सरों को इस बात का अधिकार था कि** उनके **रेजीमेन्टों के लिए जिन तम्बुओं की आवश्यकता हो उनकी वे स्वयम् व्यवस्था कर लें।** यह "आमदनी" का एक बढ़िया साधन था। **सर जौर्ज बार्लो** ने, जो अब मद्रास का प्रेसीडेन्ट था, इस परेशान करने वाली चीज को सख़्ती से ख़त्म कर दिया; उसने कमान्डर-इन-चीफ़ (प्रधान सेनापति) **जनरल मेकडोवेल** को **क्वार्टर मास्टर जनरल** (सामग्री महाध्यक्ष), **कर्नल मुनरो** को **गिरफ़्तार करने** के

जुर्म म डिसमिस कर दिया। कर्नल मुनरो ने वार्लो के आदेश से एक रिपोर्ट म तम्बू की प्रथा को धोखा देने जैसी एक चीज कहकर भर्त्सना की थी। इसके फौरन ही बाद वार्लो ने उच्च स्तर के चार अफसरों को निलम्बित कर दिया। अब सारी सेना म बग़ावत की भावना उमड पडी [और अफसरो ने] गवर्नर के पास अत्यन्त उद्दण्डतापूर्ण विरोध पत्र भेजे। देशी सिपाहियों की मदद से वार्लो ने शीघ्र ही अफ़सरो को ठण्डा कर दिया।

१८१० फ़ारस के डाकुओं के विरुद्ध अभियान। १८१० के आरम्भिक काल से ही फारस की खाडी मे जल-दस्युओ के अनेक गिरोह घूमते थे। वे अग्रेज़ो के व्यापार को नुकसान पहुँचा रहे थे। इसके बाद उन्होने कम्पनी के एक जहाज़—मिनरवा—को पकड लिया। मिन्टो ने बम्बई से एक सैन्य दल भेजा, उसने मलिआ (गुजरात म) स्थित जल-दस्युओं के सदर दफ्तर पर अधिकार कर लिया और, मसक्त के इमाम की मदद से, फारस मे सिराज के उनके मजबूत गढ पर धावा कर दिया और उसे जला दिया। इसके बाद डाकुओ का "सघ" छिन्न-विच्छिन्न हो गया।

मकावो पर चढ़ाई। कम्पनी के प्रभाव के कारण, जो व्यापारिक प्रतिद्वन्द्विता मे जली जा रही थी, मिन्टो ने वहाँ की पुर्तगाली बस्ती को नष्ट करने के लिए एक जहाज़ मकावो भेज दिया। यह बस्ती चीनी सम्राट के सरक्षण मे थी। वहाँ जो रेजीमेन्ट भेजा गया था वह बिना कोई सफलता प्राप्त किये ही बगाल लौट आया। चीन के सम्राट ने मकावो मे होने वाले अग्रेज़ों के व्यापार को फ़ौरन ख़त्म कर दिया।

मारीशस तथा बोर्बन पर अधिकार।—इगलैण्ड के साथ फ्रान्सीसी युद्ध के समय, मारीशस और बोर्बन के द्वीपों पर फ्रान्सीसी हमलों की वजह से कम्पनी के व्यापार को अत्यधिक हानि उठानी पडी थी। इस चीज़ का अन्त करने के लिए, मिन्टो ने कर्नल कीटिंग की कमान मे एक सैन्य दल रवाना किया। इस सैन्य दल ने सबसे पहले मारीशस से २०० मील के फासले पर स्थित रौडरीग्स के द्वीप पर अधिकार कर लिया।

मई, १८१० उसने रौडरीग्स को अपनी कार्रवाइयों का अड्डा बना लिया, बोर्बन के द्वीप पर पहला हमला किया गया, सैनिक उतार दिये गये, सेन्ट पौल्स के शहर और बन्दरगाह पर हमला किया गया, चार तोपो को ध्वस्त कर दिया गया, तीन घटे की लडाई के बाद, स्थान पर क़ब्ज़ा कर लिया गया। अग्रेज़ो के जहाज़ी बेडे स घिरे हुए दुश्मन के जहाज़ी बेडे ने आत्म-समर्पण कर दिया।

जुलाई. बोर्बन के द्वीप में कई दूसरे फ्रान्सीसी केन्द्रों पर अधिकार कर लिए जाने के बाद, उसकी राजधानी सेन्ट डेनिस का पतन हो गया, और सम्पूर्ण फ्रान्सीसी सेना ने हथियार डाल दिये। कर्नल विलम्बी को कमान सौंप कर वहाँ छोड़ दिया गया, शस्त्रागार को अंग्रेज़ों का भंडार बना दिया गया। यहाँ से मारीशस, अर्थात इले द फ्रान्स पर आक्रमण करने की तैयारियाँ की गयीं। समुद्र में, फ्रान्सीसियों ने अंग्रेज़ों के ग्यारह जहाज़ों पर क़ब्ज़ा कर लिया।

२९ अक्टूबर, १८१०. मारीशस के खिलाफ़ अभियान शुरू : एक हज़ार सैनिक उस पार उतार दिये गये; ३०[1] अक्टूबर को फ्रान्सीसी कमान्डर ने मारीशस का समर्पण कर दिया; अंग्रेज़ अब तक उसे अपने क़ब्ज़े में रखे हुए हैं, किन्तु बोर्बन द्वीप को १८१४ में फ्रान्सीसियों को वापिस दे दिया गया था।

१८११. मिन्टो ने जावा के ख़िलाफ़ सैन्य दल रवाना किया। सबसे पहले मसालों के टापू अम्बोयना पर उसने क़ब्ज़ा किया; यहाँ १६२३ में डच लोगों ने भयंकर क़त्ले-आम किया था। इसके तुरन्त बाद पाँच छोटे-छोटे मलक्का द्वीपों पर उसने अधिकार कर लिया; इसके फ़ौरन बाद बान्डा नीरा पर अधिकार कर लिया गया (यह भी एक मलक्का द्वीप था)। (इस पूरी चढ़ाई की वजह यह थी कि ईस्ट इंडिया कम्पनी डचों के व्यापार को लालच की दृष्टि से देखती थी)।

४ अगस्त, १८११. रात में अंग्रेज बटाविया (जावा की राजधानी) पहुँच गये। रक्षा के लिए डच सैन्य शक्ति फोर्ट कार्नेलिस में इकट्ठी हो गयी।

५ अगस्त. लड़ाई, और कर्नल गिलेस्पी द्वारा बटाविया पर अधिकार। इसके तुरन्त बाद ही, अभियान के कमाण्डर, सर सेमुअल आकमुटी ने जावा के समस्त सुदृढ़ स्थानों पर अधिकार कर लिया। फ्रान्सीसी और डच लोगों ने हार मान ली, सर स्टैम्फोर्ड रैफिल्स को जावा का गवर्नर नियुक्त कर दिया गया।

पिण्डारियों का उदय : ये घोड़ों पर सवार डाकू थे, पेशे से चोर। (पिण्डारी = पहाड़ी, मालवे का—जो होल्कर, सिंधिया और भोपाल के अधिकार में था—एक क़बीला (peuplade)—विंध्य पर्वतमाला में उनमें डाकुओं के गिरोह (ramas), भागे हुए अपराधी, भगोड़े सिपाही, दुस्साहसिक लड़ाके थे; पहले पहल वे १७६१ में पानीपत की लड़ाई के समय मराठों की तरफ़

---

[1] बर्गेस के अनुसार, ६ दिसम्बर।

दिखाई पड़े थे।) पेशवा बाजीराव के नेतृत्व मे वे हमेशा उस तरफ़ हो जाते थे जिस तरफ से उन्हें सब से भारी रकम मिलती थी।

१८०८ दो भाई, हेरन और बारन (हीरू और बूडन) उनके नेता थे, उनकी मृत्यु के बाद, चीतू नामक एक जाट ने उनकी कमान सँभाल ली, और अपने को राजा कहलवाने लगा, उसकी सहायता करने के उद्देश्य से सिंधिया ने उसे एक छोटा सा इलाका दे दिया, इसी तरह, दूसरे पिण्डारी सरदार भी छोटी-छोटी जागीरों के मालिक बन गये। दो वर्ष बाद, चीतू रहेन अमीर खाँ के साथ मिल गया, और ६० ००० की सेना लेकर उन्होंने मध्य भारत को लूटना शुरू कर दिया। नियंत्रण बोर्ड ने लार्ड मिन्टो को उन पर हमला करने की अनुमति देने से इन्कार कर दिया। इस इन्कार का आधार कार्नवालिस का हस्तक्षेप न करने का सिद्धांत था।

मद्रास में रैयतवारी प्रथा, जिसकी स्थापना सर टामस मुनरो ने की थी, पहले उसे मद्रास प्रेसीडेन्सी मे मालगुजारी की व्यवस्था के आधार के रूप में स्वीकार किया गया था, स्थायी क़ानून का रूप उसे १८२० तक नहीं दिया गया था। उस पर निम्न प्रकार अमल किया जाता था - सरकार के राजस्व अधिकारी वर्ष के आरम्भिक भाग मे उस समय वार्षिक बन्दोबस्त करते थे जिस समय कि फसल इतनी काफी उग आती थी कि उसकी मात्रा तथा प्रकृति का अनुमान किया जा सके, इस समय, सरकारी कर की मात्रा उपज के एक तिहाई भाग के बराबर होती थी, यह कर काश्तकार के उस पट्टे या सनद पर लिख दिया जाता था जो उसे हर साल दिया जाता था, फिर उसे चुकाने की जिम्मेदारी उसी काश्तकार पर होती थी। यदि मौसम की ख़राबी की वजह से फसल नहीं होती थी तो आदेश हो जाता था कि पूरे गाँव के ऊपर इस तरह से टैक्स लगा दिया जाय कि जिस जमीन पर फ़सल नहीं हुई थी उसके कर को भी वह पूरा कर दे; यदि [यह विश्वास हो जाता था कि] फसल के ख़राब होने का कारण उस रैयत की जान-बूझ कर की गयी शरारत थी जिसने, पट्टा ले लेने के बाद, अपनी ज़मीन पर जान-बूझ कर खेती नहीं की थी, तो कलक्टर को इस बात का अधिकार होता था कि वह उसको जुर्माने या शारीरिक यातना तक की सज़ा दे दे। पट्टा रोक देने या देने का अक्षुण्ण अधिकार उसके पास होने की वजह से कलक्टर का हर साल हर जिले पर पूर्ण नियंत्रण रहता था।

अक्टूबर, १८१३ लार्ड मिन्टो इंगलैण्ड वापिस चला गया, उसके स्थान पर

मारक्विस हेस्टिंग्ज, जो उस वक़्त मोयरा का अर्ल कहलाता था, की [नियुक्ति की गयी]।

पार्लमिन्ट की कार्यवाही। १ मार्च, १८१३—ईस्ट इंडिया कम्पनी के पट्टे की मियाद फिर खत्म हो गयी।

२२ मार्च, १८१३. इस प्रश्न पर ब्योरे से विचार करने के लिए कामन्स सभा ने एक समिति बना दी। इंडिया हाऊस में रहने वाले डायरेक्टर मंडल ने प्रार्थना की कि विजित देश पर ताज का नहीं, कम्पनी का अधिकार था; [व्यापार के सम्बन्ध में] उनकी [कम्पनी की] इजारेदारी आवश्यक थी; उन्होंने मांग की कि पहले ही वाले आधार पर उन्हें २० साल की मियाद के लिए फिर से नया पट्टा दे दिया जाय।—कमिश्नर मंडल के अध्यक्ष, अर्ल आफ बकिंघमशायर ने इन तमाम दलीलों का विरोध किया। [उन्होंने कहा] भारत इंगलैण्ड की सम्पत्ति है, कम्पनी की नहीं; भारत का व्यापार समस्त ब्रिटिश प्रजा के लिए मुक्त कर दिया जाना चाहिए और कम्पनी की इजारेदारी का अन्त हो जाना चाहिए; दरअसल, इससे भी अच्छा तो यह होगा कि भारत की सरकार को ताज पूरे तौर से अपने हाथों में ले ले।

२३ मार्च, मंत्रिमंडल की ओर से कैसलरीख ने प्रस्ताव पेश किया : कम्पनी के पट्टे को २० साल के लिए बढ़ा दिया जाय; चीनी व्यापार पर कम्पनी की इजारेदारी रहे, किन्तु भारतीय व्यापार, किन्हीं प्रतिबन्धों के साथ, जिससे कि कम्पनी को नुक़सान न पहुँचे, सारी दुनिया के लिए खोल दिया जाय; फौज पर कम्पनी का आधिपत्य बना रहे और अपने नागरिक तथा अन्य नौकरों को नियुक्त करने की सत्ता उसी के पास रहे।

जुलाई का अन्तिम भाग। यह—कैसलरीख का बिल—बहुत थोड़े परिवर्तनों के साथ पास हो गया (अधिक जानकारी के लिए देखिए, पृष्ठ २००)। लार्ड ग्रेनविल ने सरकार से आग्रह किया कि पूरे भारत को वह पूर्णतया अपने हाथों में ले ले और सिविल सर्विस (नागरिक सेवा) में नियुक्तियाँ खुली प्रतियोगिता के द्वारा करे।

इसी साल, कलकत्ते के धर्मक्षेत्र में एक बड़े पादरी की नियुक्ति करके ईसाई धर्म को भारत में खुले तौर से चालू कर दिया गया।

....

[१२] लार्ड हेस्टिंग्ज़ का प्रशासन, १८१३—१८२२

अक्टूबर, १८१३ लार्ड हेस्टिंग्ज़ कलकत्ता पहुँचा। —१८११ में, जसवन्त राव होल्कर की मृत्यु हो गयी। उसकी विधवा, तुलसी बाई, अन्य कई अपने प्रिय पात्रा, आदि के साथ रहने के बाद, चार साल तक लुटेरे पठानों के सरदार, गफूर खाँ के साथ रही थी, इंदौर की सरकार पूरे तौर से उसके कब्जे में [थी]।—१८१३ में सिंधिया ने आस-पास के इलाके को लूटा, [किन्तु] अंग्रेज़ी सरकार की तरफ से ज़रा भी घुड़की मिलने पर वह शान्त हो जाता था।—रुहेले सरदार, अमीर खाँ के पास उस समय भारत की एक सबसे अच्छी सेना [थी], उसमें दुस्साहसी जवाँ मर्दों के उसके अपने गिरोहों के साथ साथ होल्कर की फौजें भी थीं। १८११ में, पिंडारियों के नेता, चीतू से उसका झगड़ा हो जाने के बाद, अमीर खाँ होल्कर की फौजों का कमान्डर-इन-चीफ़ (मुख्य सेनापति) बन गया था।—पेशवा बाजीराव अंग्रेज़ों के जुए के नीचे बेचैन हो रहा था। उसके दरबार में नियुक्त रेज़ीडेन्ट, माउन्ट स्टुआर्ट एलफिंस्टन की तेज़ कार्रवाइयों की वजह से उसकी स्थिति और भी अधिक "नीची" हो गई थी। अहमदाबाद के प्रदेश को लेकर गायकवाड के साथ उसके झगड़े उठे; सन्धि की शर्तों के अनुसार फैसला करने के लिए अंग्रेज़ों को बुलाया गया। इसलिए गायकवाड ने गंगाधर शास्त्री को पूना भेजा—इस काम को बम्बई के अध्यक्ष ने पसन्द किया। गंगाधर शास्त्री के विरुद्ध पेशवा के कुटिल प्रिय पात्र, त्र्यम्बकजी डांगलिया ने षड्यंत्र रचा और जब वह वापिस गुजरात लौटा तो पंढारपुर में अपने गुर्गों से निर्दयतापूर्वक उसने उसकी हत्या करवा दी। पेशवा के प्रतिरोध, आदि के बावजूद (देखिए, पृष्ठ २०२), एलफिंस्टन ने उसे इस बात के लिए मजबूर कर दिया कि डांगलिया को वह उसके हाथों में सौंप दे। डांगलिया को आगे की जाँच पड़ताल के लिए जेल में डाल दिया गया। जिस समय हेस्टिंग्ज़ ने सरकार का शासन ग्रहण किया उस समय यही हालत थी। खज़ाना उसे खाली मिला था।

१८१४ नेपाल के गोरखे; राजपूतों की एक जाति, मूल रूप से वे राजपूताना से आये थे, और हिमालय के नीचे तराई में, नेपाल में, उसे जीतकर बस गये थे। अनेक सरकारों के मातहत रहने के बाद, १८ वीं शताब्दी के मध्यकाल में वे एक सरदार के आधिपत्य में [थे] जो अपने को 'नेपाल

का राजा कहता था। उसने अपनी सीमाओं का विस्तार किया। इसकी वजह से कभी-कभी उसका सम्पर्क रणजीत सिंह से हो जाया करता था और कभी-कभी ब्रिटिश संरक्षण में रहने वाले राजों-रजवाड़ों से। इसलिए सर जॉर्ज बार्लो और लार्ड मिन्टो से उसके पहले ही झगड़े हो चुके थे।
—१८१३ के अन्तिम भाग में अवध राज्य के हड़प लिए गये भाग के ब्रिटिश संरक्षण वाले २०० गाँवों के एक ज़िले पर गोरखों ने अधिकार कर लिया था। लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने माँग की कि २५ दिनों के अन्दर ज़िले को वापिस लौटा दिया जाय; इस पर गोरखों ने बुटवल्ल में एक ब्रिटिश मजिस्ट्रेट की हत्या कर दी। इस पर—

(अक्टूबर) १८१४—में, गोरखों के खिलाफ़ युद्ध की घोषणा हो गयी; जनरल गिलेप्सी को सतलज के किनारे अमरसिंह की कमान में काम करने वाली गोरखों की सेना पर हमला करना था; जनरल उड के मातहत एक दूसरे डिवीज़न को बुटवल पर चढ़ाई करनी थी; जनरल ऑक्टरलोनी के नेतृत्व में एक तीसरे डिवीज़न को शिमला पर; चौथे डिवीज़न को जनरल मार्ले के नेतृत्व में, सीधे राजधानी, काठमांडू पर धावा करना था। युद्ध के ख़र्चे के लिए अवध के नवाब से २० लाख का कर्ज़ ले लिया गया था।

२६ अक्टूबर को. गिलेस्पी ने कलंगा के क़िले पर हमला किया, ५०० गोरखे उसकी रक्षा कर रहे थे; उसने आर्डर दिया कि फ़ौरन हमला किया जाय, और स्वयं हमले का नेतृत्व किया; उसे ख़ुद को गोली लगी; ७०० अफ़सरों और सैनिकों को खोने के बाद, डिवीज़न अपनी छावनी पर वापिस लौट आया। अब जनरल मार्टिंडेल ने कमान संभाली, बेकार के घेरे में उसने महीनों बर्बाद कर दिये; जब रास्ता बना लिया गया और आख़िरकार क़िले पर क़ब्ज़ा कर लिया गया, तब [देखा गया] कि उसे पहले ही खाली कर दिया गया था, उसके रक्षक अपने तमाम भंडारों के साथ हमले से पहले वाली रात को ही उसमें से निकल गये थे। अपने से कहीं छोटी सेना के ऊपर विजय प्राप्त करने के बाद जनरल उड डर गया; वह ब्रिटिश सीमान्त की तरफ़ लौट गया और बाक़ी पूरे हमले के समय हाथ पर हाथ रखे बैठा रहा।

१८१५. जनरल मार्ले, जो सीमा पर पर पहुँच गया था, १८१५ के आरम्भिक काल तक वहीं रुककर काठमांडू पर हमला करने के लिए तोपखाने का इन्तज़ार करता रहा; कूच के समय उसने अपने डिवीज़न को दो कमज़ोर दलों में बाँट दिया था—गोरखों ने उन दोनों पर हमला किया और उन्हें

हरा दिया, मार्ले वहीं चहलकदमी करता रहा और १० फ़रवरी, १८१५ को एकदम अकेला सीमा के उस पार भाग गया !

१५ मई। कई महीनों की सफल लड़ाइयों और घेरेबन्दियों के बाद, अमरसिंह मलाऊ (सतलज के बाएँ तट पर स्थित एक सुदृढ़ पहाड़ी दुर्ग मे) चला गया, जनरल ऑक्टरलोनी ने एक महीने तक मलाऊ पर गोलन्दाज़ी की, १५ मई को दुर्ग का पतन हो गया, अमरसिंह घेरे के समय मारा गया।— इसी बीच कुमायूँ जिले मे अल्मोड़ा का पतन हो गया था, इसकी वजह से ऑक्टरलोनी का विरोध करने वाले गोरखों को मिलने वाली सारी रसद वगैरा के रास्ते कट गये, उन्होंने समझौता कर लिया।

१८१६ लम्बी बातचीत चलाने के बाद, नयी लड़ाई छेड़ दी गयी। पहाड़ों के बहुत कठिन रास्ते से चलकर सर डेविड ऑक्टरलोनी मकवानपुर पहुँचा और गोरखों को भारी नुकसान पहुँचाकर उसने वहाँ से पीछे हटा दिया, फिर उन्होंने उसके साथ सन्धि कर ली, जिसे वफादारी के साथ गोरखों ने निभाया। वे खुद अपने इलाके मे बने रहने के लिए बाध्य कर दिये गये थे और जो ज़मीन उन्होंने जीती थी उसके अधिकांश भाग को उन्हें दे देना पड़ा था।—इस लड़ाई ने इंगलैण्ड और नेपाल के बीच आवागमन का मार्ग खोल दिया, अनेक गोरखे अंग्रेज़ों की सेना मे भर्ती हो गये, उन्हें[1] गोरखा रेजीमेन्टों में ज़बर्दस्ती रख दिया गया, १८५७ के सिपाही विद्रोह के दिनों में अंग्रेज़ों के वे बहुत काम आये।

गोरखा युद्ध के दौरान शुरू में कम्पनी की जो अनेक बार हार हुई थी उसकी वजह से देशी राजाओं के अन्दर भी अशान्ति फैल गयी थी, ख़ास-तौर से हाथरस और बरेली मे (दोनों दिल्ली प्रान्त मे थे) जन-विद्रोह उठ खड़े हुए थे।

१८१६-१८१८. पिण्डारी। १८१५ मे ५०,००० से ६०,००० तक की संख्या मे ये लुटेरे मध्य भारत मे लूट-पाट मचा रहे थे, दूसरी तरफ, अमीर खाँ सीमा पर हमला करने की धमकी दे रहा था और, शत्रुतापूर्ण रुख अपना कर, मराठे राजे फौजें इकट्ठी कर रहे थे। गठजोड़ों के द्वारा अमीर खाँ के विरुद्ध एक मजबूत संघ कायम करने की हेस्टिंग्ज़ की कोशिशें बेकार साबित हुईं (२०६)।

---

[1] मिल, खण्ड ८ के अनुसार, अमरसिंह का जनरल भक्ति सिंह।

१४ अक्टूबर, १८१५. पिंडारियों के एक बड़े दल ने निज़ाम के राज्य पर हमला करके उसे लूट डाला।

फ़रवरी, १८१६. पिंडारियों की लगभग आधी सेना ने गुन्टूर सरकार के ज़िलों (कम्पनी की अमलदारी) पर चढ़ाई कर दी, इलाक़े को उन्होंने मरुभूमि बना दिया, और इसके पहले कि मद्रास की सेना उनके ऊपर बाक़ायदा हमला कर सके वे वहाँ से अन्तर्धान हो गये।

बरार के राजा, रघुजी भोंसले की मृत्यु हो गयी; उसका चचेरा भाई अप्पा साहेब उसकी गद्दी पर बैठा, उसने भोंसले के बेटे की हत्या कर दी और कम्पनी के साथ एक सन्धि करके उसे अपनी तरफ़ कर लिया। इस सन्धि के अन्तर्गत अंग्रेज़ों की ८ हज़ार की एक सहायक सेना को नागपुर में [रखना तै हुआ]।

नवम्बर, १८१६. कम्पनी की अमलदारी में पिंडारियों ने नयी घुस-पैठ की; जब नागपुर की सेना मैदान में आयी तो अलग-अलग दलों में बँटकर वे स्वयम् अपने प्रदेश में ग़ायब हो गये।

१८१७. वर्ष के प्रारम्भ में, हेस्टिंग्ज स्वयम् १, २०,००० सिपाहियों की सेना लेकर (यह ब्रिटिश झण्डे के नीचे [भारत में] इकट्ठा की जाने वाली सबसे बड़ी सेना थी) रणक्षेत्र में पहुँच गया। बूंदी, जोधपुर, उदयपुर, जयपुर, और कोटा के राजाओं के साथ उसने समझौते कर लिए, और सिंधिया को तटस्थता की सन्धि पर दस्तख़त करने के लिए मजबूर कर दिया गया।

मराठा राज्यों का अन्त। जेल से निकल भागने के बाद त्र्यम्बक जी डांगलिया फिर पूना में बाजीराव का प्रमुख सलाहकार बन गया; बाजीराव ने "पिंडारियों से रक्षा करने" के नाम पर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ शत्रुतापूर्ण तैयारियाँ शुरू कर दीं। एलफिंस्टन ने बम्बई से सेनाओं को बुला भेजा और बाजीराव से स्पष्ट रूप से कह दिया कि २४ घंटे के अन्दर तै कर ले कि वह लड़ाई चाहता है या शान्ति और अपने तीन मुख्य दुर्गों तथा त्र्यम्बक जी डांगलिया को उसके हाथ सौंप दे। बाजीराव ने हिचकिचाहट दिखलाई; बम्बई की फौजें आ गयीं; पेशवा ने हार मान ली, तमाम क़िले उसने कम्पनी को दे दिये, और वादा किया कि डांगलिया को पकड़ देगा। अब एक सन्धि पर हस्ताक्षर किये गये, जिसके अन्तर्गत पेशवा इस बात के लिए राज़ी हो गया कि आगे कभी किसी भी दूसरी, मराठा

अथवा विदेशी सत्ता के वकीलों[1] को अपने दरबार में नहीं आने देगा और पूरे तौर से ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट की आज्ञा में रहेगा।

इस प्रकार, मराठों की प्रभुसत्ता का अन्त [हो गया], पूना के राजदरबार को नागपुर या इंदौर के राजदरबार के नीचे स्तर पर रख दिया गया। इसके अलावा, उसे [पेशवा को] सागर, बुंदेलखण्ड, तथा अन्य स्थानों को कम्पनी के हाथ सौंप देना पड़ा। फिर सुरक्षा की दृष्टि से एलफिंस्टन [पूना से] दो मील के फ़ासले पर ब्रिटिश छावनी में चला गया, और सेनाएँ वहीं तैनात रहीं। लगभग एक महीने बाद, अंग्रेजों के खिलाफ़ कार्रवाई करने के लिए घुड़सवारों और सैनिकों को जमा करते हुए पेशवा पकड़ा गया।

५ नवम्बर, १८१७ एक काफ़ी बड़ी सेना को लेकर, जो ब्रिटिश रेजीमेन्टों के पास ही पड़ी हुई थी, पूना की (ब्रिटिश) रेज़ीडेन्सी पर हमला किया गया और उसे जला दिया गया। इसके बाद जो लड़ाई हुई उसमें पेशवा के कच्चे, इधर-उधर से बटोरे गये सिपाहियों को हरा दिया गया, खुद बाजीराव ने—

१७ नवम्बर, १८१७—आत्म-समर्पण कर दिया। उस मराठा राज्य की प्रभुसत्ता का अन्त हो गया जिसका प्रारम्भ शिवा जी से १६६६ में हुआ था।

नागपुर के राजा का पतन। अप्पा साहब ने भी वही—सेना, आदि को इकट्ठा करने का—काम किया जो बाजीराव ने किया था, ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट, मिस्टर जेनकिन्स ने उसे पकड़ लिया।

सितम्बर, १८१७ अप्पा साहब ने अपने दरबार में पिंडारियों के एक प्रतिनिधि को खुलेआम बुलाया।

नवम्बर, १८१७ उसने जेनकिन्स को सूचित किया कि पेशवा ने उसे (अप्पा साहब को) मराठा फ़ौजों का कमाण्डर-इन-चीफ़ बना दिया था, जेनकिन्स ने जवाब दिया कि चूंकि पेशवा ने कम्पनी के खिलाफ़ युद्ध छेड़ रखा था, इसलिए इस नियुक्ति के फलस्वरूप नागपुर भी कम्पनी के साथ युद्ध में फँस जायगा। इस पर अप्पा साहब ने (ब्रिटिश) रेज़ीडेन्सी पर हमला कर दिया।—सीताबल्दी की पहाड़ियों में लड़ाई हुई। (उनके लिए) बुरी शुरुआत के बाद अंग्रेज जीत गये। नागपुर पर क़ब्ज़ा कर लिया गया; अप्पा साहब को गद्दी से उतार दिया गया, जोधपुर में एक निर्वासित

[1] राजदूतों।

व्यक्ति के रूप में उसकी मृत्यु हो गयी। १८२६ तक इस राज्य पर अंग्रेज़ शासन करते रहे। फिर उन्होंने एक नवयुवक को, जिसे नामज़द किया जा चुका था, उसके बालिग़ हो जाने पर, ब्रिटिश संरक्षण में गद्दी पर बैठा दिया।

होल्कर राजवंश का पतन। तुलसी बाई ने अपने प्रेमी, पठानों के सरदार ग़फ़ूर ख़ाँ को, जो कम्पनी का जानी दुश्मन था, असली गवर्नर बना रखा था। सर जौन मालकम और सर टामस हिस्लोप ने माँग की कि उसे हटा दिया जाय। उसने—रानी ने—लड़ाई की तैयारी शुरू कर दी, किन्तु एक रात एक दल ने—जो उसका विरोधी था—इन्दौर में उसे गिरफ़्तार कर लिया, उसका सिर काट दिया, और उसके शरीर को नदी में फेंक दिया।

१८१७. नवयुवक मल्हार राव होल्कर को फ़ौरन राजा घोषित कर दिया गया, नाम के लिए उसके नेतृत्व में, किन्तु वास्तव में ग़फ़ूर ख़ाँ के नेतृत्व में, सेना निकल पड़ी।

२१ दिसम्बर, १८१७. मराठों द्वारा किये जाने वाले भयंकर गोलीबार के बीच अंग्रेज़ों ने सिप्रा नदी को पार किया, और उनकी तोपों पर क़ब्ज़ा कर लिया। महीदपुर में निर्णायक लड़ाई हुई; कठिन संघर्ष के बाद अंग्रेज़ विजयी हुए। मल्हार राव की बहिन, बूनाबाई को गिरफ़्तार कर लिया गया और उसके भाई के पास भेज दिया गया।—इसके बाद जल्दी ही सन्धि हो गयी। जसवन्त राव के बेटे, मल्हार राव होल्कर को राजा मान लिया गया। किन्तु उसकी शक्ति को कम कर दिया गया और उसके राज्य को छोटा कर दिया गया।

लगभग १८१७ के अन्त तक, पिंडारी लोग वहीं भटकते रहे। कोई निर्णायक संघर्ष उन्होंने नहीं किया। लेकिन मराठा राजाओं के, जो उनके दोस्त थे, पतन के बाद, उनके तीनों सरदारों—करीम ख़ाँ, चीतू, और वासिल मुहम्मद—ने फ़ैसला किया कि अब डटकर कुछ करना होगा; उन्होंने अपनी फ़ौजों को एक जगह केन्द्रीकृत कर लिया।—हेस्टिंग्ज़ यही तो चाहता था। उसने आर्डर दिया कि प्रेसीडेन्सी की विभिन्न सेनाएँ मालवा में स्थित डाकुओं के मज़बूत अड्डों को चारों तरफ़ से घेर लें; उसने उनके चारों तरफ़ बाक़ायदा घेरा डाल दिया; तीनों नेता भाग गये, और तीनों डिवीज़नों पर, जिन्होंने ख़ुद भी भागने की कोशिश की थी, [अंग्रेज़ों ने] भागते समय हमला कर दिया। करीम ख़ाँ के डिवीज़न

को जनरल डोर्नकिन ने नष्ट कर दिया, चीतू की सेना को जनरल ब्राउन ने तितर-बितर कर दिया, उनका तीसरा डिवीजन, उस पर हमला किये जाने से पहले ही, तमाम दिशाओं में भाग खड़ा हुआ, उनके सरदार, थासिल मुहम्मद ने आत्म-हत्या कर ली, लड़ाई के बाद चीतू एक जंगल में मरा मिला, यह वादा करने पर कि अब वह कोई गड़बड़ी नहीं करेगा, करीम खाँ को एक छोटी-सी जागीर देकर अवकाश ग्रहण करने की अनुमति दे दी गयी। पिंडारियों को इस तरह छिन्न-भिन्न कर दिया गया कि वे फिर कभी न मिल सकें, अमीर खाँ और गफूर खाँ के नीचे के पठानों को भी इसी तरह से कुचल दिया गया।

अब सिन्धिया अकेला एक ऐसा सरदार बच गया था जिसके पास एक सेना, अथवा नाममात्र की स्वतन्त्रता थी, किन्तु वह भी अब पूर्णतया कम्पनी के ऊपर निर्भर हो गया था।—भारत अब अंग्रेज़ों का था।

अगस्त, १८१७ भारत में पहली बार भयानक तेज़ी से हैज़े का प्रकोप हुआ; सबसे पहले वह कलकत्ते के पास जेसोर ज़िले में शुरू हुआ, एशिया को पार करके वह योरोपीय महाद्वीप पर पहुँच गया, उसे उसने धराशायी कर दिया, वहाँ से वह इंगलैंड गया, और वहाँ से अमरीका। नवम्बर, १८१७ में, उसने हेस्टिंग्ज़ की सेना पर धावा बोल दिया, इस बीमारी को कलकत्ते से एक नयी सैनिक टुकड़ी अपने साथ ले आयी थी, और जिस समय हेस्टिंग्ज़ की सेना बुन्देलखण्ड के निचले प्रदेश से गुज़र रही थी उस समय वह ज़ोरों से फैला हुआ था। इतनों तक उस रास्ते पर मरे और मरते हुए लोगों की पाँतें पड़ी थीं।

© १ जनवरी, १८१८ पेशवा (पूना में वह दक्षिण की ओर भाग गया था) के साथ त्र्यम्बकजी डागलिया आकर मिल गया। लगभग २० हज़ार सैनिकों को लेकर, उन्होंने कैप्टन स्टान्टन के मातहत रहने वाली अंग्रेज़ी सेना की एक टुकड़ी से लड़ाई की, भयकर लड़ाई के बाद कैप्टन स्टान्टन जीत गया, मराठे छिन्न-भिन्न हो गये और भाग गये। तब जनरल स्मिथ ने कमान अपने हाथ में ले ली और सतारा पर चढ़ाई कर दी। सतारा ने तुरन्त आत्म-समर्पण कर दिया। बाजीराव भाग गया, अन्त में उसने सर जौन मालकम के सामने आत्म-समर्पण कर दिया, सर जौन ने घोषित कर दिया कि उसे गद्दी से उतार दिया गया है। लार्ड हेस्टिंग्ज़ ने सतारा के राजा को, जो कि वास्तव में मराठा राजाओं में से था (जिन्हें उनके मन्त्रियों, पेशवाओं ने गद्दी से हटा दिया था), शिवा जी का वंशज था, गद्दी

राजा बना दिया। पेशवा सरकार का एक पेन्शन पाने वाला व्यक्ति बन गया। इस प्रकार, घूम-फिर कर स्थिति फिर १७०८ की पहले की हालत में पहुँच गयी जबकि सतारा के राजा, साहू ने बालाजी विश्वनाथ को अपना पेशवा बनाया था। (१८५७ के विद्रोह वाले नाना साहब बाजीराव के दत्तक पुत्र थे। बाजीराव की मृत्यु के बाद ब्रिटिश सरकार उन्हें जो वार्षिकी दिया करती थी उसे बन्द कर दिया गया।) इसके अलावा, कुछ महत्वपूर्ण दुर्गों—तालनेर, मालीगाँव, तथा असीरगढ़ के दुर्गों—को युद्ध के उस पिछले प्रदर्शन के समय कब्जे में ले लिया गया था। —लार्ड हेस्टिंग्ज ने भारत में समाचार पत्रों की स्वतन्त्रता की घोषणा की।

१८१६. सर स्टैम्फोर्ड रैफिल्स ने जोहोर के तुमांग्वाय, अथवा गवर्नर से सिंगापुर को प्राप्त कर लिया।

१८२०. हैदराबाद की सेना के रख-रखाव पर होने वाले भारी खर्च और अपने मंत्री, चन्दरलाल की कुख्यात कुव्यवस्था की वजह से निज़ाम भारी कर्ज़े में फँस गया था। पामर एण्ड कम्पनी का संस्थापक निज़ाम को जितना भी कर्ज़ उसने चाहा उतना खुशी-खुशी तब तक देता गया जब तक कि कर्ज़ की रकम बहुत बड़ी नहीं हो गयी। पामर गृह के भागीदारों ने हैदराबाद पर अत्यन्त अनुचित दबाव डलवाया। मिस्टर मेटकाफ़ ने, जो उस समय वहाँ रेज़ीडेन्ट था, हेस्टिंग्ज़ से हस्तक्षेप करने के लिए कहा; हेस्टिंग्ज़ ने पामर एण्ड कम्पनी को और अधिक कर्ज देने से मना कर दिया और आदेश दिया कि उत्तरी सरकार के इलाकों की मालगुज़ारी को फौरन पूंजीकृत मूल्य में बदल दिया जाय; इस प्रकार जो धन प्राप्त हुआ उसे कर्ज़ चुकाने के लिए देने का आदेश दे दिया गया। पामर एण्ड कम्पनी इसके तुरन्त ही बाद फेल हो गयी; हेस्टिंग्ज़ को इस बात से नुकसान पहुँचा कि इस संस्था में उसका सम्बन्ध था (कहा जाता था कि इस सम्बन्ध का आधार उसके एक सदस्य के साथ उसकी दोस्ती थी)। उसे इस बात से भी नुकसान पहुंचा कि उसने कम्पनी की पहले की अनेक अत्यन्त अनुचित ढंग की कार्रवाइयों को स्वीकृति दे दी थी और केवल तभी हस्तक्षेप किया था जब कि, मेटकाफ़ द्वारा उठाये गये कदमों के परिणाम-स्वरूप, इस मामले का इतना प्रचार हो गया था कि हेस्टिंग्ज़ के लिए पामर कम्पनी के "साथ कोई सम्बन्ध रखना" सम्भव नहीं रह गया था।

१८२२. का अन्तिम भाग। हेस्टिंग्ज़ ने अपने पद से त्याग-पत्र दे दिया।

१ जनवरी, १८२३ को यह इंगलैण्ड वापिस लौट गया। वह यह प्रतिज्ञा करके भारत आया था कि राज्यों को हड़पने की नीति पर अमल नहीं करेगा।

अन्तिम काल

१८२३-१८५८

(ईस्ट इंडिया कम्पनी का अन्त)

[१] लार्ड एमहर्स्ट का प्रशासन, १८२३-१८२८

जनवरी १८२३. हेस्टिंग्ज़ के चले जाने के बाद, कौन्सिल के वरिष्ठ सदस्य, मिस्टर एडम, अन्तरिम काल के लिए, [गवर्नर जनरल बन गये]।— नियंत्रण बोर्ड ने लार्ड एमहर्स्ट को वाइसराय बनाया।

अगस्त १८२३. एमहर्स्ट कलकत्ते पहुँचा; फौरन ही वह बर्मा के साथ युद्ध में उलझ गया। — आवा के बर्मी लोग शुरू-शुरू में पेगू राज्य के केवल आश्रित थे; बाद में वे स्वतंत्र हो गये; उनका नेता एक दुस्साहसिक आदमी, अलोम्प्रा [था], उसने उनकी सेनाओं को सदा विजयी बनाया था; उन्होंने स्याम से तनासरीम को जीत लिया, अनेक अवसरों पर चीनियों को हरा दिया, पूरे अराकान को अधीन कर लिया, पेगू के स्वयम् अपने सामन्तों वरिष्ठ लोगों को गुलाम बना लिया, पूरे प्रायद्वीप के राजा बन बैठे, और आवा को उन्होंने अपनी राजधानी बना लिया। बर्मा के राजा ने अपने को "श्वेत हाथियों का स्वामी, सागर और पृथ्वी का सम्राट" घोषित कर दिया।

१८१८—में आवा के राजदरबार में लोगों को इस बात का विश्वास हो चुका था कि धराशायी हिन्दुओं पर विजय प्राप्त कर लेने वाले अंग्रेज अजेय बर्मियों के सामने पराजित हो जायेंगे; उनके राजा ने कलकत्ते लिख कर ईस्ट इन्डिया कम्पनी से मांग की कि चटगाँव तथा कुछ और जिलों को वह उसे दे दे क्योंकि, उसने कहा, ये अराकान के उस प्रदेश के अंग थे जिसका वह मालिक था। किन्तु, हेस्टिंग्ज का शिष्टाचारपूर्ण यह जवाब पाने के बाद कि ऐसा सोचना उसकी "भूल" थी, वह चुप रह गया।

१८२२. अपने महाबन्धुल (कमान्डर-इन-चीफ़) के नेतृत्व में बर्मी सेना ने आसाम को फ़तह कर लिया और अपने राज्य में मिला लिया।

१८२३ उन्होंने अराकान के तट पर स्थित अंग्रेज़ों के शाहपुरी द्वीप पर क़ब्ज़ा कर लिया और वहाँ पर जो छोटा-सा रक्षक सैन्य-दल था उसका क़त्लेआम कर दिया। एमहर्स्ट ने बर्मियों को वहाँ से हटाने के लिए एक सेना भेजी, आवा के राजा के नाम एक शिष्टाचारपूर्ण पत्र लिखकर उसने प्रार्थना की कि वह गड़बड़ी करने वाले लोगों को, जिन्हें कि वह महज़ समुद्री डाकू समझता था, सज़ा दे।

जनवरी, १८२४ इसे कमज़ोरी का लक्षण समझकर, बर्मियों ने कछार प्रान्त पर [जो कि] ब्रिटिश संरक्षण में [था], आक्रमण कर दिया, अंग्रेज़ फौजों ने उन्हें हरा दिया और खदेड़ कर मणिपुर की तरफ भगा दिया। —अब कलकत्ते से दो सैनिक अभियान भेजे गये, एक आसाम पर कब्ज़ा करने के लिए, दूसरा रंगून तथा बर्मा के अन्य बन्दरगाहों को छीनने के लिए।

१८२४ बिना हमला किये ही रंगून पर अधिकार कर लिया गया, उसका रक्षक सैन्य-दल देश में अन्दर की ओर भाग गया। इस अभियान के कमान्डर, सर आर्चीबाल्ड कैम्पबेल ने इसी तरह पास पड़ोस की कुछ स्ताईबन्दियों पर कब्ज़ा कर लिया और, लम्बे प्रतिरोध के बाद, कैमेन्डीन को (जो रंगून में ४ मील के फासले पर था) क़ब्ज़े में ले लिया। फिर, गर्म मौसम होने की वजह से उसके सैनिक रंगून की छावनियों में रख दिये गये, रसद की कमी हो गयी, उसके सैनिकों में हैज़ा फैल गया।

दिसम्बर, १८२४ ६० हज़ार सैनिकों को लेकर महाबन्धुल कैम्पबेल की सेना पर टूट पड़ा, अंग्रेज़ों ने उसे दो बार हरा दिया, वह दोनाबू की तरफ़ पीछे हट गया, अंग्रेज़ों ने उसका पीछा किया और नगर को मजबूती से घेर लिया।

अप्रैल, १८२५ महाबन्धुल एक गोले से मारा गया। दोनाबू के रक्षक सैन्य-दल ने आत्म-समर्पण कर दिया। कैम्पबेल आगे बढ़ता गया, प्रोम (उर्फ़ प्री) नगर पर बिना एक भी गोली चलाये उसने क़ब्ज़ा कर लिया, आसाम के अभियान के परिणाम की प्रतीक्षा करते हुए उसने वहाँ विश्राम किया, कर्नल रिचर्ड्स के नेतृत्व में वहाँ ,जो सेना भेजी गयी थी उसने रंगपुर और सिलहट पर कब्ज़ा कर लिया, आसाम से बर्मियों को निकाल बाहर किया और, जनरल मैकबीन की कमान में—

मार्च, १८२५ में—वह अराकान में बढ़ गयी, वहाँ उसे ऐसी पहाड़ियों के बीच

से गुज़रना पड़ा जिनकी बहादुरी के साथ रक्षा की जा रही थी; अंग्रेज विजयी हुए; वे मैदानों में उतर आये, और अराकान की राजधानी के सामने आ उपस्थित हुए। आवा के राज दरबार के साथ होनेवाली बातचीत का कोई फल न निकला।

नवम्बर, १८२५. कैम्पबेल ने फौरन आवा पर चढ़ाई कर दी; दुश्मन उसके पहुँचते ही भाग गये।

फरवरी, १८२६. दो निर्णायक संघर्ष, बर्मी पराजित हो गये; अंग्रेज आवा से दो दिन की यात्रा के फासले पर स्थित, याण्डेबू पहुँच गये; **बर्मी राजा ने अधीनता स्वीकार कर ली।**

१८२६. बर्मा के साथ सन्धि : बर्मा के राजा ने आसाम, येह् (तनासरीम का एक प्रान्त), तनासरीम तथा अराकान का एक भाग कम्पनी को दे दिया; उसने वादा किया कि कछार प्रान्त में किसी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं करेगा, युद्ध के खर्च के एवज़ में १० लाख पौंड देगा, और आवा में एक ब्रिटिश रेज़ीडेन्ट को रहने की अनुमति भी दे देगा।

इस प्रथम बर्मी युद्ध (१८२४-१८२६) में ब्रिटिश सरकार का १ करोड़ ३० लाख पौंड खर्च हुआ था; इंगलैण्ड में इसे नापसन्द किया गया।

अक्टूबर, १८२४. (युद्ध के दिनों में), **बंगाल की ४७वीं पैदल सेना ने,** जो बारकपुर में रहती थी, रंगून जाने का आदेश पाने पर खुली बग़ावत कर दी (देखिए, पृष्ठ २१८)।

१८२६. युद्ध के अन्त में, उसी स्थान पर **एक और बग़ावत** हुई (देखिए, पृष्ठ २१८)।

१८ जनवरी, १८२६. लार्ड कम्बरमियर के नेतृत्व में फौज ने भरतपुर पर, जिसे अभेद्य समझा जाता था, हमला करके अधिकार कर लिया। भरतपुर के इस राज्य की स्थापना जाटों ने, जो देश के आदिवासी थे, मुग़ल साम्राज्य के टूटने के समय की थी। उस समय [१८२६] उस पर दुर्जनसाल शासन करता था; इसने "राज्य" को उसके असली वारिस, बलदेव सिंह (जो बच्चा था) से छीन लिया था—बलदेव सिंह के समर्थकों ने अंग्रेज़ों से मदद माँगी; कम्बरमियर को इसीलिए उसके खिलाफ़ भेजा गया था, इत्यादि। भरतपुर के पतन के बाद, दुर्जनसाल को एक ब्रिटिश बन्दी की हैसियत से बनारस भेज दिया गया था और ब्रिटिश संरक्षण में बलदेव सिंह को राजा बना दिया गया था।

१८२७. बर्मी युद्ध के लिए एमहर्स्ट को पार्लमेंट से धन्यवाद प्राप्त हुआ,

उसे अर्ल बना दिया गया और फरवरी, १८२७ में, वह इगलैण्ड वापिस चला गया।

. . ..

[२] लार्ड विलियम बेंटिक का प्रशासन, १८२८—१८३५

(कम्पनी की इच्छा के विरुद्ध बेंटिक के चुनाव के सम्बन्ध में देखिए, पृष्ठ २१६)

४ जुलाई, १८२८ बेंटिक कलकत्ते पहुँचा—जोधपुर के राजपूत राज्य मे राजा मानसिंह को, उसके विद्रोही सरदारो की मर्जी के खिलाफ, अंग्रेजों ने फिर गद्दी पर बैठा दिया।

ग्वालियर, १८२७ दौलतराव सिंधिया की मृत्यु हो गयी, उसके न तो कोई सन्तान थी, और न कोई दत्तक पुत्र। बेंटिक ने उसकी पत्नी—रानी—को आदेश दिया कि वह किसी लडके को गोद ले ले; उसने सबसे नजदीकी पुरुष सम्बन्धी, आलीजाह जनकोजी सिंधिया को चुना, १८३३ में इसी ने रानी के खिलाफ लडाई छेड दी, बेंटिक ने रानी को आज्ञा दी कि वह पूरे तौर से सरकार उसके हाथो मे सौंप दे।

जयपुर मे, वजीर ने राजा और उसकी मा, रानी को विष दे दिया और सरकार पर कब्जा कर लिया। ब्रिटिश रेजीडेन्ट ने हस्तक्षेप किया, एक बालक को, जो राजवश का एकमात्र प्रतिनिधि था, उसने गद्दी पर बैठा दिया। उसकी नाबालिगी के काल के लिए रेजीडेन्ट ने स्वयम् राज्य का शासन अपने हाथ मे ले लिया।

अवध, १८३४ मिस्टर मैडोक ने अवध के राजा के कुप्रशासन की जाँच-पडताल की, वह सारी आमदनी को खुद उडा डालता था, गवर्नर जनरल ने राजा को गम्भीर चेतावनी दी।

भोपाल, १८२० भोपाल के राजा की मृत्यु हो गयी, राज्य का शासन उसकी विधवा, सिकन्दर बेगम ने चलाना शुरू किया, उसके भतीजे ने, जो कि गद्दी वारिस था, १८३५ मे ब्रिटिश सरकार से अपील की। बेंटिक ने हस्तक्षेप किया, उसे गद्दी पर बैठा दिया (आजकल जो बेगम राज्य कर रही है वह उसी राजा की बेटी है)।

कुर्ग, १८३४. बेंटिक ने कुर्ग (दक्षिणी मलबार के तट पर) को हडप लिया।

१८२० में वीर राजा गद्दी पर बैठा था और उसने अपने शासन का श्रीगणेश अपने सम्बन्धियों का क़त्लेआम करके किया था।

१८३४ में, वीर राजा ने कम्पनी के खिलाफ़ युद्ध की घोषणा कर दी; मद्रास की सेना ने उसकी राजधानी पर अधिकार कर लिया, उसने सब कुछ छोड़ दिया, [राज्य को] कम्पनी की अमलदारी में मिला लिया गया क्योंकि अन्य कोई राजकुमार ज़िन्दा नहीं था।

कछार। १८३० में कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया; बर्मी युद्ध के दिनों में यह ब्रिटिश संरक्षण में था; किन्तु १८३० में राजा गोविन्दचन्द्र की मृत्यु हो गयी, उसका कोई वारिस न था।

मैसूर, १८११. बालक राजा (प्राचीन राजवंश का, जिसे पाँच वर्ष की अवस्था में १७९९ में वेलेज़ली ने मैसूर की गद्दी पर फिर से बैठा दिया था और जिसे उसकी नाबालिग़ी के काल के लिए पूर्णिया की देख-रेख में रख दिया था) बालिग़ हो गया, पूर्णिया को उसने निकाल बाहर किया, ख़ज़ाने को उड़ा दिया, क़र्ज़ में फँस गया, रैयत को निर्दयता से दबाया-कुचला—इस सब के फलस्वरूप, १८३० में, उसके आधे राज्य में विद्रोह की हालत पैदा हो गयी; ब्रिटिश सेना ने विद्रोह को दबा दिया; बेंटिक ने मैसूर को हड़प लिया; राजा को ४० लाख पौंड तथा उसके राज्य की आमदनी का पाँचवाँ भाग सालाना देकर पेंशन दे दी गयी; मालगुज़ारी की वृद्धि की वजह से यह दूसरा "भाग" अत्यन्त मूल्यवान हो गया था। (इस प्रकार, उनके राज्यों पर क़ब्ज़ा करते समय अंग्रेज़ जब राजाओं और राजकुमारों को पेंशन देते थे तो ग़रीब हिन्दुओं [भारतीयों—अनु०] के ऊपर बोझ डालकर उनकी मदद करते थे।)

विद्रोह—बंगाल के दक्षिण-पश्चिम में, रामगढ़, पालामऊ तथा छोटा नागपुर के इलाक़ों में कोलियों, धगड़ों तथा संथालों की जंगली जातियों ने विद्रोह कर दिये; और बाँकुड़ा के पास के प्रदेश में चुआर जाति के लोगों ने विद्रोह कर दिया; भारी क़त्लेआम के बाद विद्रोह कुचल दिया गया।—कलकत्ते के पास बारासात में भी भयंकर उपद्रव हुए, वहाँ पर टीटूमीर को मानने वाले मुसलमान कठमुल्लाओं और हिन्दुओं के बीच पूरी लड़ाई छिड़ गयी। ब्रिटिश रेजीमेन्ट ने बाग़ियों को दबा दिया।

१८२७. लार्ड एमहर्स्ट रणजीत सिंह ("शेरे लाहौर") के साथ मेल-मिलाप सिख कर रहा था; १८३१ में लार्ड बेंटिंक ने भी यही किया (सतलज के तट पर दरबार)। (देखिए, पृष्ठ २२२)

१८३२ सिन्ध के अमीरों के साथ व्यापारिक सन्धि, इसके अन्तर्गत, रणजीत सिंह के सहयोग से, सतलज और सिन्धु नदियाँ पहली बार आवागमन के लिए खोल दी गयीं।

बेंटिंक और कलकत्ते के अफसरों के बीच झगड़ा इसका कारण यह था कि उनके बोनस को 'इकहरे में घटाकर आधा कर दिया गया था। (पृष्ठ २२३)। सती प्रथा का अन्त—क़ानूनी सुधार, ठगों का अन्त (पृष्ठ २२४)।—क़ानून और न्याय (२२३-२२४)। १८३५ में, बेंटिंक ने देशी लोगों के लिए कलकत्ते में एक मेडीकल कालेज कायम किया।

१८३३ उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों का एक अलग प्रेसीडेन्सी बना दिया गया, इलाहाबाद में उनके लिए एक नये [सर्वोच्च] न्यायालय तथा रेवन्यू बोर्ड की स्थापना की गयी। इन प्रान्तों की भूमि का ३० वर्ष के लिए बन्दोबस्त कर दिया गया (इस काम की योजना बनाने वाला और उसका नियंत्रक रौबर्ट बर्ड था)।

पेनिन्सुलर (प्रायद्वीपीय) तथा ओरियन्टल (प्राच्य) कम्पनी ने, लालसागर के मार्ग से भाप के जहाज़ों के आवागमन का मार्ग खोलकर, भारत को इंगलैण्ड के दो महीने और नजदीक पहुँचा दिया, इस कम्पनी को, जिसकी १८४२ में स्थापना हुई थी, दोनों और कलकत्ते दोनों जगहों की सरकारों का समर्थन मिला।

१८३३ (पार्लामेन्ट की कार्यवाहियाँ) सदन फिर खतम हो गयी थी, उन्हीं मुद्दों पर फिर वही पुरानी बहसें शुरू हो गयीं, किन्तु [इस बार] मुक्त व्यापार वाले दल का जोर था। चीन के साथ होने वाला व्यापार तमाम व्यापारियों के लिए खोल दिया गया, इस प्रकार, कम्पनी के व्यापार की जो आखिरी इजारेदारी थी उसे भी निजी व्यापार के पक्ष में समाप्त कर दिया गया।—पार्लामेन्ट के एक क़ानून के द्वारा नयी, चौथी प्रेसीडेन्सी—उत्तर-पश्चिमी प्रान्तों की—कायम कर दी गयी।—एक दूसरे क़ानून ने कई प्रान्तों की स्थानीय सरकारों के काम-काज में दखल देने की और अधिक ताक़त गवर्नर जनरल और उसकी कौन्सिल को दे दी, तै हुआ कि स्थानीय गवर्नरों के यहाँ न तो कौन्सिलें होंगी और न उन्हें क़ानून बनाने के अधिकार प्राप्त होंगे। तमाम व्यक्तियों के सम्बन्ध में, चाहे वे योरोपियन हों चाहे देशी, तथा तमाम न्यायालयों के सम्बन्ध में गवर्नर जनरल ही क़ानून बनाएगा। इस बात का पता लगाने के लिए कि पूरे भारत के

लिए कानूनों की एक ही संहिता बनाने की कितनी सम्भावना है एक कमीशन नियुक्त किया गया।

[३] सर चार्ल्स मेटकाफ, अस्थायी गवर्नर जनरल, १८३५-१८३६

वह आगरा का गवर्नर था, अन्तरिम काल के लिए गवर्नर जनरल नियुक्त कर दिया गया। डायरेक्टर मण्डल चाहता था कि पार्लामेन्ट उसे निश्चित रूप से गवर्नर जनरल बना दे, किन्तु मंत्रिमण्डल नियुक्ति के अधिकार को पूरे तौर से अपने ही हाथों में रखे रहना चाहता था; उसने उस पद पर लार्ड हेटिसबरी को नियुक्त कर दिया, किन्तु उसके रवाना होने से पहले ही टोरियों की जगह ह्विग लोगों की सरकार आ गयी; और उनके नियंत्रण मंडल के नये अध्यक्ष, सर जौन हॉबहाउस ने हेटिसबरी की नियुक्ति को रद् कर दिया, और लार्ड ऑकलैण्ड को नामजद कर दिया।

१८३५. मेटकाफ़ ने भारत में समाचार पत्रों की स्वतंत्रता की घोषणा की। लंदन में स्थित इंडिया हाऊस (भारत निवास) के कुछ डायरेक्टरों (मण्डल) ने मेटकाफ़ के साथ, जो कि भारत में काम करने वाले सबसे अच्छे अधिकारियों में से एक था, इतना अशिष्ट व्यवहार किया कि ऑकलैण्ड के भारत पहुँचते ही उसने सिविल सर्विस से त्यागपत्र दे दिया, और इंगलैण्ड वापिस लौट गया।

[४] लार्ड ऑकलैण्ड का प्रशासन, १८३६-१८४२

२० मार्च, १८३६. ऑकलैण्ड ने कलकत्ते में सरकार का भार ग्रहण किया। उसने (पामर्स्टन की प्रेरणा से) अफ़ग़ान युद्ध का श्रीगणेश किया।

अफ़ग़ान राजवंश। १७५७ में, अहमदशाह दुर्रानी ने दिल्ली को तबाह किया; १७६१ में, [उसने] मराठों के विरुद्ध पानीपत की भयंकर लड़ाई लड़ी। (वह अब्दालियों या दुर्रानियों के अफ़ग़ान क़बीले का सरदार था)।

१७६१ में, अफ़ग़ानिस्तान वापिस जाकर अहमदशाह दुर्रानी काबुल[1] में राज्य करता था। उसकी मृत्यु (१७७३) के बाद उसका बेटा तैमूरशाह (१७७३-१७९२)[2] उसका उत्तराधिकारी बना, उसके शासन काल में, बरकज़ाइयों के वंश का उदय हुआ, इस वंश का प्रमुख पयांदा खाँ कमज़ोर तैमूर का वज़ीर [था], तैमूर ने एक बार गुस्से में आकर बरकज़ाइयों को बुरी तरह से अपमानित कर दिया उन्होंने बग़ावत कर दी, इस पर तैमूर ने पयांदा खाँ को गिरफ़्तार कर लिया और मार डाला, बरकज़ाइयों ने प्रण किया कि सादोज़ाइयों (शाही वंश का यही नाम था)[3] से बदला लिए बग़ैर वे नहीं रहेंगे, तख़्त तैमूर के बेटे—

१७९२-१८०२—ज़मान शाह को मिला। उसने भारतीय सीमा पर युद्धात्मक कार्रवाइयों का प्रदर्शन करके कम्पनी को अत्यधिक नाराज़ कर दिया, हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में उसके जो इरादे थे उन्हें बरकज़ाइयों और स्वयम् उसके भाइयों ने, जिनमें से चार ने [एक निश्चित] भूमिका अदा की थी, पूरा नहीं होने दिया। उसके ये भाई थे. शुजा-उल-मुल्क, महमूद, फ़ीरोज़, और ऊँसर।—बरकज़ाई क़बीले के प्रमुख के स्थान पर पयांदा खाँ के बाद उसका बेटा फ़तह खाँ पदारूढ़ हुआ।

१८०१ जिस समय एक विशाल सेना लेकर हिन्दुस्तान की तरफ़ आते हुए ज़मान [शाह] पेशावर में टिका हुआ था, फ़तह खाँ ने ज़मान के भाई महमूद के साथ साज़िश करके उसे अपनी तरफ़ मिला लिया, उसने उसका झण्डा ऊँचा किया और कंधार पर अधिकार कर लिया, ज़मान उल्टे पाँव वापिस लौटा, उसे पकड़ लिया गया, उसकी आँखें फोड़ दी गयीं; क़ैद में डाल दिया गया, इसी दुर्गतिपूर्ण पराधीन अवस्था में वह एक लम्बे काल तक ज़िन्दा रहा। उसके असली उत्तराधिकारी, शुजा-उल-मुल्क ने

---

[1] इस बात के सम्बन्ध में मार्क्स ने जिस पुस्तक का उपयोग किया था वह ग़लत है, क्योंकि अहमदशाह ने कंधार में राज्य किया था और वहीं उसकी मृत्यु हुई थी।

[2] "कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया", खण्ड ५, १९२९ के अनुसार, १७९३।

[3] मार्क्स ने जिस पुस्तक का उपयोग किया था उसने इस सम्बन्ध में भूल की है। तैमूर की मृत्यु के बाद पयांदा खाँ ने ज़मान को गद्दी पर बैठा दिया था, उसे ज़मान ने—जो इस अत्यन्त प्रभावशाली वज़ीर से छुटकारा पा लेना चाहता था—मरवा डाला। बरकज़ाइयों और सादोज़ाइयों के बीच दुश्मनी का दौर इसी समय से शुरू हो गया था। देखिए फ़ेरियर द्वारा रचित "अफ़ग़ानों का इतिहास", "द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ़ इण्डिया", खण्ड ५; इत्यादि।

फ़ीरज़ काबुल पर चढ़ाई कर दी, किन्तु फ़तह ने उसे हरा दिया और गद्दी पर—

१८०२[1]-१८१८. महमूदशाह को बैठा दिया; फ़ीरोज़ ने इसी समय हिरात और कैसर के सादोज़ाई राज्यों तथा कंधार के राज्यों पर अधिकार कर लिया।

१८०८.[2] काबुल के अनेक दुर्रानी अमीरों के भड़काने पर, शाहशुजा वापिस लौट आया, राज्य पर ज़बर्दस्ती क़ब्ज़ा करने वाले लोगों को उसने हरा दिया, सबको माफ़ कर दिया, अपने भाइयों को हिरात और कंधार का गवर्नर बना दिया। फ़तह ख़ाँ भाग गया, पहले उसने कैसर के साथ षड्यंत्र रचा और कैसर के नाम से एक नया विद्रोह खड़ा कर दिया, बुरी तरह कुचल दिया गया, कैसर को माफ़ कर दिया गया।—तब फ़तह ख़ाँ ने शाह महमूद के सबसे बड़े लड़के कामरान के नाम पर बग़ावत का झण्डा ऊँचा किया और धोखे से कन्धार को कैसर से छीन लिया। विद्रोह को एक बार फिर दबा दिया गया, और विद्रोहियों को शाहशुजा ने एक बार फिर माफ़ कर दिया।—फ़तह ख़ाँ ने कैसर को फुसलाया कि वह विद्रोह का नेता बने, दोनों ने मिलकर पेशावर पर क़ब्ज़ा कर लिया, विद्रोही फिर हार गये, फिर माफ़ कर दिये गये।— फ़तह ख़ाँ ने अब नया विद्रोह किया, इस बार वह विजयी हुआ, शाहशुजा को [१८१० में] भागने के लिए मजबूर होना पड़ा; वह कश्मीर में पकड़ा गया, वहाँ के गवर्नर ने कोहिनूर हीरे को उससे छीनने की कोशिश की; शुजा रणजीत सिंह के पास लाहौर भाग गया, रणजीत सिंह ने पहले उसके साथ दोस्ती दिखलाई, उसके बाद दुर्व्यवहार किया और कोहिनूर हीरे को छीन लिया। शुजा वहाँ से भाग कर लुधियाना पहुँचा जहाँ उसे राजा किस्तावर के रूप में एक नया मित्र मिला। शुजा ने कश्मीर पर एक असफल आक्रमण किया, और फिर लुधियाना वापिस लौट गया।

१८१६. महमूद कमज़ोर और अयोग्य शासक था; सारी वास्तविक सत्ता फ़तह ख़ाँ तथा बरकज़ाइयों के हाथों में थी।—फ़तह ख़ाँ के एक छोटे भाई, दोस्त मुहम्मद ने उसके साथ मिलकर बरकज़ाइयों को गद्दी पर बैठाने की योजना बनायी, लेकिन पहले वे पूरे अफ़ग़ानिस्तान को एक ही

[1] दर्रोस के अनुसार, १८००।

[2] दर्रोस के अनुसार, १८०३।

व्यक्ति के शासन के अन्तगत ले आना चाहते थे। उन्होंने हिरात पर, (जिस पर फ़ीरोज़ शासन करता था) चढाई कर दी, हिरात पर उन्होंने कब्ज़ा कर लिया और फीरोज़ भाग गया उसके भतीजे शाहज़ादे कामरान ने कमम साई की बरकज़ाइयो म खास तौर स फतह खाँ से, वह बदला लगा वह काबुल गया, अपने अद्ध मूग पिता शाह महमूद को उसने समझाया कि फ़तह खाँ ने जो कुछ किया था वह विद्रोह था, उसने उसस इस बात की अनुमति ले ली कि उसे पकडकर वह काबुल ले जाय, उसने ऐसा ही किया, महमूद और उसके बेटे कामरान की उपस्थिति मे फतह खाँ को अत्यन्त ही वीभत्स ढग से काटकर टुकडे-टुकडे कर दिया गया (देखिए, पृष्ठ २३०) । फिर दोस्त मुहम्मद एक भारी सेना लेकर आया, तमाम बरकज़ाई उसका समर्थन कर रहे थे, उसने काबुल पर अधिकार कर लिया, महमूद और कामरान को जलावतन कर दिया, वे भागकर फ़ीरोज़ के पास हिरात चले गये।—बरकज़ाइयो ने अफ़ग़ानिस्तान के राज्य पर अधिकार कर लिया। दोस्त मुहम्मद के अलावा, फतह खाँ के निम्न और भाई थे मुहम्मद, जिसने पेशावर पर कब्ज़ा कर लिया था, अज़ीम खाँ (सबसे बडा भाई) जिसने यह कहकर काबुल पर चढाई कर दी थी कि दोस्त मुहम्मद के वश का मुखिया होने की वजह स वह उसीका है, पुर्दिल खाँ, कोहनदिल खाँ तथा शेर अली खाँ ने कधार तथा खिलजियों के देश पर क़ब्ज़ा कर लिया, दोस्त मुहम्मद ने काबुल अज़ीम खाँ को दे दिया और गज़नी की तरफ़ चला गया।— अज़ीम खाँ ने शाहज़ादा अयूब नाम के एक कठपुतली राजा को काबुल का बरायनाम शाह बना दिया, यह प्राचीन सदोज़ाई राजवश का एक प्रतिनिधि था, किन्तु दोस्त मुहम्मद ने [उसी राजवश के] एक दूसरे प्रतिनिधि, सुल्तान अली का शाह घोषित कर दिया, अयूब ने उसे मार डाला। इसके तुरन्त बाद ही, जब कि दोस्त मुहम्मद और अज़ीम खाँ ने सिक्खों के खिलाफ लडाई छेड दी थी अज़ीम खाँ को पता चला कि उसका भाई दोस्त उसके विरुद्ध रणजीत सिंह स मिल गया है, डर स वह भागकर जलालाबाद चला गया, १८२३ म वही उसकी मृत्यु हो गयी, रणजीत सिंह ने दोस्त मुहम्मद को पेशावर द दिया, और दोस्त अफ़ग़ानिस्तान का वास्तविक प्रधान बन गया गडबडी के एक मौके पर कधार के बरकज़ाइयो ने काबुल पर अधिकार कर लिया। और—

१८२६—मे पहले दोस्त मुहम्मद दूसरे दावेदारो को निकाल बाहर करके काबुल

का स्वामी नहीं [बन सका था]। उसने सुचारु रूप से तथा संयम के साथ राज्य-शासन चलाया; दुर्रानी क़बीलों को उसने अपनी शक्ति भर कुचलने की कोशिश की।

१८३४. शाहशुजा ने सिन्ध में एक सेना तैयार करके अपने राज्य को प्राप्त करने का फिर प्रयत्न किया; उसे दोस्त के विभिन्न भाइयों का, जो दोस्त से जलते थे, सहयोग प्राप्त था।

१८३४. शुजा को लार्ड बेंटिंक से वह समर्थन नहीं मिला जिसकी उसने आशा की थी, और रणजीत सिंह ने अपने समर्थन के लिए इतनी बड़ी क़ीमत माँगी कि शुजा ने उसे लेने से इन्कार कर दिया; शुजा ने अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई कर दी, कंधार को उसने घेर लिया, किन्तु उस शहर ने अत्यन्त वीरता से अपनी रक्षा की; शुजा के पीछे काबुल से दोस्त मुहम्मद अपनी सेना लेकर आ पहुँचा; एक हल्की-फुल्की लड़ाई के बाद शुजा भारत वापिस भाग गया।—मौक़ा पाकर रणजीत सिंह ने पेशावर को अपने राज्य में मिला लिया; दोस्त मुहम्मद ने सिक्खों के विरुद्ध एक धार्मिक युद्ध की घोषणा कर दी, एक विशाल सेना लेकर उसने पंजाब पर चढ़ाई कर दी; किन्तु रणजीत सिंह से पैसा पाने वाले एक अमरीकी जनरल हार्लन ने उसके अभियान को असफल बना दिया; एक राजदूत की हैसियत से वह अफ़ग़ानों की छावनी में पहुँच गया और वहाँ उसने इतनी कामयाबी से साजिश रची कि फ़ौज में असन्तोष उभर पड़ा, आधी फ़ौज टूट गयी और उठकर भिन्न-भिन्न रास्तों से इधर-उधर चली गयी; दोस्त काबुल लौट गया।

१८३७.[1] रणजीत सिंह ने कश्मीर और मुल्तान पर अधिकार कर लिया; रणजीत सिंह के ख़िलाफ़ जो असफल सैनिक अभियान किया गया था उसमें दोस्त के बेटे, अकबर ख़ाँ ने नामवरी हासिल की।

फ़ारस। आग़ा मुहम्मद तथा उसके [भतीजे] फ़तह अली ने क्रमागत शाहों के रूप में फ़ारस की बहुत तरक़्क़ी की थी। फ़तह अली के दो बेटे थे: शाहज़ादा अब्बास मिर्ज़ा और मुहम्मद।

१८३४.[2] अब्बास मिर्ज़ा ने बूढ़े फ़तह अली को इस बात के लिए राज़ी कर

---

[1] "द कैम्ब्रिज हिस्ट्री आफ इण्डिया," खण्ड ५ के अनुसार, कश्मीर पर १८१६ में और मुल्तान पर १८१८ में क़ब्ज़ा किया गया था।

[2] सारक्साी, "ए हिस्ट्री आफ पर्शिया," खण्ड २, लन्दन, १९२१ के अनुसार, १८३३।

लिया कि हिरात के खिलाफ वह सैनिक कार्रवाई करे, किन्तु फतह की उसी साल [१८३४ मे] मृत्यु हो गयी, अब्बास मिर्जा [मार दिया गया], मुहम्मद गद्दी पर बैठा और, तेहरान म स्थित रूसी राजदूत, काउन्ट सिमोनिच की प्रेरणा से, अग्रेजो की इच्छा के विरुद्ध —

१८३७—हिरात को उसने घेर लिया। बहाना यह था कि मुहम्मद शाह ने उससे कुछ सहायता मॉगी थी जिसे कामरान ने, जो हिरात का शाह कहलाता था, उसे देने से इन्कार कर दिया था।

सितम्बर, १८३८ फारसी लोग वापिस चले गये, नाम के लिए तो अग्रेजो की प्रार्थना पर, पर वास्तव म इसलिए कि हिरात के अफगान रक्षक सैन्य दल के खिलाफ वे कुछ कर नही सकते थे। घेरे के दौरान, हिरात के रक्षक सैन्य दल के एक व्यक्ति—एलड्रेड पौटिंजर न, जो उस समय एक युवक लेफ्टीनेन्ट ही था, नाम कमाया था।

१८३६ फारस के राज दरबार मे नियुक्त ब्रिटिश मत्री ने हिरात पर होने वाली फारस की चढ़ाई के सम्बन्ध म ऑक्लैण्ड को चेतावनी दे दी, उसन उसे रूसी चाल, आदि बताया था, इसलिए—

१८३७—ऑक्लैण्ड ने कैप्टन अलेक्जेन्डर बर्न्स को व्यापारिक सन्धि करने तथा अफगानिस्तान के साथ और नज़दीकी सम्बन्ध कायम करन के उद्देश्य से काबुल भेजा, काबुल पहुँचने पर [बर्न्स] ने देखा कि कन्धार के सरदारो ने रणजीत सिंह के खिलाफ़ रूसी मदद की याचना की है और (?) दोस्त मुहम्मद भी उन्ही की मिसाल पर अमल करने के लिए आमादा दिखलाई देता है। बर्न्स जिन दिनो काबुल मे रह रहा था, रूसी आदेश से फारस के साथ बरकज़ाइयों ने वास्तव मे एक सन्धि कर ली, और तेहरान मे स्थित अग्रेज राजदूत, मिस्टर मैक्नील के साथ "अपमानजनक' ढग से व्यवहार किया। बर्न्स का मिशन असफल रहा। दोस्त मुहम्मद की माँग थी कि जो भी उसके साथ सम्बन्ध करना चाहे वह रणजीत सिंह से उसे पेशावर दिला दे। रूसी राजदूत ने इसका वादा कर लिया, बर्न्स ऐसा वादा करने में असमर्थ था, इसके बाद, दोस्त मुहम्मद ने घोषित कर दिया कि वह रूस के साथ है और बर्न्स अफगानिस्तान छोड कर चला गया।

२६ जून, १८३८. लार्ड ऑक्लैण्ड, रणजीत सिंह तथा शाह शुजा के दर्म्यान लाहौर की त्रिदलीय सन्धि, तै हुआ कि शाहशुजा पेशावर और सिन्धु के किनारे के राज्यों को पूर्णतया रणजीत सिंह को सौंप देगा, अफगान और

सिक्ख एक दूसरे का समर्थन करेंगे; शुजा को अफ़ग़ानिस्तान की गद्दी पर फिर से बैठा दिया जायगा, गवर्नर जनरल उसे देने के लिए एक रक़म निश्चित कर देगा और इसके एवज़ में वह सिन्ध सम्बन्धी सारे दावों को छोड़ देगा; हिरात को पूरे तौर से वह अपने भतीजे कामरान को सौंप देगा; और ब्रिटिश अथवा सिक्ख अमलदारी पर अन्य किन्हीं भी विदेशियों को आक्रमण करने से वह रोकेगा।

१ अक्टूबर, १८३८. अंग्रेज़ों के मित्र, शुजा को गद्दी पर फिर से बैठाने के लिए अफ़ग़ानिस्तान के विरुद्ध ऑक्लैण्ड द्वारा युद्ध की शिमला घोषणा। ब्रिटिश पार्लामेन्ट में अकारथ विरोध, पाम[1] ने, जो इस पूरे, खुले "रूस-विरोधी" स्वांग का असली रचाने वाला था, उसे चक्कर में डाल दिया था। (इसी बीच, ठीक उस समय जिस समय तेहरान के राज दरबार के रूसी सिमोनिच के साथ अत्यन्त मैत्रीपूर्ण घनिष्ट सम्बन्ध थे "फारस को डरवाने के लिए", पाम ने फारस की खाड़ी में स्थित करक द्वीप पर क़ब्ज़ा करवा लिया) ऑक्लैण्ड के नेतृत्व में युद्ध कौन्सिल की बैठक हुई: तै हुआ कि मुख्य [अंग्रेज़] सेना फ़ीरोज़पुर में रणजीत सिंह की सेना के साथ जाकर मिल जाय; बम्बई का सैन्य दल सिन्धु के मुहाने के लिए रवाना हो गया; तै हुआ कि तीनों डिवीजन सिन्ध में शिकारपुर में मिलेंगे और साथ-साथ वहाँ से अफ़ग़ानिस्तान पर चढ़ाई करेंगे। इस काम के लिए सिन्ध के अमीरों के सहयोग की दरकार थी।

१७८६. इन अमीरों ने— बलूचियों, तालपुड़ा क़बीले के सरदारों ने—सिन्ध को अफ़ग़ानों से जीतकर छीन लिया था; प्रदेश को आपस में उन्होंने बाँट लिया था और वहाँ सामन्ती व्यवस्था क़ायम कर दी थी।

१८३१. कैप्टन बर्न्स ने (जिस समय कि अपने लद्दू घोड़ों के दल को लेकर [भेंट देने के लिए] वह रणजीत सिंह के दरबार की ओर जा रहा था) अमीरों के साथ मेल-जोल कर लिया था, और १८३२ में लार्ड विलियम बेंटिंक ने उनके साथ बाक़ायदा एक सन्धि कर ली थी। ब्रिटिश व्यापारियों के लिए सिन्धु नदी पर व्यापार का मार्ग इसी सन्धि के बाद खुला था।

१८३५. रणजीत सिंह ने अमीरों के साथ लड़ाई छेड़ दी, किन्तु (ईस्ट इंडिया) कम्पनी ने उसे रोक दिया।

---

1 पामर्स्टन।

१८३८ त्रिदलीय सन्धि के द्वारा सिन्ध के अमीरों को इस बात का आश्वासन दे दिया गया कि [अपने इलाकों पर] उन्हें शान्तिपूर्वक अधिकार बनाये रहने दिया जायगा बशर्ते कि गवर्नर जनरल द्वारा निर्धारित की गयी रकम वे शाहशुजा को देते रहें।

१८३९ का प्रारम्भिक भाग, पौटिंजर को [सिन्ध] भेजा गया कि वहाँ जाकर वहाँ के अमीरों से वह एक विशाल धन राशि की माग करे। इस अजब मांग के लिए यह निर्लज्ज बहाना बनाया गया कि यह रकम अमीरों को सामन्ती नज़र के रूप में अफ़गानिस्तान के शाह शुजा को देनी है। अमीरों ने विनती की कि 'जिस समय शुजा निर्वासित था उस समय यानी १८३३ मे उन्होंने उसे जो तात्कालिक आर्थिक सहायता दी थी उसके एवज़ मे उसने उन्हें उस नज़र की अदायगी से मुक्त कर दिया था; [किन्तु] पौटिंजर ने "कोष" देने पर ज़ोर दिया और कहा कि अगर वे न देंगे तो उन्हें [अमीरों को] उनके स्थानों से हटा दिया जायगा। उन्होंने न्यायपूर्ण क्रोध के साथ रकम दे दी।

नवम्बर, १८३८ बगाल सेना सतलज के पास पहुंच गयी, रणजीत सिंह की सेना वहीं जाकर उससे मिल गयी।

१० दिसम्बर, १८३८, सर विलाबी कोटॅन की कमान मे (कमाडर-इन-चीफ, सर हेनरी फ्रेन द्वारा इन तमाम कार्रवाइयों के विरुद्ध क्रोध से इस्तीफा दे दिये जाने के बाद) सयुक्त सेनाओं ने शिकारपुर (सिन्ध) में मिलने के निश्चित स्थान की दिशा में फीरोजपुर में कूच कर दिया। वे—

१४ जनवरी, १८३९ को—सिन्ध के इलाक़े मे पहुंच गयी। वहां उन्होंने सुना कि बम्बई से अपनी सेनाओं को लेकर सर जौन कौन सुरक्षित रूप से ठट्टा पहुंच गया है।

२९ जनवरी, १८३९ सर अलेक्ज़ेन्डर बर्न्स को (सिन्ध के) अमीरों से यह मांग करने के लिए भेजा गया कि सिन्ध नदी पर स्थित बक्खर के क़िले को वे ब्रिटिश सेनाओं के लिए एक डिपो (प्रधान कार्यालय) के रूप में काम करने के लिए दे दें। उसे देने के लिए उन्हें मजबूर कर दिया गया। सेना सिन्ध नदी के बाएं (पूर्वी) तट से हैदराबाद की ओर बढ़ती गयी, साथ ही साथ दाहिने तट से बम्बई का सैन्य दल आगे बढ़ता गया और हैदराबाद के सामने आकर खड़ा हो गया। एक ब्रिटिश जहाज़ ने, जिस पर कुछ रिज़र्व सैनिक थे, कराची पर अधिकार कर लिया, इन सैनिकों ने शहर को एक अंग्रेज़ी क़िले में बदल दिया। अमीर लोग हर बात मे

कम्पनी के आदेशों को मानते गये और मुख्य सेना शिकारपुर की ओर कूच करती गयी। वहाँ वह—

१८३९ की फरवरी के अन्त में पहुँच गयी; सर जौन कीन के नेतृत्व में आने वाले बम्बई सैन्य दल तथा उसके साथ आ रहे शाह शुजा का इन्तज़ार किये बिना—सर विलग्बी कोर्टन बोलन दर्रे की तरफ़ बढ़ गया; उसे १४६ मील लम्बे एक जलते हुए रेगिस्तान को पार करना पड़ा, उसे बहुत तकलीफ़ हुई, सामान लाद कर ले जाने वाले उसके कोड़ियों पशु मर गये।

१० मार्च, १८३९. सैन्य दल दर्रे के मुहाने पर स्थित दादर पहुँच गया; कोर्टन ने कुछ दिन आराम किया; उसने देखा कि ख़िरात का मेहराब खाँ ख़िलाफ़ था ; किसी प्रकार की रसद सामग्री नहीं मिल सकती थी।

मार्च, १८३९. ६ दिनों के अन्दर बिना किसी विरोध के बोलन दर्रे को पार कर लिया गया; सर जौन कीन के आने का इन्तज़ार करने के लिए कोर्टन क्वेटा में रुक गया; मेहराब खाँ के साथ उसने एक अनुकूल सन्धि कर ली।

अप्रैल, १८३९. सर जौन कीन अपने सैनिक अधिकारी के साथ आकर क्वेटा में मिल गया। अब पूरा सैन्य दल वहीं जमा था। शाह शुजा भी वहीं छावनी में था। आगे की यात्रा में बहुत तक़लीफ़ हुई और बीमारियों ने घेरा। जल्दी ही मित्रों का सैन्य दल कन्धार पहुँच गया। कन्धार ने बिना लड़े ही आत्म-समर्पण कर दिया।

मई, १८३९ के प्रारम्भिक भाग में अफ़ग़ानिस्तान के शाह के रूप में कन्धार में शुजा का राज्याभिषेक कर दिया गया।

जून, १८३९ के अन्तिम दिनों में, सेना ने ग़ज़नी पर चढ़ाई कर दी; दुर्ग मज़बूत था, किन्तु कैप्टन टौमसन के नेतृत्व में इंजीनियरों ने उसके फाटकों को उड़ा दिया। एक ही दिन में शहर को फ़तह कर लिया गया और उसके रक्षक दल को भगा दिया गया। काबुल से दोस्त मुहम्मद हिन्दूकुश की ओर भाग गया। अंग्रेज़ों ने चढ़ाई कर दी। बिना किसी लड़ाई के ही उस पर उन्होंने अधिकार कर लिया, और—

७ अगस्त को—शाह शुजा को, काबुल में, उसके पिता के अत्यन्त सुरक्षित वाला हिसार महल में गद्दी पर बैठा दिया।—शाहशुजा का बेटा, शाहज़ादा तैमूर तथा सिक्खों की एक नयी सेना ख़ैबर दर्रे से ऊपर आ गयी और जल्दी ही वह काबुल में स्थित मुख्य सेना से मिल गयी।

(२७ जून, रणजीत सिंह की मृत्यु हो गयी; अपने सिक्ख राज्य को वह अपने सबसे बड़े बेटे, खड़कसिंह को दे गये थे और कोहिनूर हीरे को जगन्नाथ

के मंदिर के नाम कर गये थे।) तै किया गया कि फिलहाल एक बड़ी ब्रिटिश सेना तथा सिक्खों को काबुल में छोड़ दिया जाय, १८३६ से १८४१ तक वे वहीं पर बिना किसी परेशानी के बने रहे। अपने को वे इतना सुरक्षित समझते थे कि राजनीतिक एजेन्ट, सर विलियम मैकनाटन ने अपनी पत्नी और बेटी को हिन्दुस्तान से काबुल बुलवा लिया, सेना के अफ़सरों से घनिष्ट रूप में सम्बन्धित अन्य महिलाओं को भी उसने वहाँ बुलवा लिया, ताकि अफ़ग़ानिस्तान की सुखकर ताज़ी आबोहवा का वे आनन्द ले सकें।

१५ अक्टूबर, १८३६ दक्षिण दिशा में सिन्ध की ओर वापिस जाते समय, बम्बई की सेना ने ख़िरात पर अधिकार कर लिया, मेहराब ख़ाँ को मार डाला, और उसके देश को लूट पाट कर नष्ट कर दिया।

१८४० का प्रारम्भिक भाग। मैक्नाटन और कोर्टन दोनों ऐसे गधे थे कि काबुल के बालाहिसार के अत्यन्त सुदृढ गढ़ का उन्होंने शाह शुजा को अपना हरम (!) बनाने के लिए दे दिया और सेनाओं को वहाँ से हटा कर छावनियों में भेज दिया। इस तरह, देश के सबसे मज़बूत क़िले को एक जनाने में बदल दिया गया। इसके बाद शाह शुजा के विरुद्ध स्वयम् काबुल में विद्रोहों का एक ताँता लग गया, ये विद्रोह पूरे १८४० भर चलते रहे।

नवम्बर, १८४० घुड़सवारों के एक छोटे-से दल के साथ, दोस्त मुहम्मद आत्म-समर्पण करने के लिए काबुल आया।—(इससे पहले वह बुख़ारा भाग गया था, वहाँ उसको कोई ख़ास स्वागत नहीं मिला था और वह अफ़ग़ानिस्तान लौट आया था, उज़्बेक और अफ़ग़ान एक भारी संख्या में उसके साथ शामिल हो गये थे, ब्रिगेडियर डेनी ने हराकर उसे भागने के लिए मजबूर कर दिया।)

१८४० के शेष भाग में तथा १८४१ की गर्मियों में, कन्धार में गम्भीर विद्रोह उठ खड़े हुए, उन्हें सख़्ती से कुचल दिया गया, हिरात के लोगों ने खुले तौर से अंग्रेजों के ख़िलाफ़ लड़ाई की घोषणा कर दी। "ब्रिटिश क़ब्ज़ावरों" के विरुद्ध पूरे देश में क्रोध की ज्वाला भड़क उठी।

अक्टूबर, १८४१ महान् ख़ैबर दर्रे के ख़िलजी क़बीलों के अन्दर ज़बर्दस्त विद्रोह उठ खड़ा हुआ। उस दर्रे से हिन्दुस्तान की तरफ़ वापिस जाने वाली सेनाओं को काफ़ी जानें गँवानी पड़ीं, विद्रोह को कठिनाई से दबाया गया।

२ नवम्बर, १८४१. काबुल में एक गुप्त षडयंत्र रचने के बाद बाग़ियों ने बर्न्स के मकान पर हमला कर दिया, अनेक अन्य अफ़सरों के साथ-साथ ख़ुद उसकी भी भ्रूण हत्या कर दी गयी। विद्रोह को कुचलने के लिए कई रेजीमेन्टें भेजी गयीं, किन्तु ग़लती से वे काबुल की सँकरी गलियों में फँस गयीं। इस प्रकार, कई दिनों तक उन्मत्त भीड़ को उसने जो चाहा उसे करने का निर्विरोध मौक़ा मिला; उन्होंने एक क़िले पर, जिसका सेना के रसद विभाग के भण्डार के रूप में इस्तेमाल किया जाता था, हमला कर दिया। जनरल एलफिंस्टन ने (जो अब कोर्टन के स्थान पर अफ़ग़ानिस्तान में कमांडर-इन-चीफ़ था) उसकी इतनी कम सहायता की कि क़िले के अधिकारी अफ़सर को अपने छोटे-से सैन्य दल के साथ क़िले से भागने के लिए मजबूर होना पड़ा।—मैकनाटन ने जनरल सेल के पास, जो उस समय ख़ैबर दर्रे के नज़दीक ही था, और जनरल नाट के पास, जो कन्धार में था, अर्जेण्ट (अतिपाती) सन्देश भेजे कि तुरन्त आकर काबुल के रक्षक दल की वे सहायता करें; किन्तु ज़मीन बर्फ़ की मोटी तह से ढकी हुई थी, इसलिए किसी प्रकार का आवागमन बहुत कठिन था। सेनाएँ दो डिवीज़नों में बँटी हुई थीं। एक डिवीज़न योग्य ब्रिगेडियर शेल्टन के मातहत बालाहिसार में नियुक्त था, दूसरा जनरल एलफिंस्टन के मातहत छावनियों में था। इन दोनों के बीच झगड़ा होने की वजह से, कुछ भी न किया गया।

नवम्बर, १८४१. अफ़ग़ानों ने नियमित रूप से हमले करना शुरू कर दिये, आस-पास की कुछ पहाड़ियों को उन्होंने फ़तह कर लिया; वहाँ से उनको हटाने की कोशिशें असफल हुईं।

२३ नवम्बर, १८४१. आम सैनिक कार्रवाइयाँ, अंग्रेज़ पूरी तरह से हरा दिये गये, वे छावनियों में वापिस लौट गये; समझौते की बातचीत बेकार रही; थोड़े दिन बाद, दोस्त का जोशीला लड़का, अकबर ख़ाँ [काबुल] आ पहुँचा।

११ दिसम्बर, १८४१. रसद भण्डार ख़त्म हो गया; आसपास के प्रदेश के निवासियों ने उन्हें कोई भी चीज़ देने से एक स्वर से इन्कार कर दिया; मैकनाटन को विद्रोहियों के साथ सन्धि करनी पड़ी; तै हुआ कि ब्रिटिश और सिक्ख सैनिक देश छोड़ दें; दोस्त मुहम्मद को रिहा कर दिया जाय; शाह शुजा को अफ़ग़ानिस्तान में या भारत में बिना ताज के किन्तु मुक्त भाव से रहने दिया जाय; अफ़ग़ानों ने गारन्टी दी कि अंग्रेज़ी फ़ौज के

वहाँ से सलामती से वापिस जाने मे वे रुपये पैसे, सुरक्षा तथा रसद से मदद देंगे। इसके बाद, १५ हज़ार ब्रिटिश सैनिकों ने अफगानिस्तान से वापसी की अपनी दयनीय यात्रा शुरू की, अफगानों ने हर मौके का इस्तेमाल करके सिपाहियों को लूट खसोट लिया (ठीक ऐसा ही किया !) और उनके भण्डारो को छीन लिया, काबुल से सैनिकों के रवाना होने से पहले, अकबर खाँ ने मैक्नाटन के पास एक नयी सन्धि का प्रस्ताव भेजा और अलग मिलने के लिए उसे आमन्त्रित किया।

२३ दिसम्बर, १८४१ सेना के लिए और अच्छी शर्तें हासिल करने के उद्देश्य से मैक्नाटन ने उसके प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया, अकबर ने उसके सीने मे पिस्तौल से गोली मार दी।

जनवरी, १८४२. मैक्नाटन का स्थान मेजर पौटिंजर ने लिया, निराश जनरलों से कोई निश्चित कार्य कराने मे वह असफल रहा, फौज को सलामती से वापिस चला जाने देने के लिए उसने एक अन्तिम सन्धि की और काबुल छोड़कर वह रवाना हो गया, किन्तु अकबर खाँ ने तो कसम खायी थी कि वह ब्रिटिश का नामोनिशान मिटाकर ही रहेगा। अंग्रेज़ सैनिकों ने छावनियो को छोड़ा ही था कि ज़ोरों से बर्फ पड़ने लगी, सैनिकों के कष्ट अकथनीय थे; तीन दिन के मार्च के बाद, सैन्य दल का अगला भाग पहाड़ो के एक दर्रे मे घुसा; अकबर खाँ घुड़सवारो को लेकर वहाँ आ पहुँचा, उसने माँग की कि सैनिकों को सलामती से वह तभी वहाँ से लौट जाने देगा जबकि, उनकी ज़मानत के रूप मे, (लेडी मैक्नाटन तथा लेडी सेल समेत) तमाम महिलाओं, बच्चों और अन्य कई अधिकारियों को अंग्रेज़ उसके हवाले कर देंगे। अंग्रेज़ों ने उन्हें उसके हवाले कर दिया। बाकी लोग जब जाने लगे तो तग घाटी मे, देशी लोगों ने ऊपर के ऊँचे स्थानों से "ब्रिटिश कुत्तो" पर गोलियाँ चलाकर उन्हे मार गिराया। इस प्रकार सैकड़ो लोग मारे गये, सबका सफ़ाया हो गया, केवल दर्रे के किनारे पाँच-छै सौ भूखे मरते और घायल लोग वापिस जाने के लिए बच गये। जिस समय घसिटते-घसिटते वे किसी तरह सरहद की तरफ आ रहे थे उस समय उन्हे भी भेड़-बकरियों की तरह काट डाला गया।

१३ जनवरी, १८४२ जलालाबाद (उत्तर-पश्चिमी प्रान्त मे, शाहजहाँपुर के पास) की दीवालों से सन्तरियो ने एक आदमी को देखा जो फटी अंग्रेज़ी वर्दी पहने था और एक विपद-ग्रस्त टट्टू पर चला आ रहा था। टट्टू

और आदमी दोनों बुरी तरह घायल थे; यह डा० ब्राइडन थे, १५,००० की उस सेना के—जिसने तीन हफ्ते पहले काबुल छोड़ा था—वह अकेले आदमी थे जो जिन्दा बच गये थे। वह भूख से मरे जा रहे थे।

लार्ड ऑक्लेंड ने आर्डर दिया कि जलालाबाद में जनरल सेल के ब्रिगेड को, जिसे अफ़ग़ानी लोग परेशान कर रहे थे, सहायता देने के लिए एक नया ब्रिगेड वहाँ जाय। ऑक्लैण्ड बुरी तरह से बेइज़्ज़त होकर इंगलैण्ड लौटा; उसके स्थान पर बड़े तोबड़े वाले हाथी, लार्ड एलिनबरा को नियुक्त किया गया; उसे भेजा तो गया था यह वादा लेकर कि वह शान्ति की नीति पर अमल करेगा, किन्तु जिन दो वर्षों तक वह पद पर रहा उनमें तलवार कभी म्यान में नहीं रखी गयी (उसका नेतृत्व पाम करता था)।

....

[५] लार्ड एलिनबरा का (हाथी का) प्रशासन १८४२—१८४४

१८४२ का प्रारम्भिक भाग. भारत पहुँचने पर, "हाथी" ने सुना कि ऑक्लैण्ड ने जलालाबाद की मदद के लिए जनरल वाइल्ड की कमान में जो ब्रिगेड भेजा था वह ख़ैबर दर्रे में बहुत ही बुरी तरह से मारा गया है; कि सिक्ख सेना ने अंग्रेज़ों के साथ सहयोग करने से अब इन्कार कर दिया है और वाइल्ड के ब्रिगेड के सिपाही भी इसी तरह अत्यन्त भयाक्रान्त अवस्था में हैं।

रणजीत सिंह की मृत्यु हो जाने पर (२७ जून, १८३९), उनका सबसे बड़ा पुत्र, खड़क सिंह पंजाब का शासक बना; उसने चेतसिंह को अपना वज़ीर बनाया; भूतपूर्व वजीर ध्यान सिंह द्वारा उसकी हत्या कर दी गयी, ध्यान सिंह ने खड़क को भी गद्दी से हटा दिया और उसकी जगह अपने बेटे, नौनिहाल को गद्दी पर बैठा दिया।

१८४० में, खड़क सिंह की जेल में मृत्यु हो गयी और नौनिहाल आकस्मिक रूप से मारा गया; ध्यान ने रणजीत सिंह के बहादुर बेटे, शेरसिंह को बुलवा भेजा, वह अंग्रेज़ों के पक्ष में मालूम होता था।

१८४२. वाइल्ड की सहायता के लिए जनरल पोलक के नेतृत्व में एक नया

ब्रिगेड भेजा गया, उसे वाइल्ड को मुक्त करा कर ख़ैबर दर्रे के अन्दर जाना था और जलालाबाद में जनरल सेल की जगह लेनी थी।

५ अप्रैल, १८४२ पोलक ने (ख़ैबर) दर्रे के दोनों तरफ की पहाड़ियों पर दो ब्रिगेडों को चढ़ा दिया जिसमें कि मुख्य सेना के आगे बढ़ने का रास्ता वे साफ कर दें, ऐसा ही हुआ, ख़ैबर वाले ख़ुद अपने अड्डे पर हार जाने के बाद, तंग घाटी के अफ़गान वाले किनारे की तरफ भाग गये। फौज निर्विरोध दर्रे में मार्च करती हुई निकल गयी, १० दिनों में (१५ अप्रैल को ?) वह जलालाबाद पहुँच गयी। वहाँ पर उसे मालूम हुआ कि अकबर ख़ाँ के व्यक्तिगत नेतृत्व में शहर पर जो घेरा पड़ा हुआ था उसे हमला करके तोड़ दिया गया [था] और अकबर ख़ाँ वहाँ से हट गया था।

जनवरी, १८४२ में, जनरल नाट ने अपनी छोटी-सी सैनिक शक्ति को कन्धार में जमा कर रखा था, अफ़ग़ानों को उसने कई बार हरा दिया था, बाद में उसे घेर लिया गया था। शहर की उसने बहुत होशियारी से हिफ़ाज़त की थी, किन्तु गज़नी ने दुश्मन के सामने हथियार डाल दिये थे और जनरल इंगलैण्ड को, जो क्वेटा से एक रक्षक सेना के साथ नाट की फौज से मिलने के लिए आ रहा था पीछे खदेड़ दिया गया था तथा वापिस जाने के लिए मजबूर कर दिया गया था।

हाथी एलिनबरा ने — जो अब वैसी बड़ी-बड़ी बातें नहीं करता था— पोलक को आर्डर दिया कि अक्टूबर तक वह जलालाबाद में ही बना रहे और उसके बाद अफ़गानिस्तान से बिल्कुल वापिस चला आये, नाट को भी आज्ञा दी गयी कि वह कन्धार को नष्ट कर दे और उसके बाद सिन्ध की तरफ हट जाय।—तमाम एंग्लो-इंडियनों के बीच गुस्से की हुंकार उठ रही थी, इसलिए—

जुलाई, १८४२ में—हाथी ने अफ़ग़ानिस्तान में स्थित सेना को काबुल पर अधिकार करने की अनुमति दे दी। काबुल में, अंग्रेज़ों के वहाँ से वापिस लौट जाने के बाद, शाहशुजा की बर्बरता से हत्या कर दी गयी थी और अकबर ख़ाँ ने अपने को अफ़ग़ानिस्तान का शाह घोषित कर दिया था। अकबर ने अंग्रेज महिलाओं, अफ़सरों तथा अन्य बन्दियों को तेगीन के एक क़िले में भेज दिया। वहाँ उनके साथ अच्छी तरह व्यवहार किया गया। जनरल एलफिन्स्टन की वहीं मृत्यु हो गयी।

अगस्त, १८४२. कन्धार और जलालाबाद की दोनों सेनाओं ने भिन्न-भिन्न दिशाओं से काबुल की ओर कूच कर दिया, पोलक ने ख़िलजियों को कई बार हरा दिया।

सितम्बर, १८४२. दोनों डिवीज़न तेज़ीन में (जलालाबाद के नज़दीक—तेज़ीन) में मिल गये; अकबर ख़ाँ पराजित हुआ।

१५ सितम्बर, १८४२. काबुल फिर अंग्रेज़ों के हाथ में आ गया।—पोलक के आगे बढ़ने पर अंग्रेज़ बन्दियों को सलामुहम्मद नाम के एक अफ़सर के साथ हिन्दूकुश में स्थित बमियान भेज दिया गया था। सलामुहम्मद ने जब यह सुना कि अकबर हार गया है तो उसने पौटिन्जर से कहा कि अगर निजी सुरक्षा का आश्वासन दे दिया जाय और इनाम के तौर पर रुपया दिया जाय तो सारे बन्दियों को वह मुक्त कर देगा और उन्हें काबुल पहुँचा देगा; पौटिंजर ने उसके इस प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया; अस्तु—

२० सितम्बर—को, क़ैदियों को काबुल में लाकर उनके देशवासियों को वापिस सौंप दिया गया।

अक्टूबर, १८४२. काबुल की अधिकांश क़िले-बन्दियों को नष्ट कर देने के बाद, ब्रिटिश सेना, बिना किसी रोक-टोक के, ख़ैबर दर्रे से होती हुई पेशावर के इलाक़े में प्रविष्ट हो गयी; फ़ीरोज़पुर में सिक्ख कमान्डर-इन-चीफ़ ने पौटिंजर का अतिथि सत्कार किया।

१८४२. का अन्तिम भाग. सर चार्ल्स नेपियर के नेतृत्व में सेना सिन्ध के अमीरों के विरुद्ध बढ़ी (यह सेना कन्धार के रेजीमेन्टों तथा बंगाल और बम्बई से भेजे गये ताज़े सिपाहियों को मिलाकर बनायी गयी थी)। उसका डिपो (सिन्ध में) सिन्धु नदी के किनारे सक्खर में था।—हैदराबाद में स्थित राजनीतिक प्रतिनिधि, कर्नल आउट्रम के निवास-स्थान पर बलूची घुड़सवार सेना ने भीषण हमला किया; बड़ी मुश्किल से आउट्रम भाग कर नेपियर के शिविर तक पहुँचा; नेपियर तब तक हल्ला पहुँच गया था।

१७ फरवरी, १८४३. हैदराबाद के पास, मियानी में लड़ाई। अमीरों के पास २० हज़ार सैनिक, नेपियर के पास लगभग ३ हज़ार; क़रीब तीन घंटे की ख़ूँख़ार लड़ाई के बाद नेपियर जीत गया, दुश्मन के अन्दर भगदड़ मच गयी, ६ अमीरों ने बन्दियों के रूप में आत्म-समर्पण कर दिया, हैदराबाद पर फ़ौरन अधिकार करके उसे लूट डाला गया (!), तथा शहर में एक अंग्रेज़ रक्षक दल तैनात कर दिया गया।

मार्च, १८४३ ब्रिटिश गैरीसन (रक्षक दल) को उसमें बंगाल के कुछ "देशी" रेजीमेन्टों का जोड़कर और मज़बूत कर दिया गया, इस प्रकार नेपियर के पास अब लगभग ६,००० सैनिक हो गये।

२४ मार्च, १८४३ राजधानी के पास हुई एक लड़ाई में, मीरपुर के अमीर, शेर मुहम्मद को नेपियर ने हरा दिया, इसके बाद मीरपुर शहर पर कब्ज़ा कर लिया गया और उसे लूटकर तबाह कर दिया गया। इसके बाद जिस स्थान पर कब्ज़ा किया गया वह उमरकोट (अमरकोट) था, यह रेगिस्तान में स्थित एक मज़बूत दुर्ग था, (बलूची) रक्षकों ने बिना म्यान से तलवार निकाले ही शहर का समर्पण कर दिया।

जून, १८४३ सिन्ध घुड़सवार सेना के कर्नल जैकब ने शेर मुहम्मद को हरा दिया और इस तरह सिन्ध की फतह पूरी हो गयी। उसके बाद से सिन्ध एक अंग्रेजी प्रान्त है, इससे सालाना जितनी आमदनी होती है उससे अधिक सरकार को उस पर खर्च करना पड़ता है।

ग्वालियर, दिसम्बर, १८४३ अंग्रेज सैनिक यहाँ अपने पुराने दुश्मनों से लड़ रहे थे। यह इस प्रकार हुआ था.

१८२७. लार्ड हेस्टिंग्ज़ के साथ एक लाभदायक सन्धि (१८१४) करने के बाद, दौलतराव सिन्धिया बिना कोई सन्तान छोड़े मर गया। उसका उत्तराधिकारी—

१८२७-१८४३ (उसकी मृत्यु का वर्ष)—उसका एकमात्र वारिस जो मिल सका, मुगतराव था, उसने आलीजाह जनकोजी सिंधिया का नाम धारण किया, उसके भी कोई सन्तान न थी, केवल १३ वर्ष की अपनी विधवा— ताराबाई—को वह पीछे छोड़ गया। उसने आठ वर्ष के एक बच्चे, भगीरथ राव को अपना उत्तराधिकारी बनाया, उसने आलीजाह जयाजी सिंधिया की पदवी प्राप्त की, राज्य-संरक्षक बनने के दो दावेदार थे— जनकोजी सिंधिया, जो मामा साहब कहलाते थे (देखिए टिप्पणियाँ, पृष्ठ २८८ मामा = माँ की तरफ़ के चाचा, साहब = मालिक), और दूसरे, घर के प्रबन्धकर्त्ता, दादा (मृत महाराज के दूर के एक सम्बन्धी), जो दादा खासजी के नाम से प्रसिद्ध थे (दादा = पिता के पिता, अथवा बड़े भाई—इसी से दयादया = चाचा—और खासजी = घर के प्रबन्ध-कर्ता) एलिनबरा ने रेज़ीडेन्ट से मामा साहब को [राज्य संरक्षक] नियुक्त करवा दिया, ताराबाई दादा को नियुक्त कराना चाहती थी, इसलिए दरबार में दो दल बन गये। काफ़ी गड़बड़ी तथा कुछ खून-खराबी

के वाद, मामा को डिसमिस कर दिया गया और महारानी, ताराबाई ने दादा को राज्य का संरक्षक नियुक्त कर दिया; किन्तु हाथी ने मामा की नियुक्ति पर ही जोर दिया, रेज़ीडेन्ट को उसने ग्वालियर छोड़ देने का आदेश दिया। दादा ने हाथी का मुक़ाबला करने के लिए सेनाओं को तैयार करना शुरू कर दिया। एलिनबरा (हाथी) ने सर ह्यू गफ़ को आदेश दिया कि ग्वालियर के सैन्य अभियान की कमान वह संभाले और—

१८४३—में, चम्बल नदी को पार करके वह सिंधिया के राज्य में घुस जाय; इस पर रानी और दादा ने अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा, किन्तु उनकी ६० हज़ार सैनिकों तथा २०० तोपों की सेना मैदान में उतर गयी और उसने अंग्रेज़ों को चम्बल के उस पार तक खदेड़ दिया [चम्बल को पार कर अंग्रेज़ वापिस चले गये]।

२६ दिसम्बर, १८४३. महाराजपुर के पास (ग्वालियर में) सर ह्यू गफ़ पर १४ हज़ार चुने हुए (मराठा) सैनिकों ने अनेक पक्के निशाने की तोपें लेकर हमला कर दिया; मराठे असीम बहादुरी के साथ लड़े; भारी नुक़सान उठाने के बाद अंग्रेज़ जीत गये।

३१ दिसम्बर, १८४३. महारानी और बालक सिंधिया ब्रिटिश शिविर में आये और वहाँ उन्होंने चुपचाप अधीनता स्वीकार कर ली; ग्वालियर राज्य को सिंधिया के लिए बना रहने दिया गया, रानी को पेंशन दे दी गयी, मराठा सेना को घटाकर उसमें ६ हज़ार सैनिक रहने दिये गये, ब्रिटिश सैन्य शक्ति [ग्वालियर से] मदद पाकर दस हज़ार सैनिकों की सेना बन गयी; तै हुआ कि बालिग़ हो जाने पर सिंधिया राज्याधिकारी बना दिया जायगा; बीच के काल के लिए राज्य के काम-काज की देख-भाल के वास्ते एक कौन्सिल नियुक्त कर दी गयी।

इसके तुरन्त ही वाद, १८४४ के आरम्भ में, कार्य-काल के खतम होने से पहले ही डायरेक्टर मंडल ने हाथी को उसकी "युद्ध लालसा" के कारण वापिस बुला लिया; हाथी की जगह लेने के लिए सर हेनरी हार्डिंज को भारत भेजा गया।

[६] लार्ड हार्डिंज का प्रशासन, १८४४ १८४८

जून १८४४ हार्डिंज कलकत्ते पहुँच गया (वह 'लार्ड' के रूप में नहीं बल्कि सर हेनरी हार्डिंज के रूप में आया था)।

१८४२ रणजीत सिंह का एक बेटा शेरसिंह पंजाब का पूर्ण सत्ताशाली राजा था, उसने वज़ीर ध्यानसिंह ने अजितसिंह नाम के एक व्यक्ति को शेर सिंह की हत्या करने के लिए तैयार किया लेकिन अजित ने शेर के सबसे बड़े बेटे प्रतापसिंह की भी हत्या कर दी फिर स्वयम् ध्यानसिंह की भी हत्या कर दी ध्यानसिंह के भाई सुचेतसिंह तथा [बेटे] हीरासिंह ने सेनाओं का लेकर लाहौर को घेर लिया, बागियों को (जिनका सरगना अजितसिंह था) पकड़ लिया और उन सब को मार दिया। इसके बाद हीरासिंह ने जिसने अपने आपको वज़ीर बना लिया था, शेरसिंह के एक मात्र जीवित पुत्र दिलीपसिंह को (जो १० वर्ष की उम्र का था, प्रतिभाशाली था लाहौर का अंतिम महाराजा था) [राजा] घोषित कर दिया। हीरासिंह के सामने सबसे कठिन समस्या सिख, अथवा खालसा सेनाओं की संख्या को —जो राज्य की वास्तव में सबसे बड़ी शक्ति थी—कम करने, अथवा उसकी शक्ति पर अंकुश लगाने की थी हीरा अपने अफ़सरों के एक षडयंत्र का शिकार हुआ (मार डाला गया)।—रानी का प्रियपात्र एक ब्राह्मण लाल सिंह वज़ीर बन गया, कई छोटे छोटे फौजी हमलों के बाद उसने देखा कि खालसा को शान्त करने का एकमात्र मार्ग यह है कि इंगलैण्ड के खिलाफ़ युद्ध छेड़ दिया जाए।

१८४५ का वसन्त। लाहौर में युद्ध की तैयारियाँ इतने खुले तौर से हो रही थीं कि सर हेनरी हार्डिंज ने सतलज के पूर्वी तट पर ५० हज़ार सैनिकों को जमा कर लिया।

पहला सिख युद्ध १८४५-१८४६ नवम्बर के अन्त में ६० हज़ार सिखों ने सतलज को पार किया और फीरोज़पुर के समीप अंग्रेज़ी अमलदारी में

---

¹ "सम्प्रदाय (मसल) सिखों की बिरादरी का प्रारम्भिक नाम था। बाद में सिख राज्य तथा सैनिकों के संगठनों का भी यही नाम हो गया था। सैनिकों के ये संगठन सिख सरकार की नीतियों को जनवादी दिशा में प्रभावित करते थे। इसलिए सिख सामन्त खालसा की शक्ति को हर कीमत पर तोड़ देना चाहते थे।

पड़ाव डाल दिया। गवर्नर जनरल हार्डिंज तथा उसका कमांडर-इन-चीफ़, सर ह्यू गफ़ फौरन उनका विरोध करने के लिए निकल पड़े। यह चीज़ नोट करने की है कि अंग्रेज़ों की जो दुर्गति हुई थी उसका कारण, सिखों की बहादुरी के अलावा, अधिकांशतया गफ़ का गधापन था। वह सोचता था कि संगीनों से हमला करके सिखों के साथ भी वह कुछ भी कर सकता था—उसी तरह जिस तरह कि दक्षिण के आसानी से डर जाने वाले हिन्दुओं के साथ अंग्रेज़ों ने किया था।

१८ दिसम्बर, १८४५. मुदकी की लड़ाई, यह फ़ीरोज़पुर से लगभग २० मील के फ़ासले पर एक गाँव था। अंग्रेज़ विजयी हुए ([यद्यपि] उनकी कई "देशी रेजीमेन्टों" ने पहले ही हथियार डाल दिये थे), लालसिंह अपनी फ़ौज को लेकर रात के समय वहाँ से हट गया।

२१ दिसम्बर, १८४५. फ़ीरोज़शाह (फ़ीरूशहर) की लड़ाई। वहाँ पर सिखों का शिविर था। भारी नुक़सान पहुँचाने के बाद अंग्रेज़ों को हर तरफ़ पीछे हटा दिया गया।

२२ दिसम्बर, १८४५. लड़ाई फिर शुरू हो गयी। अंग्रेज़ जीत गये, यद्यपि उन्हें भारी नुक़सान उठाना पड़ा। इसका कारण यह था कि सिखों ने यह नहीं सोचा था कि अपनी "पराजय" के बाद—जिसका मतलब अधिकांश पूर्वी देशों के लिए घबड़ाहट और आम भगदड़ होता है—अंग्रेज़ अगले दिन सुबह फिर हमला कर देंगे। सिख पीछे हट गये, अंग्रेज़ इतने अधिक थक गये थे कि उनका पीछा नहीं कर सकते थे। लाहौर पर हमला करने के लिए अंग्रेज़ों ने घेरा डालने वाले तोपखाने का इंतज़ार किया। दिसम्बर के मध्य में उसके बारे में ख़बर यह थी कि वह रास्ते में था। उसके रक्षक दल के ऊपर सिख लोग, जो लुधियाना के पास के एक छोटे गांव, अलीवाल में पड़ाव डाले पड़े हुए थे,—कहीं हमला न कर दें इसलिए उससे बचने के लिए—

२८ फरवरी, १८४६—को अलीवाल की लड़ाई हुई; कठिन प्रतिरोधके बाद सिखों को नदी की ओर भगा दिया गया।—कुछ दिनों के बाद अंग्रेज़ों के शिविर में दिल्ली से रक्षक सैन्य दल आ गया।—इसी बीच लाहौर की रक्षा के लिए—सोबरांव, आदि में सिखों ने अत्यन्त सुदृढ़ क़िलेबन्दियाँ कर ली थीं और उनमें लगभग ४० हज़ार सैनिकों को तैनात कर दिया था।

१० फरवरी, १८४६. सोबरांव की लड़ाई। अत्यन्त ओजस्वी, साहसपूर्ण प्रतिरोध

के बाद सिख सेना पूर्णतया छिन्न-विच्छिन्न हो गयी। अंग्रेजों को भी बहुत नुकसान हुआ। (हाथो-हाथ बहुत लड़ाई हुई थी, अंग्रेजों ने जिन लड़ाइयों में हिस्सा लिया यह उनमें एक सबसे भयंकर लड़ाई थी।) जब अंग्रेजों ने सतलज को निर्विरोध पार कर लिया और कसूर (जो लाहौर से अधिक दूर नहीं था) के मज़बूत दुर्ग पर कब्ज़ा कर लिया तब कुछ प्रभावशाली सरदारों को लेकर, जिनका मुखिया गुलाब सिंह था (यह आदमी एक राजपूत था और अंग्रेज़ जानते थे कि अन्दर ही अन्दर वह सिखों का कट्टर दुश्मन था), दिलीप सिंह (छोटी उम्र का राजा) वहाँ आया। सन्धि हुई, इसके अन्तर्गत ब्यास और सतलज नदियों के बीच का प्रदेश कम्पनी को दे दिया गया, १५ लाख पौंड हर्जाने के रूप में देने का फैसला हुआ, तै हुआ कि फिलहाल लाहौर में अंग्रेज़ सैनिक उसके रक्षक दल के रूप में रहें।

२० फरवरी, १८४६. अंग्रेज़ सेना ने विजय पूर्वक लाहौरमें प्रवेश किया। १५ लाख पौंड की रकम चुकाने के लिए खज़ाने में चूंकि रुपया नहीं था, इसलिए हार्डिंज ने एलान कर दिया कि उसके एवज़ में कम्पनी ने कश्मीर को ले लिया है, किन्तु गुलाब सिंह रुपया देने को तैयार हुआ और इसलिए कश्मीर उसको दे दिया गया। अपने युद्ध के खर्चे हार्डिंग ने इसी तरह पूरे किये थे। खालसा सेना के सैनिकों को उनका वेतन दे दिया गया और सेना को तोड़ दिया गया, दिलीप सिंह को स्वतंत्र मान लिया गया। लाहौर में अंग्रेज़ रक्षक सैन्य दल को रखकर मेजर हेनरी लारेन्स वहाँ से चला गया। मुख्य सेना उन तोपों के साथ, जिन्हें उसने छीना था, लौटकर लुधियाना चली गयी। — हार्डिंज और गफ़ को पार्लामेन्ट से धन्यवाद मिला और उन्हें लार्ड बना दिया गया। —मार्च, १८४८ में, हार्डिंज इंगलैण्ड वापिस लौट गया। उसके स्थान पर लार्ड डलहौजी गवर्नर जनरल बन कर आया।

. . . .

[७] लार्ड डलहौज़ी का प्रशासन, १८४८-१८५६

अप्रैल, १८४८. मूलराज को, — जो १८४४ में अपने पिता (सावन) की जगह मुल्तान का गवर्नर बना था—दिलीप सिंह ने उसके पद से हटा दिया और,

वान्स एगन्यू (एक सिविलियन अफ़सर) तथा लेफ़्टीनेन्ट एण्डरसन के साथ, सरदार खाँ को उसकी जगह लेने के लिए भेज दिया।

२० अप्रैल, १८४८. मूलराज ने शहर की चाभी सौंप दी; तीन दिन के बाद, जब रक्षक सैन्य दल ने उसके फाटकों को खोला, तो सिख अन्दर घुस आये, एन्डरसन और वान्स एगन्यू की उन्होंने हत्या कर दी।—लाहौर के नजदीक सिखों की एक रेजीमेन्ट के साथ लेफ़्टीनेन्ट एडवर्ड्स को रखा गया था; सिखों ने उसको छेड़ना शुरू कर दिया; तब, सहायता के लिए, उसे भावलपुर के राजा के पास भेजा गया; उसने उससे सहायता प्राप्त कर ली।

२० मई, १८४८. सिन्धु के किनारे डेरागाज़ीखाँ में कर्नल कोर्टलैण्ड की सेना के पास आकर वह उसमें शामिल हो गया; कोर्टलैण्ड के पास चार हज़ार सिपाही थे; उनके साथ बलूचियों के दो दल आकर मिल गये थे; कुल मिलाकर ७ हजार सिपाही उनके पास हो जाने पर, कोर्टलैण्ड और एडवर्ड्स ने मुल्तान पर हमला करके अधिकार करने का फ़ैसला किया। कई भाग्यशाली टक्करों के बाद, [अंग्रेज़] मुल्तान के सामने सितम्बर, १८४८ तक पड़े रहने में सफल हुए; तब जनरल ह्विश के नेतृत्व में एक बड़ी अंग्रेज सेना उनके पास आ गयी। उन्होंने मुल्तान से आत्म-समर्पण करने के लिए कहा, उसने इन्कार कर दिया। इसी बीच, शेरसिंह (वह दो महीने पहले दोस्त का रूप बनाकर लाहौर से आया था) दुश्मन से जाकर मिल गया। अब सम्पूर्ण पंजाब में विद्रोह की ज्वाला भड़क उठी। लाहौर के मंत्रिमण्डल ने उसे पेशावर देने का वादा करके दोस्त मुहम्मद को अपनी तरफ़ मिला लिया। सर हेनरी लारेन्स का भाई, सर जौर्ज लारेन्स पेशावर में रेज़ीडेन्ट था; २४ अक्टूबर, १८४८ को रेज़ीडेन्सी पर सिखों ने अधिकार कर लिया, अंग्रेज़ों को बन्दी बनाकर सख़्त पहरे में रख दिया गया।

दूसरा सिख युद्ध, अक्टूबर, १८४८. फ़ीरोज़पुर में जमा फ़ौज के पास जाकर डलहौज़ी उसमें मिल गया। अक्टूबर के अन्त में गफ़ ने सतलज को पार किया और जालन्धर में जनरल ह्वीलर के साथ जा मिला। सिख लोग रावी और चिनाव नदियों के बीच के दोआबे में जमा होने लगे।

२२ नवम्बर, १८४८. रामनगर में लड़ाई। (सिख शेरसिंह के नेतृत्व में थे।) सिख चिनाव के उस पार चले गये। गफ़ उत्तर की तरफ़ चला जिससे कि, सिखों की तोपों से दूर, कोई दूसरा रास्ता वह ढूंढ़ निकाले।

२ दिसम्बर, १८४८. सादुल्लापुर गांव की लड़ाई। शेरसिंह के नेतृत्व में सिख

झेलम नदी की तरफ़ हट गये। वहाँ पर उन्होंने मजबूती से अपने को जमा लिया, ६ हफ्ते तक अंग्रेज सेना निष्क्रिय पड़ी रही।

१४ जनवरी,[1] १८४६ चिलियानवाला की लड़ाई, यह झेलम नदी के समीप का एक गाँव था। अंग्रेजों के लिए यह लड़ाई बड़ी विनाशकारी साबित हुई, उनके २,३०० सैनिक खेत आय, तीन रेजीमेन्टों के झण्डे छिन गये। वे चिलियानवाला में विश्राम करने लगे सिख हट गये और नये मोर्चों पर जम गये।

२२ जनवरी, १८४६ जनरल ह्विश तथा लेफ्टीनेन्ट एडवर्ड्स ने मुल्तान को फतह कर लिया (मूलराज को बाहर चले जाने की इजाजत दे दी गयी)। अंग्रेज फौज गफ़ से मिलने के लिए आगे चली गयी, किन्तु एक ब्रिटिश रक्षक सैन्य दल के साथ लेफ्टीनेन्ट एडवर्ड्स मुल्तान में ही रुका रहा।

२६ जनवरी, १८४६ गफ़ की सेना ने मुल्तान की फतह की बात सुनी, कुछ दिन बाद शेरसिंह ने अधीनता स्वीकार करने का प्रस्ताव रखा, [किन्तु अंग्रेजों ने] अस्वीकार कर दिया।

१२ फरवरी, १८४६ शेरसिंह ने चतुराई के साथ एक बाजू से कूच कर दिया जिससे कि, ब्रिटिश सेना के उत्तर में रहते-रहते ही, वह दौड़कर लाहौर पर कब्ज़ा कर ले। गफ़ ने चिनाव के पास के गाँव गुजरात में उसे घेर लिया।

२० फरवरी, १८४९ गुजरात की लड़ाई (ब्रिटिश सेना में २४ हजार सैनिक थे)। अंग्रेजों को अपेक्षाकृत बिना खून बहाये ही विजय प्राप्त हो गयी।

१२ मार्च, १८४६ शेरसिंह और उसके जनरलों ने अधीनता स्वीकार कर ली— लाहौर पर अधिकार करने के बाद डलहौज़ी ने पंजाब को क़ब्जे में ले लिया। दिलीपसिंह को अपने को ब्रिटिश संरक्षण में सौंपना पड़ा, तै हुआ कि खालसा फौज तोड़ दी जायगी, कोहिनूर (हीरा, देखिए, पृष्ठ २५६, टिप्पणी १) सुन्दरी विक्टोरिया को भेंट दे दिया जायगा, सिख नेताओं की निजी भू-सम्पत्तियों को ज़ब्त कर लिया गया, चार मील के घेरे के अंदर उनके निवास-स्थानों पर उन्हें कैदियों की तरह रहने के लिए बाध्य कर दिया गया। मूलराज को आजीवन कैद की सज़ा दे दी गयी।— पंजाब के बन्दोबस्त का काम सर हेनरी लारेन्स की अध्यक्षता में बने एक कमीशन के ज़िम्मे कर दिया गया। उसके भाई सर जौन लारेन्स

---

[1] स्मिथ की "आक्सफोर्ड हिस्ट्री आफ इण्डिया" के अनुसार, १३ जनवरी।

(जो बाद में गवर्नर जनरल बना था) को उसकी मदद के लिए नियुक्त किया गया।—सिपाहियों को अंग्रेज अफ़सरों के मातहत रखा जाए—इस सिद्धान्त के आधार पर एक छोटी-सी सिख सेना बनायी गयी; सड़कें बनायी गयीं।

मई, १८४६. सर चार्ल्स नेपियर का स्थान गफ़ ने लिया। उसके और डलहौज़ी के बीच झगड़े हुए; इनका अन्त गफ़ के इस्तीफ़े में हुआ।

१८४८. सतारा को हड़प लिया गया। शिवाजी के वंश के जिस राजा को १८१८ में हेस्टिंग्ज ने गद्दी पर बैठाया था, उसकी मृत्यु हो गयी। उसके कोई सन्तान न थी; मृत्यु-शैया पर उसने एक लड़के को गोद लिया था और उसे अपना वारिस नियुक्त किया था। डलहौज़ी ने उसे मान्यता देने से इन्कार कर दिया; [सतारा को] हड़प लिया।

१८४६-१८५१. कई पहाड़ी कबीलों ने विद्रोह किये जिन्हें सर कौलिन कैम्पबेल, कर्नल कैम्पबेल, मिस्टर स्ट्रेन्ज, इत्यादि (पृष्ठ २५७) ने कुचल दिया।—डकैती, ठगी, शिशु-हत्या, मानव बलि, सती, आदि के विरुद्ध एक आम लड़ाई छेड़ दी गयी।

द्वितीय बर्मी युद्ध, १८५२-१८५३. (१२ अप्रैल, १८५२ को आरम्भ हुआ, दोनाबू की १७ और १८ मार्च, १८५३ की लड़ाइयों के फलस्वरूप इसका अन्त हो गया)। २० दिसम्बर, १८५३ की घोषणा के अन्तर्गत, पेगू को कम्पनी के राज्य में मिला लिया गया।

१८५३. बरार को हड़प लिया गया, वहाँ नागपुर के राजा की, जिसे ऑकलैण्ड ने (१८४० में) गद्दी पर बैठाया था, बिना किसी सन्तान अथवा दत्तक पुत्र के मृत्यु हो गयी थी।

कर्नाटक को अन्तिम रूप से हड़प लिया गया। १८०१ में, "कम्पनी का नवाब" अवकाश ग्रहण करके खानगी जीवन बिताने लगा। १८१६ में, उसकी मृत्यु होने पर, उसके पुत्र को गद्दी पर बैठा दिया गया था, १८२५ में उसकी भी मृत्यु हो गयी; तब उसके बालपुत्र को नवाब घोषित कर दिया गया; १८५३[1] में उसकी मृत्यु हो गयी, और अब उसके चाचा, आज़िम जाह ने गद्दी का दावा किया; उसे पेन्शन दे दी गयी, मद्रास के और तमाम अमीरों से उच्च स्थान उसे दिया गया। हाल में विक्टोरिया ने उसे अर्काट के राजकुमार की पदवी से विभूषित कर दिया था। यह आदमी मद्रास में अपने महल में मज़े से रहता रहा।

---

[1] बर्नेस के अनुसार, १८५५।

१८५४ झांसी (बुन्देलखण्ड) का हड़प लिया जाना। झांसी का राजा शुरू में पेशवा का एक सरदार था, १८३२ में उसे स्वतन्त्र राजा के रूप में स्वीकार कर लिया गया था। वह बिना कोई सन्तान छोड़े मर गया, किन्तु उसका दत्तक पुत्र जीवित था। डलहौजी महाशय ने उसे मान्यता देने से फिर इन्कार कर दिया इसलिए राज्य से वंचित रानी क्रुद्ध हो उठी। बाद में, सिपाही विद्रोह के समय, वह एक सबसे प्रमुख नेत्री बनी थी।

धोंधू पन्त, उर्फ नाना साहब निराश किये गये और पेन्शन पाने वाले पेशवा बाजीराव के—जिसकी १८५३ में मृत्यु हो गयी थी,—दत्तक पुत्र थे, नाना साहब ने कहा कि उन्हें गोद लेने वाले उनके पिता को १ लाख पौंड सालाना की जो पेन्शन मिलती थी वह उन्हें दी जाय। इसे नहीं माना गया। नाना चुप बैठ गये, बाद में "अंग्रेज कुत्तों" से उन्होंने बदला लिया।

१८५५-१८५६ बंगाल की राजमहल पहाड़ियों में एक अर्ध-जंगली कबीले, संथालों का विद्रोह, सात महीने के छापेमार युद्ध के बाद, फरवरी, १८५६ में उसे कुचल दिया गया।

१८५६ का प्रारम्भिक भाग डलहौजी ने मैसूर के गद्दी से हटा दिये गये राजा की इस "विनम्र विनती" को मानने से इन्कार कर दिया कि उसे फिर से गद्दी पर बैठा दिया जाए।

१८५६ अवध को हड़प लिया गया, क्योंकि नवाब का शासन बुरा था।—पंजाब के महाराजा दिलीप सिंह ने ईसाई धर्म स्वीकार कर लिया। "विदा का" एक गर्वोक्तिपूर्ण "नोट" छोड़कर वह डलहौजी चला गया, अन्य चीज़ों के साथ साथ, नहरों, रेलों, बिजली के तार का निर्माण हुआ; मालगुज़ारी में ४० लाख पौंड की वृद्धि हो गयी। इसमें अवध के हड़प लिये जाने से प्राप्त होने वाली आमदनी शामिल नहीं थी। कलकत्ते से व्यापार करने वाले जहाजों के माल का वज़न लगभग दो गुना हो गया; वास्तव में, सार्वजनिक लेखे में कमी हो गयी, किन्तु इसका कारण सार्वजनिक निर्माण कार्यों पर किया जाने वाला भावी खर्चा था।—इसी शेखी का जवाब सिपाही क्रान्ति थी (१८५७-१८५९)।

[1] ग्रॉम के अनुसार, १८४२।

[८] लार्ड कैनिंग का प्रशासन, १८५६—१८५८

२९ फरवरी, १८५६. कैनिंग ने सत्ता ग्रहण की। (उसकी दण्ड-संहिता, जो हिन्दुओं, मुसलमानों और योरोपियनों, सब पर एक समान लागू होती थी, १८६१ के पहले नहीं पूरी हुई थी।

अगस्त, १८५६. हैजा; मध्य भारत में उसने विनाश फैला दिया, अकेले आगरा में १५,००० मौतें हुईं।

फ़ारस का युद्ध, १८५६-१८५७. (पास !) : १८५५ में, ब्रिटिश कमिश्नर तेहरान छोड़कर चला गया क्योंकि उसके साथ "तिरस्कारपूर्ण व्यवहार" किया गया था।

१८५६. फ़ारस की सरकार ने अफ़गान के ईसा ख़ाँ से हिरात छीन लिया।

१ नवम्बर, १८५६. कैनिंग ने युद्ध की घोषणा कर दी; १३ नवम्बर, मस्कट पर हमला करने के लिए बम्बई से कई जहाज़ चल पड़े।

१८५६. की दिसम्बर का प्रारम्भिक भाग। फ़ारस की खाड़ी में स्थित बुशहर (अबूशहर) पर कब्जा कर लिया गया।

> इसी दर्म्यान सर जौन लारेन्स (जो अब अपने भाई सर हेनरी के स्थान पर पंजाब का चीफ़ कमिश्नर था) तथा काबुल के अमीर, दोस्त मुहम्मद के बीच समझौते की बातचीत शुरू हो गयी। १८५७ के आरम्भ में मेल हो गया, इस मित्रता को निभाया गया।

जनवरी, १८५७. अभियान के प्रधान सेनापति के रूप में बुशहर जाकर सर जेम्स आउट्रम सेना में सम्मिलित हो गया।

७ फरवरी, १८५७. ख़ुशाब का युद्ध; आउट्रम के नेतृत्व में एक सैन्यदल ने लगभग ८,००० फ़ारसियों को मैदान से एकदम भगा दिया।

८ फरवरी, १८५७. आउट्रम अपनी सेना के साथ बुशायर के सदर दफ्तर में लौट आया।

अप्रैल, १८५७. मुहम्मरा पर अधिकार कर लिया गया।—इसके बाद शान्ति सन्धि हुई : तै हुआ कि फ़ारसी लोग हिरात और अफ़ग़ानिस्तान से हमेशा के लिए हट जायेंगे, और तेहरान में स्थित ब्रिटिश कमिश्नर के साथ "पूरे सम्मान से" व्यवहार करेंगे।

. . . .

१८५७. सिपाही विद्रोह। कुछ वर्षों से सिपाही सेना अत्यन्त असगठित थी, उसमे अवध के जो ४० हजार सैनिक थे वे जाति और राष्ट्रीयता की वजह से एक साथ बने हुए थे, सेना मे सबकी एक ही भावना थी, ऊपर का कोई अफ्सर अगर किसी भी रेजीमेन्ट का अपमान करता तो शेष सब लोग भी उसे अपना अपमान समझते थे, अफसरो की कोई शक्ति नहीं थी, अनुशासन ढीला था, बगावत की खुली कार्रवाइयाँ अक्सर हुआ करती थीं। उन्ह कमोवेश मुश्किल से ही दबाया जा सकता था रगून पर हमला करने के लिए समुद्र पार जाने से बगाल की सेना ने साफ इन्कार कर दिया था, इसकी वजह से उसके स्थान पर सिख रेजीमेन्टो को भेजना पडा था (१८५२)। (यह सब १८४९ से—पजाब के हडप लिए जाने के बाद से, चल रहा था—१८५६ मे, अवध के हडप लिए जाने के बाद से स्थिति और भी बिगड गयी थी।) लार्ड कैनिंग ने अपने प्रशासन का श्रीगणेश एक मनमानी कार्रवाई से किया, उस समय तक मद्रास और बम्बई के सिपाही तो कानूनन तमाम दुनिया मे काम करने के लिए भर्ती किये जाते थे, किन्तु बगाली सिपाही केवल भारत मे काम करने के लिए भर्ती होते थे। कैनिंग ने बगाल मे भी "आम सेवा कार्य के लिए भर्ती" का नियम बना दिया। "फकीरों' ने इस कदम की यह कहकर भर्त्सना की कि वह जाति, आदि को खत्म कर देने की कोशिश थी।

१८५७. का प्रारम्भिक भाग। (पाम के) कारतूसों के बारे में, जो हाल मे सिपाहियों को दिये गये थे, फकीरों ने कहा कि उनमे सुअर और गाय की चर्बी ठीक इसीलिए लगायी गयी है जिससे कि हर सिपाही की जाति खत्म हो जाय। इसलिए, बारकपुर (कलकत्ते के पास) तथा रानीगज (बाँकुडा के पास) मे सिपाही विद्रोह उठ खडे हुए।

२६ फरवरी, बहरामपुर मे (मुर्शिदाबाद के दक्षिण मे, हुगली नदी पर स्थित) सिपाही विद्रोह, मार्च मे बारकपुर मे सिपाही विद्रोह, यह सब बगाल मे हो रहा था (उसे बलपूर्वक कुचल दिया गया)।

मार्च और अप्रैल। अम्बाला और मेरठ के सिपाहियो ने अपनी बैरको में बारम्बार और गुप्त रूप से आग लगा दी, अवध और उत्तर-पश्चिम के जिलों मे लोगो को इगलैण्ड के विरुद्ध फकीरों ने भडकाया। बिठूर (गगा के तट पर स्थित) के राजा नाना साहब ने रूस, फारस, दिल्ली के राजाओं तथा अवध के भूतपूर्व राजा के साथ मिलकर षडयत्र रचा,

चर्बी लगे कारतूसों की वजह से जो सिपाही उपद्रव हुए थे उनका उसने फ़ायदा उठाया।

२४[1] अप्रैल। लखनऊ में ४८वें बंगाली (रेजीमेन्ट), तीसरी देशी घुड़सवार सेना, तथा अवध के सातवें अनियमित सैन्यदल का विद्रोह; सर हेनरी लारेन्स ने अंग्रेजी सैनिक लाकर उसे दबाया।

मेरठ (दिल्ली के उत्तर पूर्व) में, ११ वीं और २०वीं देशी पैदल सेना ने अंग्रेज़ों पर हमला कर दिया, अपने अफ़सरों को उसने गोली मार दी, शहर में आग लगा दी। तमाम अंग्रेज स्त्रियों और बच्चों को उसने मार दिया, और दिल्ली की ओर चल पड़ी।

दिल्ली पहुँच कर, रात में घोड़ों पर सवार होकर कुछ बागी दिल्ली के अन्दर घुस गये; वहाँ के सिपाहियों (५४वीं, ७४वीं, ३८वीं देशी पैदल सेना) ने विद्रोह कर दिया; अंग्रेज कमिश्नर, पादरी, अफ़सरों की हत्या कर दी गयी; नौ अंग्रेज अफ़सरों ने शस्त्रागार की रक्षा की, उसे उड़ा दिया (दो उसी में नष्ट हो गये); शहर में जो और अंग्रेज़ थे वे जंगलों में भाग गये, उनमें से अधिकांश को देशी लोगों ने, अथवा सख्त मौसम ने खत्म कर दिया; कुछ लोग बचकर मेरठ, जो अब सेनाओं से खाली था, पहुँच गये। किन्तु दिल्ली विद्रोहियों के हाथ में पहुँच गया।

फ़ीरोजपुर में, ४५ वीं और ५७ वीं देशी सेनाओं ने क़िले पर अधिकार करने की कोशिश की, ६१ वीं अंग्रेज सेना ने उन्हें खदेड़ कर भगा दिया; किन्तु उन्होंने शहर को लूट डाला, उसमें आग लगा दी, अगले दिन क़िले से निकली घुड़सवार सेना ने उन्हें वहाँ से भगा दिया।

लाहौर में, मेरठ और दिल्ली की घटनाओं का समाचार पाकर, जनरल कौरबेट की आज्ञा से, आम परेड पर खड़े सिपाहियों से हथियार रखवा लिए गये (उन्हें तोपधारी अंग्रेज सैनिकों ने घेर लिया था)।

२० मई। ६४ वीं, ५५ वीं, ३९ वीं देशी पैदल सेनाओं से (लाहौर की ही तरह) पेशावर में हथियार छीन लिए गये; इसके बाद, बाकी जो अंग्रेज़ सैनिक मौजूद थे उन्होंने और वफ़ादार सिखों ने नौशेरा और मर्दान की घिरी हुई छावनियों को साफ़ किया और, मई के अन्त में,

---

[1] के तथा मैलीसन के "भारतीय विद्रोह के इतिहास", (खण्ड ३, लन्दन १८८६-१८८९) के अनुसार, ३ मई।

[2] के और मैलीसन, खण्ड २, के अनुसार,—५।

आसपास के केन्द्रों से इकट्ठा किय गये कई योरोपीय रेजीमेन्टों से भरी अम्बाला की बड़ी छावनी को आज़ाद किया, यहाँ जनरल एन्सन के नेतृत्व में एक सेना का केन्द्र मौजूद था शिमला के हिल स्टेशन पर, जहाँ गर्मी के मौसम के लिए अंग्रेज़ परिवारों की भारी भीड़ थी, हमला नहीं किया गया।

२५ मई। अपनी छोटी सी सेना लेकर एन्सन ने दिल्ली पर चढ़ाई कर दी। २७ मई को उसकी मृत्यु हो गई, उसका स्थान सर हेनरी बर्नार्ड ने लिया। इसके बाद ७ जून को जनरल विल्सन के नेतृत्व में अंग्रेज सेनाएँ आकर उससे मिल गयीं (ये मेरठ से आयी थीं, रास्ते में सिपाहियों से कुछ लड़ाई हुई थी)। विद्रोह की आग पूरे हिन्दुस्तान में फैल गयी; एक साथ २० भिन्न भिन्न स्थानों में सिपाहियों के विद्रोह उठ खड़े हुए और अंग्रेजों को मार डाला गया, विद्रोह के मुख्य केन्द्र थे आगरा, बरेली, मुरादाबाद। सिंधिया "अंग्रेज कुत्तों" के प्रति वफ़ादार था, किन्तु उसके "सैनिकों" की हालत यह नहीं थी, पटियाला के राजा ने—उसे शर्म से डूब मरना चाहिए!—अंग्रेजों की सहायता के लिए एक बड़ी सेना भेजी! मैनपुरी (उत्तर-पश्चिमी प्रान्त) में एक नौजवान बर्बर लेफ्टीनन्ट, डे कान्टज़ोव ने खजाने और किले को बचा लिया।

कानपुर में, ६ जून, १८५७ को, नाना साहब ने सर ह्यू ग ह्वीलर को घेर लिया। (*नाना साहब ने कानपुर में विद्रोह करने वाले तीन सिपाही* रेजीमेन्टों तथा देशी घुड़सवारों के तीन रेजीमेन्टों की कमान अपने हाथ में ले ली थी, कानपुर सैन्यदल के कमान्डर, सर ह्यू ग ह्वीलर के पास योरोपीय पैदल सेना का केवल एक बटालियन था और थोड़ी-सी मदद उसने बाहर से हासिल कर ली थी, किले और बैरकों की, जिनमें तमाम अंग्रेज लोग, उनकी औरतें, बच्चे, भागकर पहुँच गये थे, वह रक्षा कर रहा था)।

२६ जून, १८५७ नाना साहब ने कहा अगर कानपुर को ये लोग छोड़ दें तो तमाम योरोपियनों को वे निरापद रूप से चला जाने देंगे, (ह्वीलर द्वारा इस प्रस्ताव के मान लिए जाने के बाद), २७ जून को ४०० बचे हुए लोगों को नावों पर बैठ कर गंगा के रास्ते चले जाने की इजाज़त दे दी गयी, नाना ने नदी के दोनों तटों से उन पर गोली-बार शुरू कर दिया, एक नाव भाग गयी, उसे और आगे जाकर डुबो दिया गया, पूरे गैरीसन के केवल ४ ही आदमी भाग सके। औरतों और बच्चों

से भरी एक नाव को, जो तट की बालू में फँस गयी थी, पकड़ लिया गया, वहाँ उन्हें क़ैदी बनाकर बन्द कर दिया गया; १४ दिन बाद (जूलाई में) विद्रोही सिपाही फ़तेहगढ़ से (फ़र्रुख़ाबाद से तीन मील के फ़ासले पर स्थित फ़ौजी केन्द्र से) कुछ और अंग्रेज़ बन्दियों को वहाँ पकड़ ले आये।

कैनिंग की आज्ञा पर, मद्रास, बम्बई, लंका से वहाँ के लिए सेनाएँ रवाना हो गयीं। २३ मई को मद्रास से सहायतार्थ आने वाले सैनिक नील के नेतृत्व में आ पहुँचे, और बम्बई का सैन्यदल सिन्धु नदी से होता हुआ लाहौर की ओर रवाना हो गया।

१७ जून. सर पैट्रिक ग्रान्ट (जो बंगाल में एन्सन के बाद प्रधान सेनापति बनकर आया था) और एडजूटेन्ट जनरल, जनरल हैवलाक कलकत्ता पहुँच गये; वहाँ से भी वे फ़ौरन ही रवाना हो गये।

६ जून. इलाहाबाद में सिपाहियों ने विद्रोह कर दिया, (अंग्रेज़) अफ़सरों को उनकी पत्नियों और बच्चों के साथ उन्होंने मार डाला: उन्होंने क़िले पर अधिकार करने की कोशिश की, उसकी रक्षा कर्नल सिम्पसन कर रहा था, ११ जून को उसकी सहायता के लिए मद्रास के बन्दूकचियों के साथ कर्नल नील कलकत्ते से पहुँच गया; कर्नल नील ने तमाम सिखों को निकाल बाहर किया, क़िले पर उसने अधिकार कर लिया, उसकी सुरक्षा के लिए उसने केवल अंग्रेज़ों को तैनात किया। (रास्ते में उसने बनारस पर क़ब्ज़ा कर लिया था और विद्रोह की पहली अवस्था में ३७ वीं देशी पैदल सेना को हरा दिया था; सिपाही भाग गये थे); (अंग्रेज़) सिपाही चारों तरफ़ से इलाहाबाद पहुँचने लगे।

३० जून. इलाहाबाद पहुँच कर जनरल हैवलाक ने कमान सँभाल ली, लगभग एक हज़ार ब्रिटिश सैनिकों को लेकर उसने कानपुर पर चढ़ाई कर दी; १२ जूलाई को फ़तेहपुर में उसने सिपाहियों को खदेड़ कर पीछे भगा दिया, आदि; कुछ और लड़ाइयाँ हुईं।

१६ जूलाई. हैवलाक की सेना कानपुर के पास पहुँच गयी, भारतीयों को उसने हरा दिया, किन्तु दुर्ग के अन्दर न घुस सकी, क्योंकि उसे बहुत देर हो गयी थी; रात में नाना ने तमाम अंग्रेज़ बन्दियों को—अफ़सरों, स्त्रियों, बच्चों सब को—मार दिया; फिर शस्त्रागार में उसने आग लगा दी और शहर का परित्याग कर दिया—१७ जूलाई, अंग्रेज सैनिक शहर में घुस गये।—हैवलाक ने नाना के रहने के स्थान, बिठूर पर चढ़ाई कर दी, बिना किसी विरोध के उसने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया; महल को उसने

नष्ट कर दिया, किले को उड़ा दिया, फिर मार्च करके कानपुर वापिस लौट गया, रक्षा करने तथा स्थान को बचाये रखने के लिए वहाँ पर उसने नील को छोड दिया, हैवलाक स्वयम् लखनऊ की मदद के लिए चल पडा, सर हेनरी लारेन्स की कोशिशो के बावजूद, रेजीडेन्सी को छोडकर, वहाँ का पूरा शहर विद्रोहियों के हाथों मे पहुँच गया।

३० जून पूरा रक्षक सैन्य दल विद्रोहियो की आसपास पडी सेना के खिलाफ निकल पडा, उसे खदेड कर पीछे हटा दिया गया, वह फिर जाकर रेजीडेन्सी मे छिप गया, रेजीडेन्सी को घेर लिया गया।

४ जूलाई. सर हेनरी लारेन्स की (२ जूलाई को एक गोले से घायल हो जाने की वजह से) मृत्यु हो गयी, कर्नल इगलिश ने कमान संभाला; वह तीन महीने तक घिरा पडा रहा—बीच-बीच में कभी-कभी छिट-पुट हमलो के लिए उसके आदमी बाहर चले जाते थे।—हैवलाक की कारंवाइयाँ (पृष्ठ २७१)। हैवलाक के कानपुर वापिस लौट आने पर, विशाल सैन्य दल लेकर सर जेम्स आउट्रम उसके पास पहुँच गया, और भिन्न-भिन्न विद्रोही ज़िलो से अनेक अलग-थलग पड़े रेजीमेन्टो को भी मदद के लिए उसने बुला लिया।

१६ सितम्बर. हैवलाक, आउट्रम, और नील के नेतृत्व मे पूरी फौज ने गगा को पार किया। २३ तारीख को, लखनऊ से आठ मील के फ़ासले पर आलम-बाग मे स्थित अवध के बादशाहों के ग्रीष्म प्रासाद पर हमला करके उन्होने उस पर क़ब्ज़ा कर लिया।

२५ सितम्बर लखनऊ पर अन्तिम धावा बोला गया, वे रेज़ीडेंसी पहुच गये, वहाँ सयुक्त सेनाओ को दो महीने तक और चारो तरफ़ से घिरी हुई हालत मे रहना पडा। (जनरल नील शहर की लडाई मे मारा गया, आउट्रम की बाँह मे गहरा घाव लग गया।)

२० सितम्बर. जनरल विल्सन के नेतृत्व में ६ दिन की वास्तविक लडाई के बाद, दिल्ली को फ़तह कर लिया गया। (ब्योरे के लिए देखिए, पृष्ठ २७२,२७३) घुडसवारो के अपने सैन्य-दल का नेतृत्व करता हुआ होडसन महल मे घुस गया, बूढे बादशाह और बेगम (ज़ीनत महल) को उसने गिरफ्तार कर लिया, उन्हे क़ैदखाने मे डाल दिया गया और शाहज़ादों को स्वयम् अपने हाथो मे (गोली मार कर) खत्म कर दिया। दिल्ली मे सैन्य रक्षक दल तैनात कर दिया गया और शहर को खामोश कर दिया गया। इसके तुरन्त बाद कर्नल ग्रेटहेड दिल्ली से आगरा गया, आगरा के नज़दीक उसने

होल्कर की राजधानी, इन्दौर के बागियों की एक मजबूत सेना को हरा दिया;

१० अक्तूबर. उसने आगरे पर क़ब्ज़ा कर लिया, फिर कानपुर की तरफ़ बढ़ा। २६ अक्तूबर को वह वहाँ पहुंच गया; इसी दर्म्यान आज़मगढ़, छतना (हज़ारीबाग के समीप), खजवा, तथा दिल्ली के आस-पास के इलाके में कैप्टन ब्वायलू, मेजर इंगलिश, पील (यह नौसैनिक ब्रिगेड के साथ था; प्रौविन और फ्रेन के घुड़सवार दल भी—जो देश से आये थे—लड़ाई के मैदान में उतरने के लिए तैयार खड़े थे; स्वयम्-सेवकों के जो रेजीमेंट तैयार किये गये थे वे भी लड़ाई में शामिल हो रहे थे) तथा शावर्स के नेतृत्व में विद्रोहियों को हरा दिया गया। अगस्त में सर कौलिन कैम्पबेल ने कलकत्ते की कमान सँभाली, उसने युद्ध को और भी बड़े पैमाने पर चलाने की तैयारियाँ शुरू कर दीं।

१६ नवम्बर, १८५७. सर कौलिन कैम्पबेल ने लखनऊ की रेज़ीडेन्सी में घिरे हुए गैरीसन (रक्षक सैन्य दल) को मुक्ति दिलायी। (सर हेनरी हैवलाक की २४ नवम्बर को मृत्यु हो गयी); लखनऊ से—

२५ नवम्बर, १८५७ को—कौलिन कैम्पबेल कानपुर की तरफ़, जो फिर विद्रोहियों के हाथों में पहुंच गया था, चल पड़ा।

६ दिसम्बर, १८५७. कानपुर में कौलिन कैम्पबेल ने लड़ाई में विजय हासिल की; शहर को खाली छोड़ कर विद्रोही भाग गये, सर होप ग्रान्ट ने उनका पीछा किया और उन्हें बुरी तरह काट डाला। पटियाला और मैनपुरी में विद्रोहियों को क्रमश: कर्नल सीटन और मेजर होडसन ने परास्त कर दिया; और भी अनेक जगहों पर ऐसा ही किया गया।

२७ जनवरी, १८५८. दिल्ली के बादशाह का डाल्ज, आदि के मातहत कोर्ट मार्शल [किया गया]; "महा आततायी" कहकर उन्हें मौत की सज़ा दी गयी (वे १५२६ से क़ायम मुग़ल राजवंश के प्रतिनिधि थे।); मौत की सज़ा को रंगून में आजीवन क़ैद की सजा में बदल दिया गया। साल के अन्त में उन्हें वहाँ भेज दिया गया।

सर कौलिन कैम्पबेल का १८५८ का अभियान। २ जनवरी को उसने फ़र्रुख़ाबाद और फतेहगढ़ पर अधिकार किया, अपने को उसने कानपुर में जमा लिया, हर जगह के तमाम सैनिकों, सामानों और तोपों को उसने वहीं अपने पास मंगवा लिया।—विद्रोही लखनऊ के आसपास जमा थे, वहाँ सर जेम्स आउट्रम उन्हें रोके हुए था।—कई और वारदातों (देखिए, पृष्ठ २७६,

७७) के बाद, १५[1] मार्च को (कोलिन कैम्पबेल, सर जेम्स आउट्रम, आदि के नेतृत्व में) लखनऊ पर पुनः अधिकार कर लिया गया; शहर को, जिसमें प्राच्यकला के अनुपम भंडार भरे हुए थे, लूट डाला गया; २१ मार्च को लड़ाई ख़त्म हो गयी, अन्तिम बार तोप २३ तारीख़ को चलाई गयी। —दिल्ली के शाह [के बेटे] शाहज़ादा फ़ीरोज़, बिठूर के नाना साहब, फ़ैज़ाबाद के मौलवी तथा अवध की बेगम, हज़रत महल के नेतृत्व में विद्रोही बरेली की तरफ़ भाग गये।

२५ *अप्रैल, १८५८ कैम्पबेल, ने शाहजहाँपुर पर कब्ज़ा कर लिया,* मोगल ने *बरेली के पास विद्रोहियों के हमले को असफल कर दिया,* ६ मई को घेरे की तोपों ने बरेली पर गोलाबारी शुरू कर दी, इसी बीच मुरादाबाद पर कब्ज़ा कर लेने के बाद जनरल जोन्स, निर्धारित योजना के अनुसार, वहाँ *आ गये, नाना और उनके साथी भाग गये,* बरेली को बिना किसी प्रतिरोध के अधिकार में ले लिया गया। इसी दर्म्यान, शाहजहाँपुर को, जिसे विद्रोही अच्छी तरह से घेरे हुए थे, जनरल जोन्स ने छुड़ा लिया, ल्यूगार्ड के डिवीज़न पर, जो लखनऊ से मार्च करके जा रहा था, *हमला किया* गया, कुमार सिंह के नेतृत्व में विद्रोहियों ने उसको बहुत नुकसान पहुँचाया, सर होप ग्रान्ट ने बेगम को हरा दिया, नयी सैन्य शक्ति बटोरने के लिए वह घाघरा नदी की तरफ़ भाग गयी; इसके तुरत बाद ही फ़ैज़ाबाद के मौलवी मार डाले गये।

जून, १८५८ के मध्य तक, विद्रोह तमाम जगह परास्त हो गये, अब मिलकर लड़ने की क्षमता उनमें नहीं रह गयी; वे लुटेरों के गिरोहों में बँट गये और अंग्रेज़ों की बँटी हुई सेनाओं को खूब तंग करने लगे। लड़ाई के केन्द्र: बेगम की रण पताका, दिल्ली का शाहज़ादा और नाना साहब।

विद्रोह को सर ह्यू रोज़ के मध्य भारत में दो महीने (मई और जून) के अभियान ने अन्तिम रूप से धराशायी कर दिया।

जनवरी, १८५८. रोज़ ने रथगढ़ पर कब्ज़ा कर लिया, फरवरी में उसने सागर और गाराकोटा पर क़ब्ज़ा कर लिया। झांसी पर, जहाँ रानी डटी हुई थी, उसने धावा बोल दिया।

१ अप्रैल, १८५८ नाना साहब के चचेरे भाई, तांत्या टोपे के ख़िलाफ़—जो

---

[1] के और मैलीसन, खण्ड ४, के अनुसार, १४ मार्च।

[2] के और मैलीसन, खण्ड ३, अनुसार, ३० अप्रैल।

झांसी की रक्षा करने कालपी से इधर गये थे—सख़्त लड़ाई की गई; तांत्या पराजित हुए।

४ अप्रैल[1] : झांसी को फ़तह कर लिया गया; रानी और तांत्या टोपे भागकर निकल गये, और कालपी में अंग्रेज़ों का इन्तज़ार करने लगे; वहाँ मार्च करते समय—

७ मई, १८५८—के दिन, काम्या के क़स्बे में दुश्मन की एक मजबूत सेना ने रोज़ पर हमला कर दिया; उसने उनको बुरी तरह पराजित कर दिया।

१६ मई, १८५८. रोज़ कालपी से कुछ ही मील दूर रह गया, विद्रोही उसे ख़ूब तंग कर रहे थे।

२२ मई, १८५८. कालपी से विद्रोहियों ने एक दुस्साहसिक हमला किया; वे हरा दिये गये, भाग निकले;

२३ मई, १८५८. रोज़ ने कालपी पर अधिकार कर लिया। अपने सिपाहियों को, जो [युद्ध अभियान की वजह से] और गर्मी के सख़्त मौसम की वजह से एकदम थक गये थे, आराम देने के लिए वह वहीं रुक गया।

२ जून, नौजवान सिंधिया (अंग्रेज़ों के कुत्ते) को सख़्त लड़ाई के बाद ख़ुद उसकी सेनाओं ने ग्वालियर से खदेड़ कर बाहर कर दिया, जान बचाने के लिए वह आगरा भाग गया। रोज़ ने ग्वालियर पर चढ़ाई कर दी; विद्रोहियों का नेतृत्व करते हुए झांसी की रानी[2] और तांत्या टोपे ने—

१६ जून—के दिन, लश्कर की पहाड़ी (ग्वालियर के सामने) पर उससे मोर्चा लिया; रानी मारी गयीं, काफ़ी बड़े हत्याकाण्ड के बाद उनकी सेना तितर-बितर हो गयी; ग्वालियर अंग्रेज़ों के हाथों में पहुँच गया।

जुलाई, अगस्त, और सितम्बर, १८५८ के दर्म्यान सर कौलिन कैम्पबेल, सर होप ग्रान्ट तथा जनरल वालपोल ने अपना समय अधिक प्रमुख विद्रोहियों को पकड़ने और उन तमाम क़िलों पर अधिकार करने में लगाया जिनके स्वामित्व के बारे में झगड़ा था; बेगम ने कुछ और जगहों पर अन्तिम बार लड़ने की कोशिशें कीं, फिर नाना साहब के साथ राप्ती नदी के उस पार भागकर वह अंग्रेज़ों के कुत्ते, नेपाल के जंग बहादुर की अमलदारी में चली गयीं; जंग बहादुर ने अंग्रेज़ों को इस बात की इजाज़त दे दी कि उसके देश में वे विद्रोहियों को पकड़ लें; इस प्रकार "दुस्साहसिक लड़ाकों

---

[1] के और मैलीसन, खण्ड ४, के अनुसार, ५ अप्रैल।

[2] उसका नाम लक्ष्मीबाई था।

के अन्तिम गिरोहों को भी तितर-बितर कर दिया गया"; नाना और बेगम भागकर पहाड़ियों में चले गये, और उनके अनुयायियों ने हथियार डाल दिये।

१८५९ के प्रारम्भिक भाग में, ताँत्या तोपे के गुप्त निवास-स्थान का पता चल गया उन पर मुकदमा चलाया गया और उन्हें फाँसी दे दी गयी।— 'समझा जाता है" कि नाना साहब की मृत्यु नेपाल में हुई थी। बरेली के खान को पकड़ लिया गया था और गोली से उड़ा दिया गया था, लखनऊ के मम्मू खाँ को आजीवन कैद की सज़ा दे दी गयी, दूसरों को कालापानी भेज दिया गया, अथवा भिन्न-भिन्न मियादों के लिए जेल में डाल दिया गया, विद्रोहियों के अधिकांश भाग ने—इनकी रेजीमेन्टें तो टूट ही चुकी थीं—तलवार रख दी, रैयत बन गये। अवध की बेगम नेपाल में काठमाण्डू में रहने लगी।

अवध की भूमि को ज़ब्त कर लिया गया, कैनिंग ने उसे एंग्लो इंडियन सरकार की सम्पत्ति घोषित कर दिया। सर जेम्स आउट्रम के स्थान पर सर रौबर्ट मोंटगुमरी को अवध का चीफ कमिश्नर बना दिया गया। ईस्ट इंडिया कम्पनी को खत्म कर दिया गया। वह युद्ध के खत्म [होने] के पहले ही टूट गयी थी।

दिसम्बर, १८५७ पामर्स्टन का भारत सम्बन्धी बिल; डायरेक्टर-मण्डल के गम्भीर विरोध के बावजूद, उसका प्रथम पाठ फरवरी, १८५८ में पूरा कर दिया गया, लेकिन उदारदलीय मन्त्रिमण्डल के स्थान पर टोरी मन्त्रिमण्डल आ गया।

१९ फरवरी, १८५८ डिज़रायली का भारत सम्बन्धी बिल (देखिए, पृष्ठ २८१) पास न हो सका।

२ अगस्त, १८५८ लार्ड स्टैनली का इण्डिया बिल पास हो गया और, इस प्रकार, ईस्ट इण्डिया कम्पनी की इतिक्रिया पूर्ण हो गयी। भारत "महान्" विक्टोरिया के साम्राज्य का एक प्रान्त बन गया!

०००

अनुक्रमणिका

[आ]

[इ]

[ई]

[उ]

[ज]

[झ]

[ट]

[ठ]

[ड]

[ढ]

त]

भूल सुधार

पृष्ठ २७ : पंक्ति १ में "बदख्शा के बादशाह" के बाद "मिर्जा सुलेमान" जोड़ दीजिए।

पृष्ठ ७८ : पंक्ति ११ और पंक्ति ३० में "मुरादाबाद" के स्थान पर "मुर्शिदाबाद" पढ़िए।